5464

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम

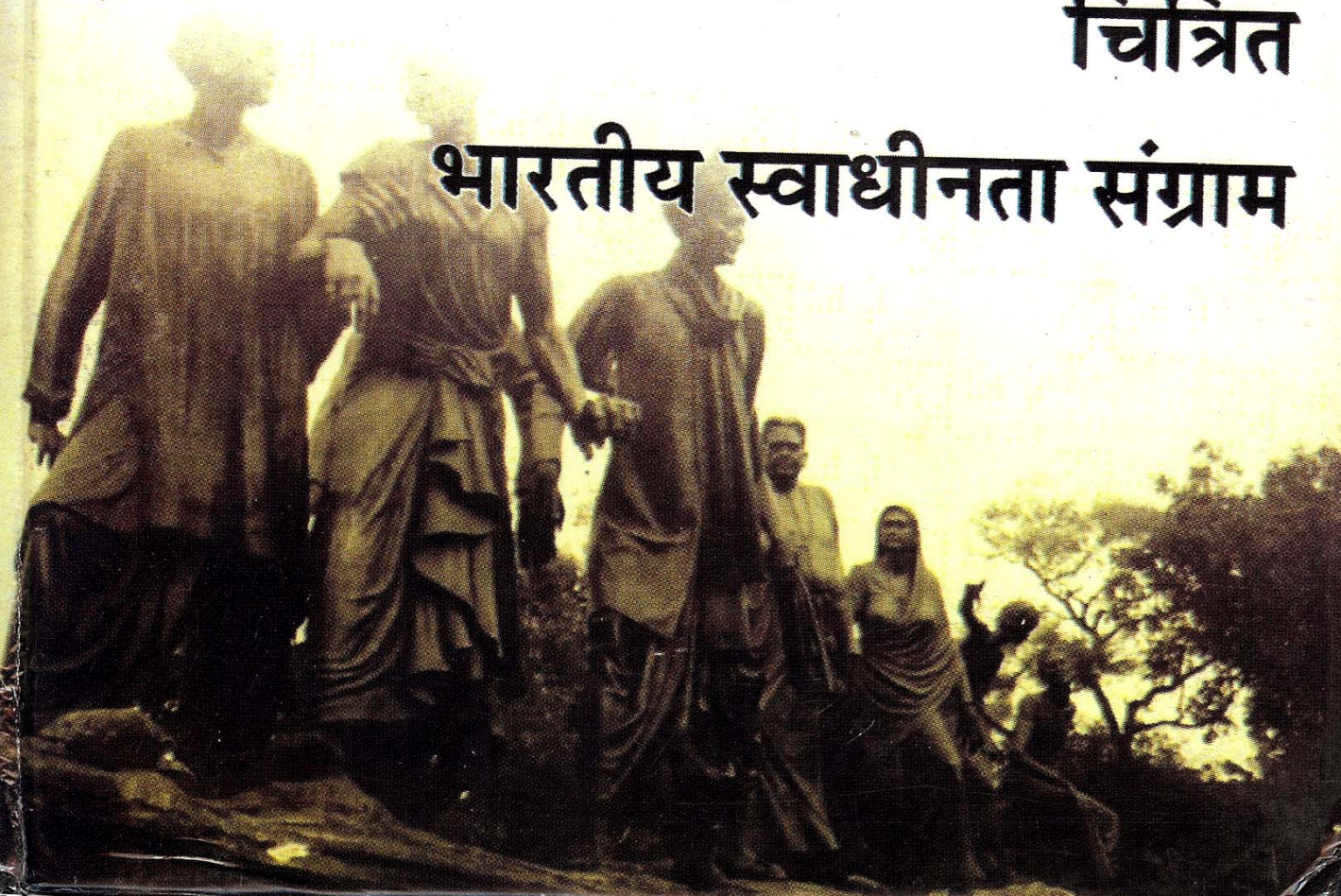

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

शिव भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
इलाहाबाद (उ.प्र.)

ISBN : 978-81-88616-01-X

© लेखक

प्रकाशक : शिव भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
फुव्वारा चौराहा ममफोड़ गंज
इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.)

मूल्य : 500.00

प्रथम संस्करण : 2013

मुद्रक : शिवानी आर्ट प्रेस
शाहदरा, दिल्ली-110032

2

Prof. Rajendra Mishra
M.A. D.Phil. (Alld.) D. Litt. (Shimla)
Ex. Vive-Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varansi-221002 (U.P. INDIA)

Grams : "SHRUTAM"
Phones :
Office : (0542) 2204089
: (0542) 2204213
Resi. : (0542) 2206617
: (0542) 2206617

मेरे परमप्रिय प्रतिभाशाली शिष्य, डॉ. योगेशचन्द्र दुबे ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली से प्राप्त अपनी रिसर्च असोसिएट परियोजना (1987-92) के अंतर्गत एक ऐसे विलक्षण विषय का गहन अध्ययन किया जिसका भारत राष्ट्र के लिए विशेष महत्त्व है। अधिकांश सुशिक्षित लोगों को भी बड़ा भ्रम है कि भारत को स्वाधीनता मात्र राजनैतिक आंदोलन से मिली, वह आंदोलन जिसकी नींव रखी थी दादाभाई नौरोजी, ह्यूम, एनीबेसेंट आदि ने 1885 ई. में, और जिसमें स्वाधीनता का प्रस्ताव जुड़ा 1916 में, मोहनदास कर्मचन्द गांधी की दक्षिण अफ्रीका से वापसी के बाद! उसमें तेजी आई भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव के आत्मोसर्ग से तथा स्वतंत्रता देने की बाध्यता पैदा हुई गांधी के 1942 के 'भारत छोडो' प्रस्ताव से!

ये समस्त तथ्य इतिहास-सम्मत होते हुए भी स्वाधीनता प्राप्ति की सच्चाई से बहुत दूर हैं—ऐसा मेरा चिंतन है। वस्तुतः 19वीं शती का उत्तरार्द्ध, जिसे भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि माना जाना चाहिए, अभी भी घोर अंधकार में है। यदि उनका सांगोपांग अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि स्वाधीनता की भावना के बीज जनता के मन में, राजनेताओं ने नहीं, धर्माचार्यों-पंडितों-विद्वानों तथा कथावाचकों ने बोए। 1935 ई. में लार्ड मैकाले ने जब संस्कृत का वर्चस्व समाप्त कर अंग्रेजी को राजभाषा का पद दिया, तब इसके विरुद्ध किसी राजनेता ने आंदोलन नहीं किया था। परंतु कश्मीर से केरल तक इसका विरोध संस्कृत साहित्यकारों तथा समाजोद्धारक धर्माचार्यों ने किया।

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास का एक सुवर्णपर्व था जिस काल खण्ड में महर्षि दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेंद्र नाथ ठाकुर, श्रीमती एनीबेसेण्ट तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सब एक साथ थे।

इन समस्त महापुरुषों ने स्वातंत्र्य चेतना का पक्ष लिया। महर्षि दयानन्द जी ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा घोषित करते हुए भी, अपना सारा साहित्य हिंदी में लिखा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अंधविश्वासों, कुरीतियों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, परन्तु अंग्रेजियत का पल्ला कभी नहीं पकड़ा।

वस्तुतः राजभाषा-पद पर आरूढ़ संस्कृत को पदच्युत करने के पीछे भी लार्ड

मैकाले की वही सोच थी कि इस भाषा के तो अक्षर-अक्षर में स्वाधीनता, स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम तथा अन्याय विरोध का भाव भरा है। यदि जनता संस्कृत में अंतर्निहित अभिप्रायों को समझने तथा अनुभव करने लगी तो ब्रिटिश शासन प्रतिष्ठित होने से पूर्व ही उन्मूलित हो जाएगा। इसका सबसे बड़ा आग्नेय उदाहरण था, बंकिम बाबू के 'आनन्दमठ' का एक नन्हा सा संस्कृत-सुभाषित—'वन्दे मातरम्' जो देखते ही देखते आजादी का महामंत्र बन गया।

कोल्हापुर से 'सुनृत वादिनी' पत्रिका का सम्पादन करने वाले महापंडित अप्पा शास्त्री राशिबडेकर-स्वाधीनता की आग को उद्दीप्त करते थे—अपने संपादकीयों के माध्यम से। स्वामी रामकृष्ण परमहंस यदि आध्यात्मिक स्वातंत्र्य चेतना के महान् पक्षधर थे तो स्वामी विवेकानन्द एवं महर्षि अरविन्द राजनैतिक पराधीनता के घोर विरोधी थे।

सन् 1906 में अलीपुर जेल (कलकत्ता) में अरविंद द्वारा लिखा गया नन्हा सा शतक 'भवानी भारती' स्वाधीनता की गीता बन गया। ब्रिटिश शासन ने रचना को जब्त कर लिया तथा अरविंद को भी कारागार में जकड़ दिया।

इसी प्रकार, भारतीय स्वाधीनता संग्राम में संस्कृत साहित्यकारों की अविस्मरणीय भूमिका रही है। परवर्ती समय में उभरने वाले अधिकांश राष्ट्रभक्त शहीद भी संस्कृत भाषा एवं भावना से ही प्रेरित थे। चन्द्रशेखर आजाद तो संस्कृत पाठशाला के नियमित छात्र भी थे। उस कालावधि का संस्कृत-वाङ्मय स्वाधीनता से ही संबद्ध है।

डॉ. योगेश चन्द्र दुबे ने अत्यन्त मनोयोग तथा श्रमपूर्वक भारतीय स्वाधीनता संग्राम का विवरण प्रस्तुत किया है—चुने हुए ऐसे 18 संस्कृत महाकाव्यों के आधार पर जो राजनयिक गतिविधियों के दस्तावेज हैं, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ में यदि उन्नीसवीं शती के संस्कृत पंडितों तथा धर्माचार्यों का भी अवदान जुड़ जाए तो मणिकाञ्चन-योग होगा। यह ग्रंथ निश्चय ही आजादी का एक दुर्लभ दस्तावेज बन सकेगा।

मैं आयुष्मान् डॉ. दुबे के सारस्वत अध्यवसाय के लिए उन्हें स्नेहाशीः से श्रीमंडित करता हूँ। मुझसे यथाकथञ्चित् जुड़े मेरे अंतेवासी गुरु-शिष्य की सारस्वत संपृक्ति की मानरक्षा करते रहें, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा?

कैम्प कार्यालय
तुलसी पीठ, चित्रकूट
30.8.2008 ई.

साशीः, सस्नेह
अभिराज राजेन्द्र मिश्र
पूर्व कुलपति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

संस्थापक एवं महामहिम कुलाधिपति (आजीवन)
धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी
श्रीराम भद्राचार्य जी महाराज

फोन : (05198) 24413, 24461
फैक्स : (07670) 65478

श्रीमद्राघवो विजयतेतराम

अष्टादशानां ननुविंशशत्यां स्वयंमहाकाव्यतया श्रुतानां।
तत्कर्तृभिश्चैव कृती ललामनाम् प्रबंधरत्नेत्र विचारगुम्फा ॥
योगेशचन्द्रेण परिश्रमेण प्रबंधकर्त्ता विधिवत्प्रबद्धाः।
भावाः समासादित राष्ट्रवादाः सुनिचर्विवादा हृत्सद्विवादाः ॥

अष्टादशानां कृतिनां विचाराः निष्पक्षपाताः रचनाभ्यः येषाम् ।
योगेशचन्द्रेण हि संगृहीता मधुव्रतेनेव रसः सुमेभ्यः ॥
भाषा समावर्जित विद्वदाशा विजृम्भिता चास्य बुधव्रतस्य।
शैली प्रबंधकर्त्ता विवेकदक्षा भावप्रकाशा विचकास्ति काचित् ॥

नात्युच्छ्रितो नाऽपि लघुर्नभयान् न वा कनीयान् कनति प्रबंधः।
निबंधभूमौ तरुतां समेत्य प्रहवः फलैरेष ममेति चाशीः ॥
प्रबंधसंकृप्त महाकवीनां भावान् द्रढ़ीकर्तुमनेन कर्त्रा।
अस्यप्रबंधस्य परिश्रमेण तत्त्वान्युपादानि तया चितानि ॥

ऐतिह्यकान्यत्र पुराणगानि पुनश्च तद्वाह्यतया सुतानि।
ख्यातानि चाऽस्मिन् सुनिबंधरत्ने संतन्वते स्वर्णसुबन्धयोगम् ॥
न्यायादहं सिंहविलोकनस्य सिंहासनस्थोऽपि जगद्गुरुणां।
प्रबंधमेतं प्रमुदा समीक्ष्य संस्तौमि संस्तुत्य सतां प्रशस्त्यै ॥

इति मङ्गलमाशास्ते

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
स्वामी रामभद्राचार्य

प्रो. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी
(कुलपति)

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय
बी. एम बिड़ला शोध संस्थान परिसर,
देवास रोड, उज्जैन 456010 (म.प्र.)
दूरभाष कार्या. : (0734) 2526044
फैक्स नं. : 2524845

क्रमांक दिनांक.....

अन्तर्नाद

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे ने बीसवीं शताब्दी की जन चेतना का संस्कृत रचनाकारों में प्रभाव केंद्रित ग्रंथों का अनुशीलन कर संस्कृत जगत् को एक नवआयाम दिया है। भारत के गाँवों में भी पंडित, पुरोहित होते हैं जो लोकभाषा के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के व्यवहार से ही अपनी वृत्ति चलाते हैं। उनमें राष्ट्रीयता के स्वर सदा मुखरित रहते हैं। कर्मकाण्ड एवं धर्मशास्त्र के बहाने वे भारतीय जनता में संस्कृत का ही संदेश देते रहते हैं। संस्कृत भाषा एवं साहित्य का प्रत्येक शब्द भारतीय संस्कृति के लिए समर्पित रहता है। संस्कृत की रचनाओं में जनमानस की सच्ची झलक मिलती है। नाट्य साहित्य विद्वान्-मूर्ख, राजा-प्रजा, पढ़े-अनपढ़े वर्णज्येष्ठ-वर्णकनिष्ठ, रानी-नारी सबको अपनी घटनाओं में बांधते और भारतीय जनता को उल्लसित करते रहते हैं। स्त्रोत्रों द्वारा उन्हीं की स्तुति करते हैं जो अधिसंख्य भारतीयों की रक्षा-सुरक्षा, हिताहित, अनुकूल-प्रतिकूल, जीवन-मरण में सहायक होते हैं। महाकाव्यों की रचना में प्रकृति, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष सब रहते हैं। भारतीय आदर्शों के लिए नायक-नायिका, परंतु उनका विरोध करते हुए विषय को मुखरित करता हुआ प्रतिनायक और अनेकानेक पात्र कथा के संदेश के लिए ही समर्पित रहते हैं। ये संस्कृत कवि भारतीय अवस्था और प्रवृत्ति को अपनी रचनाओं द्वारा प्रकट करते हैं। राष्ट्र की पराधीनता के समय संस्कृत कवि अत्यन्त व्यग्र दिखते हैं। डॉ. योगेश चन्द्र दुबे ने संस्कृत के ऐसे 18 महाकाव्यों का निरूपण किया है जिनमें स्वातंत्र्य का अमर संदेश है। पराधीन भारत में संस्कृत रचनाओं में उमड़ती देशभक्ति का वैभव इन ग्रंथों में साद्यन्त व्यक्त है। भगतसिंह चरित तो देश पर जीवन न्यौछावर करने वाले भारत माता के वीर सपूत का ही समर्पण है–

"धन कलङ्कं परदासताख्यं कलङ्कितं येन च वस्त्रमेतत्।
किं जीवनं तस्य भवेत् प्रशस्यं यस्यास्ति देशः परशासितोऽत्र।"(6. 14)

इन रचनाओं के माध्यम से भारतीयता के प्रति संस्कृत कवियों की चेतना का उनकी अभिव्यक्ति, उनकी राष्ट्रीय चिति का उन्मीलन होता है। श्री दुबे ने इस ग्रंथ के माध्यम से संस्कृत कवियों की राष्ट्रीय अभिव्यक्ति को प्रकाशित कर एक नवसंदेश दिया है कि संस्कृत रचना सदा भारत माता के सांस्कृतिक वैभव के लिए ही अर्पित होती है। ऐसी रचनाओं के लिए डॉ. दुबे शुभाशंसाओं और बधाइयों के पात्र हैं।

प्रो. मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी

प्राक्कथन

राष्ट्रीयता का उदय विश्व के सभी भागों में मानव समाज के विकास के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण सोपान होता है। ब्रिटिश सरकार की भारत विजय के कारण भारतीय समाज के आंतरिक विकास में बाधा उत्पन्न हो गयी। साम्राज्यवादी देशों के शिकार बने हुए अन्य देशों की भाँति भारत में विदेशी शासन से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण राष्ट्रीयता का उदय हुआ। जब भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो गयी तो विदेशी शासन की नींव हिल गयी तथा वे भारत छोड़ने के लिए विवश हो गये।

अंग्रेजों की भारत विजय के समय से ही भारतीय जनता ने इस राजनीतिक दासता को कभी स्वीकार नहीं किया। कोई भी ऐसा वर्ष नहीं बीता जिसमें भारत के किसी-न-किसी भाग में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह न हुआ हो। लगभग सौ वर्षों के प्रयास के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में अपनी पूर्ण प्रभुसत्ता स्थापित करने में सफलता मिली थी। 1757 ई. में प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ी, परन्तु 1857 ई. में इस साम्राज्य के मूलोच्छेदन का प्रथम उल्लेखनीय प्रयास हुआ। यह प्रयास हिंसात्मक और सैनिक प्रधान था। इस प्रकार की ज्वाला के पीछे सैकड़ों वर्षों की छिपी वेदना, शोषण, अत्याचार और स्वतंत्रता अपहरण की दुःखद स्मृतियाँ काम कर रही थीं। धीरे-धीरे आग सुलगती रही और समय पाकर 1857 ई. में वह एक विस्फोट के रूप में प्रज्वलित हो उठी। वास्तव में इस विस्फोट के पीछे राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक, धार्मिक एवं सैनिक कारण थे जो धीरे-धीरे इकट्ठे हो रहे थे। 1947 ई. का भारतीय स्वतंत्रता एक्ट अंतिम कड़ी के रूप में था जिससे भारत की पराधीनता का अंत हुआ और भारत को स्वयं अपने भाग्य निर्माण का अधिकार मिला।

एक सुदीर्घकाल की ब्रिटिश दासता से मुक्ति प्राप्ति का यह इतिहास भारतवर्ष के विभिन्न भागों, संम्प्रदायों एवं विचारों के कठिन संघर्ष, आत्मोत्सर्ग एवं आत्म-बलिदान का इतिहास है, जिन्होंने देश को स्वाधीन कराने के लिए क्रूर अंग्रेजों की कठोर यातनाएँ सहन कीं। यद्यपि देश के विभिन्न भागों एवं वर्गों में यह आंदोलन विभिन्न

तरीकों से अनवरत चलता रहा, किंतु सम्मिलित रूप से सबका उद्देश्य अंग्रेजी दासता से मुक्ति प्राप्त करना तथा देश को स्वाधीनता दिलाना ही था। इस प्रकार इस स्वाधीनता संग्राम में एक तरफ जहाँ विभिन्न राजाओं-महाराजाओं अलीवर्दी खाँ, मीर कासिम, हैदर अली, टीपू सुल्तान, नाना फड़नवीस, सिंधिया, होल्कर, पेशवा, गायकवाड़, भोसले, रानी लक्ष्मीबाई आदि ने सशस्त्र संघर्ष किया; वहीं दूसरी तरफ महात्मा गांधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, सरदार पटेल, अबुल कलाम आजाद, सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव एवं बटुकेश्वर दत्त आदि गरम एवं नरम दलीय क्रांतिकारी नेताओं ने ब्रिटिश शासन का विरोध करते हुए प्राणपण से संघर्ष किया। यही नहीं, संघर्ष का एक दूसरा पक्ष समाज-सुधारकों, धर्म-सुधारकों एवं विचारकों का भी था जिन्होंने विभिन्न संगठनों एवं संस्थाओं के द्वारा भारतीय जनमानस में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय भावना को जागृत करके आंदोलन को उत्तरोत्तर मुखरित किया। इनमें राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, स्वामी श्रद्धानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र चटर्जी, श्री अरविन्द, श्रीमती एनी बेसेण्ट एवं सर सैय्यद अहमद खाँ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत इन राजाओं-महाराजाओं, क्रांतिकारी नेताओं, विचारकों एवं सुधारकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से भला कौन भारतीय परिचित नहीं है। संपूर्ण भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय में इनकी वीरगाथाएँ स्वर्णाक्षरों में सुरक्षित हैं जिनमें भारतीय स्वाधीनता संग्राम की यशोगाथा का भी सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य भी स्वाधीनता संग्राम के इन महापुरुषों के यशोगान से वंचित न रह सका। ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक क्षणों में ही अत्याचारों एवं शोषण के विरुद्ध संस्कृत कवियों ने भी आवाज उठायी, फलस्वरूप संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक गद्य, पद्य एवं चम्पू आदि में भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम की ध्वनि झंकृत होने लगी। प्रस्तुत ग्रंथ के अंतर्गत उपर्युक्त महापुरुषों एवं क्रांतिकारियों पर आश्रित अथवा इन्हीं के जीवनचरित से संबंधित 20वीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न स्थलों एवं पक्षों के समीक्षात्मक अध्ययन का सर्वथा मौलिक प्रयास है।

ग्रंथ को पारम्परिक ढंग से छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन्हीं छः अध्यायों के अंतर्गत ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न पक्षों एवं घटनाओं का यथासम्भव वर्णन किया गया है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय नवाजागरण नामक प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड के अंतर्गत अमरीकी स्वाधीनता,

फ्रांस एवं रूस की क्रांति तथा भारत में ब्रिटिश सत्ता के उपनिवेशवाद की पृष्ठभूमि में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के उदयबिंदु से पूर्ण स्वराज्य करने तक का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय नवजागरण और संस्कृत-शीर्षक वाले इस अध्याय के दूसरे खण्ड के अन्तर्गत संस्कृतानुशीलन का पर्यावरण, अंग्रेजी शासन में भारतीय कला, साहित्य एवं अन्य प्रवृत्तियों का विकास तथा संस्कृत का यूरोप में विकास आदि बिन्दुओं पर विहङ्गम दृष्टिपात किया गया है।

ग्रंथ के द्वितीय अध्याय के अंतर्गत भामह, दण्डी एवं विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करने के साथ ही महाकाव्य के पारम्परिक लक्षणों का आधुनिक लक्ष्य-ग्रंथों के संदर्भ में मूल्यांकन किया गया है। पुनश्च तृतीय अध्याय के प्रथम तीन शीर्षकों--बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य, बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम के उल्लेख के साथ ही मुख्य प्रतिपाद्य का उल्लेख है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता, भारतपारिजातम, पारिजातापहारः एवं पारिजातसौरभम् आदि क्रमशः पाँच महाकाव्यों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का सूक्ष्मावलोकन किया गया है। इसी प्रकार चतुर्थ अध्याय में भी स्वराज्यविजयः, श्रीसुभाषचरितम्, भारतीयस्वातंत्र्योदयः, विशालभारतम्, एवं श्रीनेहरूचरितम् आदि पाँच ग्रंथों को पंचम अध्याय में स्वराज्यविजयम्, गांधिगाथा एवं नेहरूयशः सौरभम् आदि तीन ग्रंथों तथा अंतिम षष्ठ अध्याय में इंदिरा-गांधीचरितम् श्री गांधिगौरवम्, श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्य, श्रीभगतसिंहचरितम् एवं झांसीश्वरीचरितम् आदि पाँच ग्रंथों को मिलाकर कुल 18 महाकाव्यों का भारतीय स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में यथेष्ट अनुशीलन ग्रंथ के अंतर्गत किया गया है। अंत में उपसंहार एवं सहायक ग्रंथ सूची के उल्लेख के साथ ही ग्रंथ का पर्यावसान होता है।

प्रकृत स्थल पर उल्लेखनीय है कि जिन पूज्यपाद गुरुवर्य अभिराज प्रो. राजेन्द्र मिश्र जी, पूर्व-कुलपति, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की ज्ञानरश्मियों से मेधा को परिष्कृत करते हुए संस्कृत भाषा में थोड़ी बहुत योग्यता अर्जित की तथा महनीय गुरुकृपा से ही देवभाषा संस्कृत का (डी.फिल. स्तर पर) शोध स्तरीय गहन अध्ययन भी कर सका, पुनश्चः प्रस्तुत ग्रंथ के आदि स्वरूप अर्थात् परियोजना के विषय-चयन एवं प्रारूप सृजन में जिन्होंने यथेष्ट परिवर्तन कर मेरी शोध परियोजना का मार्ग प्रशस्त किया तथा आज इसके पुस्काकर स्वरूप में भी अपना अमोघ आशीः प्रदान किया है। उन महामना के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करूँ तथापि उनके आशीर्वाद एवं असीम स्नेह का स्मरण कर धन्य हूँ। पुनश्च, जिन पूज्यवर्य के वैदुष्यपूर्ण निर्देशन ने इस शोध परियोजना में अहर्निश मार्गदर्शन करते हुए इसके निर्बाध संपादन में उत्प्रेरक का कार्य किया तथा परियोजना अवधि में आगत विविध

बाधाओं का परिशमन करते हुए इसे पूर्णता प्रदान करायी, आज इसके पुस्तक रूप में प्रकाशन की बेला में उन पूज्यपाद विद्वद्वरेण्य गुरुवर्य एवं दिग्दर्शक प्रो. सुरेश चन्द्र श्रीवास्तवजी पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इस संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य है कि जिन महामहिम के पवित्र ज्ञानदान एवं पुत्रवत् वात्सल्य ने इस पुस्तक के प्रकाशन में सद्प्रेरणा प्रदान की तथा जिनके वचनामृत एवं सद्गुणों के परिपाक का यत्किञ्चिद् आस्वाद करते हुए मैंने जीवन के विविध क्षेत्रों में थोड़ी-बहुत योग्यता अर्जित की उन पूज्यपाद विद्वच्छिरोमणि प्रस्थानत्रयी भाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानान्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य—महामहिम कुलाधिपति (जीवन पर्यन्त) जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट उ.प्र. के श्रीचरणों में नमन करते हुए इस जीवन को धन्य मानता हूँ।

किसी भी सारस्वत समर्चना के मूल में माता-पिता एवं आचार्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। एतदर्थ जिस स्वर्गादपि गरीयसी, ममतामयी माँ श्रीमती सावित्री दुबे तथा जिस महनीय पितृचरण पं. श्री वंशराज दुबे ने अपने संपूर्ण सुखों का परित्याग करके भी मेरे अध्ययन के प्रति सदा महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ दी हैं तथा मेरे अध्ययन-अध्यवसाय में मनसा-वाचा-कर्मणा निरंतर साहस का ही संचार करते रहे हैं, "मैं इनके प्रति आभारी अथवा कृतज्ञ हूँ" ऐसा कहना उनके महिमामय सम्मान को अल्पीकृत करना होगा, अपितु उनसे इस जन्म क्या, किसी भी जन्म में ऋणमुक्त नहीं हो सकता। इसी संदर्भ में अपने सुहृद्वर डॉ. रामसेवक दुबे, उपाचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, अनुजकल्प प्रो. कपिल देव मिश्र, अध्यक्ष प्रो. इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट तथा सहधर्मिणी डॉ. इन्दुमती दुबे प्रवक्ता—श्रीरावतपुरा सरकार कॉलेज ऑफ एजूकेशन, चित्रकूट (उ.प्र.) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता का ज्ञापन करता हूँ जिनका न केवल प्रस्तुत कार्य में अपितु जीवन के विविध क्षेत्रों में लगभग 25-30 वर्षों से अहं योगदान एवं समर्पण रहा है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम जैसे विषय की व्यापकता, विपुलता एवं बहुरूपता को देखते हुए मेरा यह लेखन कार्य अत्यल्प न्यून प्रतीत होता है तथापि मेरी इस सारस्वत समर्चना से संस्कृत जगत् को यदि कुछ भी परितोष मिलता है तो इसे मैं अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानूँगा। इसमें जो कुछ भी बन पड़ा वह विद्वत्समुदाय की कृपा का प्रसाद है तथा जो कमियाँ हैं उसको सुधीजन क्षमा करने का प्रयास करेंगे।

—डॉ. योगेश चन्द्र दुबे

विषयानुक्रम

प्राक्कथन 7

प्रथम अध्याय : भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय नवजागरण 21

(क) अमरीकी स्वाधीनता का घोषणा-पत्र
फ्रांस एवं रूस की क्रांति की पृष्ठभूमि
भारत में ब्रिटिश सत्ता का उपनिवेशवाद—भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारम्भ 1857 ई. की क्रांति, उग्रत्तर आंदोलन
आंदोलन का लक्ष्य—राजनीतिक सत्ता में अधिकाधिक सहभागिता और फिर क्रमशः डोमिनियन स्टेट्स, होमरूल और पूर्ण स्वराज्य

(ख) राष्ट्रीय नवजागरण और संस्कृत
संस्कृतानुशीलन का पुनर्जारण
अंग्रेजों की स्थिरता में भारतीय कला, साहित्य एवं अन्य प्रवृत्तियों का विकास
चार्ल्स विल्किन्स द्वारा भगवद्गीता का अनुवाद एवं सर विलियम जोन्स द्वारा अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अनुवाद
संस्कृत का यूरोप में विकास
विकास की परम्परा—रॉक, मिल्टन, गिल्डेर, कीथ, मैक्डानेल, मैक्समूलर, ह्विटनी, स्टेनकोनो, ल्यूडर्स, मिकेज, बेवर आदि द्वारा संस्कृताध्ययन एवं लेखन

द्वितीय अध्याय : महाकाव्य के लक्ष्य 34

भामह, दण्डी एवं आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षण का परिज्ञान महाकाव्य के पारम्परिक लक्षणों का आधुनिक लक्ष्य-ग्रंथों के संदर्भ में मूल्यांकन

तृतीय अध्याय : बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम 49

(क) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख बिंदु

सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता, महात्मागांधिचरितम्, भारतपारिजातम्,

पारिजातापहारः, पारिजातसौरभम्, स्वराज्यविजयः, श्रीसुभाषचरितम्, भारतीयस्वातंत्र्योदयः, विशालभारतम् (जवाहरदिग्विजयम्), श्रीनेहरूचरितम् स्वराज्य-विजयम्, गान्धिगाथा, श्रीनेहरूयशः सौरभम्, इंदिरागांधीचरितम्, गांधिगौरवम्, जवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्, भक्तसिंहचरितम्, झांसीश्वरीचरितम्।

(ख) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख बिंदु

(ग) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम

1. सत्याग्रहगीता (18 अध्याय)—भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति हेतु महात्मा गांधी के निर्देशन में चलाए गए सत्याग्रहात्मक आंदोलन की 1930 ई. तक की रोमांचक कथा का वर्णन।

2. उत्तरसत्याग्रहगीता (47 अध्याय)—1931 ई. से 1944 ई. तक के महात्मा गांधी के सत्याग्रहात्मक राजनैतिक कार्यकलापों का वर्णन।

3. भारतपारिजातम् (25 सर्ग)—गांधी जी का दक्षिण अफ्रीका से प्रत्यागमन, चम्पारन में नील आंदोलन, खेड़ा में सत्याग्रह आंदोलन, नादियाण सभा, रौलेट एक्ट एवं उसका विरोध, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, गांधी जी की गिरफ्तारी, पं. मोतीलाल नेहरू, पं. जवाहरलाल नेहरू, देशबंधु चितरंजन दास, मौ. अबुल कलाम आजाद, लाला लाजपतराय तथा राव गंगाधर पांडेय आदि नये नेताओं का अभ्युदय। लाहौर अधिवेशन एवं पूर्ण स्वराज्य की माँग। गांधी जी का अहिंसा सत्याग्रह, नमक कानून एवं दाण्डी यात्रा, गोलमेज सम्मेलन आदि।

4. पारिजातापहारः (29 सर्ग)—सात प्रांतों में राष्ट्रीय महासभा का गठन, मुस्लिम लीग की नीति से सांप्रदायिक विद्वेष। अंग्रेजों की "फूट डालो राज्य करो" की नीति। प्रयाग महासभा, वर्धा महासभा। हिटलर एवं रूजवेल्ट से गांधी जी का पत्र-व्यवहार। अंग्रेजों द्वारा लगाए गए कर का विरोध। चर्चित एवं रूजवेल्ट का अकस्मात् बीमार पड़ना।

5. पारिजातसौरभम् (20 सर्ग)—सन् 1942 ई. में उपद्रवों का दोष गांधीजी और कांग्रेस पर आरोपित करना। गांधीजी द्वारा प्रत्युत्तर में अंग्रेजी शासन को खरी-खोटी सुनाना। भारत में विदेशी सेना का विरोध तथा भारतीय सेना को बाहर भेजने का गांधीजी द्वारा विरोध। नौआखाली में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर अत्याचार एवं गांधीजी द्वारा पहुँचकर सांप्रदायिक तनाव शांत करना। बिहार में हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर अत्याचार तथा वहाँ भी गांधीजी द्वारा सांप्रदायिक सौहार्द्र बनाना। दिल्ली में हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर आक्रमण एवं गांधी जी का उपवास। राजेंद्र प्रसाद द्वारा हिंदू-मुस्लिम नेताओं के साथ

संबंधित महत्त्वपूर्ण विभूतियों एवं घटनाओं का वर्णन मिलता है। प्रारम्भ में अंग्रेजों के अत्याचार फलस्वरूप मंगल पांडेय के नेतृत्व में 1857 का सैनिक विद्रोह। 'बंगभूमेरुत्क्रांतिः वर्णनात्मकः' नामक छठे सर्ग के अंतर्गत बंगाल में स्वतंत्रता आंदोलन के नायक एवं समाज सुधार आंदोलन आदि का वर्णन है। इसमें राजा राममोहन राय, कृष्णदास, हरिश्चन्द्र मुखर्जी, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, ईश्वरचंद्र विद्यासागर; दीनबंधु मधुसूदन, बंकिमचंद्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ टैगोर, रानाडे, भण्डारकर, अरविन्द घोष आदि के साथ ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि का वर्णन है। 'अथ राष्ट्रीयान्दोलनस्य : पृष्ठभूमिर्नाम' सातवें सर्ग के अंतर्गत 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' बताते हुए प्राणोत्सर्ग तथा स्वतंत्रता आंदोलन में संघर्षरत रहने की प्रेरणा, एतदर्थ कांग्रेस की स्थापना, 'इंडियन काउन्सिल एक्ट' ह्यूम द्वारा 'यूनियन' नाम की संस्था की स्थापना। 'क्रान्तिस्तुमुलान्दोलनं' नामक आठवें सर्ग में अंग्रेजों के अत्याचार, भारतीयों की संघर्ष क्षमता तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रति अनन्य निष्ठा एवं प्राणोत्सर्ग का वर्णन है। 'झाँसी राज्यस्य विलीनीकरणोद्योगध्वंसः' नामक नवम् सर्ग के अंतर्गत अंग्रेजों द्वारा झाँसी राज्य को अंग्रेजी शासन में विलय करने की दुर्नीति एवं झाँसी राज्य के विरोध के फलस्वरूप महासंग्राम का बहुत ही रोमांचक वृत्तांत, पुनः 'झाँसीश्वरीस्वर्गारोहणम्' नामक दशम सर्ग में महारानी लक्ष्मीबाई का देहावसान। 'अथ काश्मीरवर्णनम्' नाम 11वें सर्ग में काश्मीर सुषमा वर्णन तथा 'अथ राष्ट्रीयमहापुरुषाणां वर्णनात्मको' नामक 12वें सर्ग में भारतीय संग्राम के कतिपय महान् नायकों का संक्षिप्त उल्लेख है। इसमें बालगंगाधर तिलक का 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' की घोषणा, कांग्रेस विभाजन होने पर गरम दल का नेता चुना जाना, 'केसरी' नामक पत्र का संपादन, गांधीजी का सत्य-अहिंसा आंदोलन, सरोजनी नायडू' श्रीनिवास आयङ्गर तथा श्रीमती ऐनी बेसेंट के 'थियोसोफिकल सोसायटी' एवं 'होमरूल आंदोलन' का वर्णन है 'अथ भारते आंग्लसाम्राज्यम् (1905-1947 ई.)' नामक तेरहवें सर्ग में विश्व में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध उग्र आंदोलन, वार्सा संधि में भारत का प्रतिनिधित्व, लीग ऑफ नेशन्स में भारत को सदस्य बनाना, माण्टेग्यू चेम्स फोर्ड की सुधार नीति, कौंसिल एक्ट, बंग-भंग नीति, कांग्रेस अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी द्वारा स्वराज्य के माँग की घोषणा, मार्ले मिण्टो सुधार, साइमन कमीशन का बहिष्कार एवं रौलेट एक्ट आदि का उल्लेख। 'असहयोगान्दोलनम्' नामक चौदहवें सर्ग के अंतर्गत रौलेट एक्ट के विरोध में सर्वत्र असहयोग

4. विशालभारतम् : (जवाहर दिग्विजयम् 10 सर्ग)—इंग्लैंड में शिक्षार्जन के उपरान्त भारत वापस आकर जवाहरलाल जी द्वारा वकालत करना। पुनः वकालत छोड़कर गांधी जी के सान्निध्य में आना उनके सत्य-अहिंसा सिद्धांतों का अनुकरण करना। सत्याग्रह संगठन एवं राष्ट्रीय महासभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व। जवाहरलाल का देशाटन करके ग्रामीण किसानों और मजदूरों की दशा से अवगत होना तथा किसान आंदोलन। रौलेट एक्ट का विरोध, सत्याग्रह आंदोलन, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड एवं इंग्लैंड जाकर ऊधमसिंह द्वारा जनरल डायर की हत्या। द्वितीय विश्व युद्ध, सुभाषचन्द्र बोस एवं जयप्रकाश नारायण आदि नये नेताओं का अभ्युदय, जनक्रांति। पाकिस्तान निर्माण एवं स्वतंत्रता प्राप्ति आदि।

5. श्रीनेहरूचरितम् : (18 सर्ग)—लंदन से शिक्षा पूर्ण करके भारत में वापस आने के बाद अंग्रेजों के अत्याचार एवं देश की दुर्दशा से नेहरू जी का अवगत होना। पं. मोतीलाल नेहरू का भारत दुर्दशा के विषय में संकेत करना। पुनः बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी से मिलना तथा सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से संलग्न होना। इस प्रकार कहीं राजकीय समाचारों में गतिरोध, कहीं साइमन कमीशन का विरोध और कहीं होमरूल भंग करने के लिए गतिविधियाँ कीं। विदेशी वस्त्रों की होली, प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार एवं शासन विरोधी भाषण करके नेहरू जी का कारागार में जाना। तदनन्तर लाहौर में जाकर कांग्रेस अध्यक्ष के आसन से 'पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति हमारा लक्ष्य है' यह घोषणा की। पुनः दूषित 'नमक कानून' तोड़ा, किसानों का आंदोलन चलाया तथा अनेक बार कांग्रेस की अध्यक्षता की। देश स्वतंत्र हुआ, विभाजन हुआ तथा महात्मा गांधी का भी कथावशेष कर दिया गया।

पञ्चम् अध्याय : उबीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित स्वाधीनता संग्राम **112**

1. स्वराज्य विजयम् : (20 सर्ग)—प्रथम, द्वितीय सर्ग में महाकाव्य एवं भारतभूमि का परिचयात्मक वर्णन। 'अथ भारतस्याधोगतिवर्णनात्मकः' तीसरे सर्ग के अंतर्गत भारत देश की सर्वतोमुखी अधोगति का वर्णन। 'अथ वैदेशिकानामाक्रमणोपक्रमस्य सिंहावलोकन, नाम चतुर्थ सर्ग में सिकंदर से लेकर गुलाम तथा मुगल शासकों के आक्रमण का संक्षिप्त परिचय एवं महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, छत्रसाल आदि के महत्त्वपूर्ण योगदान का वर्णन। 'स्वतंत्रतान्दोलनस्य वर्णनात्मकः' नामक पंचम सर्ग से ही स्वतंत्रता से

विदेशी वस्त्र बहिष्कार, गांधीजी और मोतीलाल नेहरू की बातचीत, बेलगाँव का कांग्रेस अधिवेशन, साम्प्रदायिकता के विरोध में गांधीजी का अनशन, श्रमिक आंदोलन का नेतृत्व सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक कानून, गांधीजी की दाण्डी यात्रा, जवाहरलाल का सपरिवार कारावास, लंदन में गोलमेज, कांग्रेस अधिवेशन, गांधी-इर्विन समझौता, द्वितीय गोलमेज सभा में गांधी जी का भाग लेना, जवाहर लाल को दो वर्ष का कारावास, देहरादून कारागार में नेहरू का इंदिरा को पत्र लिखना, महात्मा जी का यरवदा-कारावास, नेहरू का गांधी से पूना में मिलना, प्रयाग में बंदी, प्रेसीडेंसी और फिर अलीपुर में कारावास, कांग्रेस का त्रिपुरा और कलकत्ता अधिवेशन, कांग्रेसीय मंत्रिमंडल का निर्माण, भारत छोड़ो आंदोलन, हिंदू-मुस्लिम उपद्रव, देश-विभाजन, विशिष्ट शिष्टमंडल का आगमन एवं 15 अगस्त, 1947 ई. को स्वतंत्रता प्राप्ति आदि की घटनाएँ वर्णित हैं।

4. श्रीभक्तसिंहचरितम् : (7 सर्ग)—भगतसिंह के पितामह अर्जुन सिंह पिता श्री कृष्ण सिंह, पितृव्य श्री स्वर्ण सिंह तथा श्री अजीत सिंह के देशभक्तिपूर्ण प्राणोत्सर्ग का वर्णन है। देश के लिए संघर्ष करते हुए विदेशी सरकार द्वारा कठोर कारावास की यातना से मृत्यु, भाई की मृत्यु की मृत्यु से दुःखी अजीत सिंह का अंग्रेजों के विरुद्ध घोर युद्ध छेड़ना, 'भारतमाता सोसाइटी' बनाना, माण्डले किले में बंदी, छूटकर विदेश जाने पर 'गुप्त क्रांति दल' का निर्माण, विदेशी शासन द्वारा अभियोग लगाकर देश से निष्कासन, भगतसिंह के पिता का तिलक के पदचिह्नों पर चलते हुए स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत होना, अनेकों बार जेल जाना। श्री कृष्णसिंह को पुत्र रूप में 28 सितम्बर, 1907 ई. को श्री भगतसिंह का जन्म, भगतसिंह का बचपन से ही क्रूर अंग्रेजों के प्रति बैरभाव, गांधीजी के असहयोग आंदोलन में सम्मिलित, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, भगतसिंह का हृदय विदीर्ण एवं अंग्रेजों को समूल नष्ट करने का कृतसंकल्प, स्वदेशी वस्तुओं-वस्त्रों को स्वीकार करना तथा विदेशी वस्तुओं-वस्त्रों की होली जलाना, चौरीचौरा काण्ड, लाला लाजपतराय द्वारा लाहौर में नेशनल कॉलेज की स्थापना तथा भगतसिंह का प्रवेश, फ्रांस देश के 'बेला' नामक विश्वविख्यात क्रांतिकारी के लेखों तथा भारतेन्दुकृत 'भारत दुर्दशा' से प्रभावित होना, सक्रिय क्रांति में योगदान, भगतसिंह द्वारा 'भारत सभा' का गठन, काकोरी काण्ड, साइमन कमीशन का भारत आगमन एवं विरोध, लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज एवं उनकी मृत्यु, लाजपतराय के हत्यारे साण्डर्स की राजगुरु एवं भगत सिंह द्वारा हत्या, दिल्ली की महासभा में भगतसिंह एवं

आंदोलन, नागपुर कांग्रेस अधिवेशन, बारदोली सत्याग्रह, मोपला विद्रोह, मलाबार दंगा, चौरीचौरा काण्ड, सी.आर.देसाई, मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भाई पटेल एवं अजमल खान का कौंसिल में प्रवेश हेतु संस्था का गठन, गांधीजी का विरोध, कांग्रेस अधिवेशन में सी.आर.देसाई गुट की हार एवं राजगोपालचारी तथा अंसारी गुट की जीत, कांग्रेस विभाजन तथा गोलमेज सम्मेलन का उल्लेख है। 'अथ साइमन कमीशनत्' नामक पन्द्रहवें सर्ग के अंतर्गत के नारों से सर्वत्र विरोध, लाला लाजपतराय की निर्मम पिटाई एवं मृत्यु, लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष एवं पूर्ण स्वराज्य की घोषणा का उल्लेख है। 'सुभाषाधिकृतः' सोलहवें सर्ग के अंतर्गत त्रिपुरा कांग्रेस महाधिवेशन में सुभाषचंद्र बोस का अध्यक्ष चुना जाना, पट्टाभिराम शास्त्री की हार से गांधी जी क्षुब्ध, सुभाष जी का दल से त्याग-पत्र देना, 'फारवर्ड ब्लॉक' का गठन तथा 'आजाद हिंद फौज' संगठन का निर्माण उल्लिखित है। 'क्रांतिवह्नेरुद्दीपनं नाम' सत्रहवें सर्ग के अंतर्गत भगतसिंह एवं वीरवर यतीन्द्र का स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग, लाला लाजपतराय के हत्यारे की भगतसिंह द्वारा गोली मारकर हत्या करना, पुनः राजगुरु, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद तथा बटुकेश्वर दत्त द्वारा दिल्ली के राजसभागार में बम फेंकना, भगतसिंह, बसु, सुखदेव, यतीन्द्रनाथ को फाँसी तथा जलियाँवाला बाग काण्ड के हत्यारे 'जनरल डायर' की ऊधमसिंह द्वारा इंग्लैंड में जाकर हत्या करना आदि वर्णित है। 'क्रांतिगं' नामक अठारहवें सर्ग के अंतर्गत इंग्लैंड में लेबर पार्टी के स्थान पर अनुदार दल का सत्ता में आना, गांधी-इर्विन समझौते को नकारकर कांग्रेसी नेताओं को कारागार में डालना, पुनः गांधी-इरविन पैक्ट, गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में आचार्य विनोबा भावे आदि का सम्मिलित होना, गोलमेज सम्मेलन अस्पृश्यता आंदोलन, क्रिप्शमिशन, क्रिप्शमिशन की निरर्थकता, प्रयाग महासभा में 'करो या मरो' की घोषणा की। इसके बाद 'प्रासंगिक-दिल्ली नगर वर्णन' नामक उन्नीसवाँ सर्ग है। 'स्वराज्याभिषेको' नामक बीसवें सर्ग में देश का विभाजन, जिन्ना द्वारा पाकिस्तान की माँग, 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र, नेहरू प्रधानमंत्री एवं पटेल गृहमंत्री चुने गए आदि घटनाओं का उल्लेख है।

2. गांधिगाथा : (पूर्व एवं उत्तर भाग)—पूर्व भाग में गांधीजी के बचपन से प्राणोत्सर्ग तक की कथा तथा उत्तर भारत में उनके दिव्य संदेश हैं। पूर्व भाग के अंतर्गत बाल्यावस्था, शिक्षार्जन के उपरान्त अफ्रीका का राजनीतिक जीवन—'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना, बोवर युद्ध, जुलू विद्रोह, भारत प्रत्यागमन, कोचरब ग्राम में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, चम्पारन के नील

1

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय नवजागरण

आधुनिक राष्ट्रीय नवजागरण विदेशी सत्ता की परवशता से मुक्ति पाने के प्रयास में हुआ। 16वीं और 19वीं शताब्दी के बीच यूरोप महाद्वीप के अनेक देश और रूस तथा जापान में साम्राज्यवादी वासना ने जोर मारा। इन देशों के बीच साम्राज्य विस्तार की प्रतिस्पर्द्धा हुई। फलस्वरूप चीन, ईरान, अरब, तुर्की, अफगानिस्तान, स्याम, बर्मा, भारत, इंडोनेशिया और इंडोचीन जैसे निर्बल देश साम्राज्यवादी लिप्सा के शिकार बने, इनका शोषण होने लगा किंतु यह शोषण अधिक समय तक न चल पाया। 18वीं शताब्दी के बाद एशिया के इतिहास ने करवट ली, स्वाभिमान जगा, अस्तित्व रक्षा की भावना प्रबल हुई और आरोपित सत्ता के विरुद्ध असंतोष ने स्पष्ट रूप ग्रहण करना आरम्भ किया। इस सुलगते विद्रोह को हवा दी—'अमरीकी स्वाधीनता के घोषणा-पत्र, फ्रांसीसी और रूसी आदि क्रांतियों ने।' फ्रांस की जनसत्तात्मकता तथा राष्ट्रीयता की भावना, ब्रिटिश क्रांति की औद्योगिक महत्ता और रूसी क्रांति की साम्यवादी विचारधारा ने राष्ट्रवाद के स्वरूप-निर्धारण में अपूर्व योग दिया। इस राष्ट्रीय जनजागरण का अर्थ संबद्ध-भूखण्ड और उसमें बसी हुई जनता की स्वतंत्रता मात्र ही नहीं, बल्कि उस नयी भावना के स्पन्दन से भी रहा, जो उसे अतीत की कूपमण्डूकता, विरक्ति, आलस्य तथा अकर्मण्यतापूर्ण संतोष की निद्रा से जागृत करके विश्व राजनीति की नयी धारा के बीच डाल दे, जिससे वह विश्व संपर्क, सहयोग और आत्म-निर्भरता में सक्रिय भाग ले सके।[1]

जब यूरोप की राजनीतिक राष्ट्रीय शक्तियों (हालैंड, पुर्तगाल, फ्रांस और इंग्लैंड) ने सैनिक व्यापारी संघों के माध्यम से भारत में उपनिवेश स्थापित करने आरम्भ किये और बाद में भारत की राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए संघर्ष किया तो भारत यूरोप की राष्ट्रवादिता के संपर्क में आया।

बना लिया जाना, स्वरूपरानी तथा कमलानेहरू का महिला संगठन के साथ, विदेशी वस्तु, वस्त्र का बहिष्कार और खादी का प्रचार, इंदिराजी का साबरमती आश्रम में गांधीजी की सन्निधि में निवास, कारागत जवाहरलाल नेहरू की इंदिराजी के अध्ययन के विषय में चिंता, बालिका इंदिरा द्वारा 'वानरसेना' नाम से बाल संगठन बनाना, अपने से बड़ों के अनुकरण पर उसकी बैठक आयोजित करना तथा भाषण देना, बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू जी के बंदी बना लिए जाने पर इन्दिरा जी का प्रयाग प्रत्यागमन, विजयलक्ष्मी पंडित का कारावास, इंदिरा जी का एक विद्यालय में तिरंगे ध्वज के फहराने के प्रयास में अंग्रेजी पुलिस से आहत होना, इंदिरा गांधी और फिरोज गांधी का नैनी कारागार में डाल दिया जाना, स्वाधीनता आंदोलन का उग्रतर प्रसार और अंग्रेजों द्वारा भारतीय समाज में भेद-भाव फैलाना, 14 अगस्त, 1947 ई. को मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में पृथक् राष्ट्र पाकिस्तान की घोषणा, भारत और पाकिस्तान में प्रव्रजित होते हुए हिंदू-मुसलमानों में संघर्ष और रक्तपात एवं स्वतंत्र भारत आदि वर्णित है।

2. श्रीगांधिगौरवम : (8 सर्ग)—अफ्रीका में अंग्रेजों के विरुद्ध सुदीर्घकाल तक संघर्ष के उपरान्त गांधीजी 1901 ई. में भारत को स्वतंत्र करने के लिए आए, दीनाशावा छा की अध्यक्षता में होने वाले कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी का पहली बार सम्मिलित होना, गोपाल कृष्ण गोखले तथा सिस्टर निवेदिता से भेंट, लार्ड कर्जन की सभा, अहिंसा एवं अछूतोद्धार, सत्याग्रह, चम्पारन में नील आंदोलन, काठियावाड़ में मजदूर समस्या का समाधान, खेड़ा सत्याग्रह, रौलेट एक्ट एवं विरोध, सर्वोदय और हिन्द सुराज्य पुस्तकों का वितरण, सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन, पंजाब में अंग्रेजों की दमन नीति, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, हंटर कमेटी, अमृतसर का कांग्रेस अधिवेशन, ए. ओ. ह्यूम द्वारा दाण्डी यात्रा, गोलमेज कांफ्रेंस, नोआखाली में मुसलमानों का उपद्रव, बिहार में हिंदुओं का उपद्रव, 14 अगस्त, 1947 ई. को जिन्ना के नेतृत्व में पृथक् राष्ट्र पाकिस्तान, 15 अगस्त, 1947 ई को भारत में स्वतंत्रता की घोषणा, 30 जनवरी, 1948 ई. को गांधीजी की हत्या आदि घटनाओं का उल्लेख है।

3. श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम् : (21 सर्ग)—बैरिस्टर जवाहरलाल नेहरू का वकालत न करके पटना के कांग्रेस अधिवेशन में गोपालकृष्ण गोखले के विचारों से प्रभावित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ना, होमरूल आंदोलन, नेहरू जी का छह मास का कारावास, प्रिंस ऑफ वेल्स के विरोध में कारावास,

कि उस समय तक मुद्रणाभाव में साहित्य का उपयोग इतने व्यापक स्तर पर नहीं हो सका था।"[6]

निकट अतीत के भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय किसी क्षेत्र-विशेष की जनभाषा न होने के कारण यद्यपि संस्कृत में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं जैसी राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष नहीं दिखाई पड़ा, तथापि वह राष्ट्रीय संस्कृति का प्राणतत्त्व, जो तत्-तत् भारतीय भाषाओं में सस्पन्द हो उठा था, संस्कृत का ही था। वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत और अन्य विभिन्न काव्य-विधाओं में निबद्ध संस्कृत ग्रन्थों का उतना ही योगदान रहा, जितना विदेशी क्रान्तियों से सम्बद्ध साहित्य का।"[7] प्रत्युत ये ग्रन्थ और भी अधिक नवजागरण के उपजीव्य रहे। धार्मिक सुधारान्दोलन के प्रत्येक अग्रेसर का आधार वेद और तदाश्रित साहित्य ही रहा है। अभिजात्य के मिथ्यावलेप से लिप्त अंग्रेज शासकों के विचार से भारतीय असभ्य, बर्बर और केवल शासनार्ह ही थे, किन्तु उन्हीं में से जिन अन्वेषकों ने उसकी अमृतप्रज्ञा का, उसके साहित्य में अवगाहन करके किरण मात्र भी पा लिया, वह इस सत्य को स्वीकार किये बिना नहीं रहा—"निःसन्देह ऐसी कल्पना नहीं की जाएगी कि हमारे पूर्वी साम्राज्य में हमें साधारण मनुष्य जाति से व्यवहार रखना होता है। हम वहाँ ऐसी असभ्य जातियों से सम्पर्क में नहीं आते। जो यूरोपियों की उत्कृष्ट शक्ति और प्रतिभा के सम्मुख विनीत हो सकें, प्रत्युत हम ऐसे महान् एवं प्राचीन लोगों के बीच जा पहुँचते हैं, जो कुछ तो हमारे ही कुल में अपने उद्भव के चिह्न ढूँढ़ते हुए उस समय सभ्यता के एक ऊँचे पद पर आसीन हुए, जब हमारे पूर्वज असभ्य थे और जिनके पास अंग्रेजी का नाममात्र का भी अस्तित्व होने के शताब्दियों पूर्व एक परिष्कृत भाषा, एक सम्बर्द्धित साहित्य और दर्शन की दुर्बोध पद्धतियां विद्यमान थीं। उन्होंने भारत से आशा की—"बलपूर्वक अधिकार, उद्दण्डता और लूट-खसोट के बदले भारत हमें शायद मस्तिष्क की सहिष्णुता तथा शिष्टता, लालसा रहित आत्मा की शान्तिपूर्ण संस्तुष्टि, सहानुभूति आत्मा की शान्ति और सभी प्राणियों के लिए एकात्मकारी तथा शान्तिदायी प्रेम सिखायेगा।"[8]

विदेशी अध्येताओं को संस्कृत साहित्य की इस अवगति ने अवश्य ही भारत पर से उनकी धृष्ट साम्राज्यवादी पकड़ को शिथिल करने को बाध्य किया होगा; यद्यपि भारत विभिन्न जातियों, धर्मों और भाषाओं की भूमि रहा है, किन्तु उसकी एक ऐसी सम्बर्द्धित भाषा और साहित्य है, जो सारी विभिन्नताओं, सारे बिखरावों को एक सूत्र में बाँधती है और वह भाषा है 'संस्कृत'।

संस्कृत के नव-जागरण के प्रसंग में 1784 महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि इससे पहले भी फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में संस्कृत से लोग परिचित हो गये थे। 1785 में चार्ल्स

बटुकेश्वर दत्त द्वारा बम फेंकना, दिल्ली न्यायालय में भगतसिंह पर मुकद्दमा, लाहौर हाईकोर्ट में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को आजन्म कारावास, जेल में सुधार आंदोलन, यतीन्द्रनाथ की जेल में मृत्यु, न्यायालय में भगतसिंह की पुनः पेशी, इर्विन का विशेष न्यायालय ट्रिब्यूनल भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को मृत्युदण्ड, भगतसिंह का देशवासियों के लिए संदेश, नमक कानून एवं गांधी इर्विन समझौता, भगतसिंह की अंतिम यात्रा।

5. झांसीश्वरीचरितम् : (22 सर्ग)—प्रारंभ में भारत देश की दुर्दशा, अंग्रेजों का अत्याचार, पंजाब का करुण क्रंदन, बंगाल के निवासियों का आर्तनाद, स्वराष्ट्राभिमान का पतन आदि भारत दुर्दशा का चित्रण। लक्ष्मीबाई का मोरोपन्त के घर जन्म, लक्ष्मीबाई में दुर्गा, चण्डी आदि की कवि द्वारा कल्पना, लक्ष्मीबाई का वीरोचित बाल्यकाल, बाल्यावस्था से ही अंग्रेजी शासकों के अत्याचार से मार्मिक पीड़ा, देश की रक्षा-सुरक्षा हेतु बहुविध चिंताएँ, जीजाबाई आदि देशभक्त वीर महिलाओं से प्रेरणा, झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ लक्ष्मीबाई का विवाह, रानी द्वारा झांसी राज्य में अभूतपूर्व देश-भक्ति का संचार, गंगाधर राव की आकस्मिक मृत्यु तथा राज्यभार रानी के कंधों पर, अंग्रेजों द्वारा झाँसी राज्य के अधिग्रहण का प्रयास, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई एवं अंग्रेजों से भयंकर युद्ध, तांत्याटोपे द्वारा रानी को अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता, अंग्रेजों की पराजय अंग्रेजों का पुनः आक्रमण, देशद्रोही दुल्हाजू द्वारा अंग्रेजों की सहायता एवं दुर्ग में प्रवेश रानी के साथ विश्वासघात एवं हत्या, रानी का वीरगति को प्राप्त होना आदि घटनाओं का वर्णन है।

उपसंहार **201**

सहायक ग्रंथ सूची **206**

की गयी। उल्लेखनीय है कि जब यूरोप में 'यूरोप केन्द्रीयतावाद' का वर्चस्व था, पश्चिमी यूरोप के अनेक शोधकर्त्ता प्राच्य सभ्यताओं के बहुत बाद हुई है, उस समय रूसी संस्कृतज्ञ और भारतविद् इवान मिनायेव आदि उस धारणा का विरोध और भारतीय सभ्यता और संस्कृति की उत्कृष्टता का दृढ़तया प्रतिपादन करते थे।[12]

महान् रूसी लेखक लेवतोलस्तोय का भारत से परिचय संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के माध्यम से मिनायेव और ओल्देन बुर्ग के सम्पर्क से हुआ। वे भारतीय दार्शनिक चिन्तन से अत्यन्त प्रभावित थे। तारकनाथ दास के पुत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने नवजागरण का आह्वान किया था—"(आप लोग) प्रशासन के अत्याचारों में, दुष्टता में भाग न लें—संसार में काई भी आपको दास नहीं बना सकता।"[13]

उन दिनों अधिसंख्य विद्वानों का मत था कि गान्धार कला यूनानी-रोमन कला का आंचलिक रूप है, जबकि भारत और उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रभाव को वे या तो कम आँकते थे या उसे बिल्कुल अस्वीकार कर देते थे। वे ई. पू. चौथी-तीसरी शताब्दियों की भारतीय कला विदेशीय मूल की है—ऐसा मानते थे। ऐसी दृष्टि न केवल यूरोपीय, अपितु कुछ भारतीय शोधकर्त्ताओं ने भी अपना रखी थी। ओल्देन बुर्ग जैसे रूसी संस्कृतविदों ने इस प्रवृत्ति का दृढ़ता से विरोध किया। इस सिलसिले में उन्होंने ब्रिटिश इतिहासकारों से अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार करने को कहा।[14]

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता—'आध्यात्मिकता', जिसका प्रतिपादन भारतीय भी अपनी संस्कृति की अद्वितीयता को रेखांकित करने की दृष्टि से करते रहते थे और अब भी करते हैं, को भौतिकवादी दृष्टिकोण के आगे एक हेय अतिरेक-सा मानकर यूरोप के भारतविद् भारत पर 'इह लोक की आकांक्षाओं से मुक्त' होने का आरोप लगाते थे। ओल्देन बुर्ग ने इस विचारधारा का भी प्रतिवाद किया। उन्होंने लिखा—"इस कपोल-कल्पना को बहुत पहले ही खत्म कर देना चाहिए था कि भारत विशेषतः धर्म का देश है। बेशक, इस बात में कोई सन्देह नहीं कि इस क्षेत्र में भारत ने विराट सृजन किया है, लेकिन यह बात भी उतनी ही निर्विवाद है कि दूसरे जनगण की भाँति भारतीयों का भी जटिल सामाजिक जीवन था जो कि कृषि, ग्रामीण शिल्प व उद्योग तथा शहरी व्यापार भारत के जीवन में दूसरे देशों से कतई कम महत्त्व नहीं रखते थे। भारत के आर्थिक जीवन को जाने और समझे बिना हम कभी भी भारत को उसके जटिल इतिहास को नहीं समझ पायेंगे।"[15]

विदेशियों की इस प्रकार संस्कृत-भाषा और उसके माध्यम से भारतीयता में रुचि देखकर भारतीयों के दासता से जड़ीभूत मन में स्वराष्ट्र के प्रति स्वाभिमान और गौरव का भाव जागा। उस समय तक पाश्चात्य वैज्ञानिक चाकचिक्य के सहसा

"भारत में ब्रिटिश सत्ता का उपयोग मूलतः ब्रिटिश हितों की रक्षा और विकास में हुआ। चूँकि भारतीय और ब्रिटिश हितों में विरोध था, इसलिए ब्रिटेन और भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों और दलों में विभिन्न अंशों में, पारस्परिक द्वन्द्व का जन्म हुआ। राजनीतिक राष्ट्रवाद हितों के इस संघर्ष का परिणाम था और इसके कारण देश में कई राजनीतिक आन्दोलनों का उद्भव हुआ। इन आन्दोलनों के लक्ष्य थे—राजनीतिक सत्ता में अधिकाधिक सहभागिता और फिर क्रमशः डोमिनियनस्टेट्स, होमरूल और पूर्ण स्वराज।"[2] विभिन्न आन्दोलनों को दो कोटियों में बाँट सकते हैं। एक तरफ विदेशी शासन के विरुद्ध विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में अखिल भारतीय लक्ष्य का संयुक्त आन्दोलन चल रहा था। भारत को विदेशी राजनीतिक नियन्त्रण से मुक्त कराना इस आन्दोलन का सम्मिलित साध्य था। दूसरी ओर उद्योगपतियों, व्यापारियों, मजदूरों, किसानों, पेशेवर लोगों, विद्यार्थियों आदि के भिन्न-भिन्न हितों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनके अपने लिए अलग-अलग आन्दोलन प्रवर्तित हुए। उद्देश्य एवं प्रभाव में सीमित होने पर भी विरोध के होने के कारण इन आन्दोलनों से अनायास ही राष्ट्र-हित सम्पन्न होता था।

कुछ तथ्यानभिज्ञ 1857 के स्वाधीनता संग्राम को सामन्तीय दुःसाहस मात्र मानते हैं, "पर जैसा कि डिसराइली ने 27 जुलाई, 1857 को 'कामन्स सभा' में घोषित किया था—यह आन्दोलन फौजी बगावत नहीं बल्कि राष्ट्रीय विद्रोह था।"[3] इसमें देश के विभिन्न भागों के जनों और विभिन्न जातियों का सहयोग था। जनता में व्याप्त असन्तोष और व्यग्रता उनके मूल कारण थे।[4] क्रान्तिकारियों के अपने आदर्श और उद्देश्य भले ही भिन्न रहे हों, पर उनके मन में एक सामान्य धारणा थी कि अंग्रेज नहीं रहेंगे।[5]

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन चेतना के बीच राष्ट्रीय चेतना विविध रूपों में प्रकट हुई। सशस्त्र क्रान्तिकारियों के जहाँ महत्तम राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनन्त बलिदान किये; कांग्रेस जैसी राजनीतिक संस्थाओं से जहाँ कुछ लोग वैध ढंग से उसे पाने की कृच्छ साधना किये, वहीं मुमूर्षराष्ट्र को चेतना दान करते हुए अनेक बुद्धिजीवियों ने धर्म और दर्शन का भी सहारा लेकर अभियान में स्वयं को सम्मिलित किया।

राष्ट्रीय नवजागरण और संस्कृत

भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के संगठन और विकास में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा और वह भी 16वीं शताब्दी की मुद्रण क्रान्ति से सम्भव हो सका। "इससे पहले मुस्लिम परतन्त्रता के युग की परिस्थिति के प्रतिकूल होने पर भी साहित्य में जो राष्ट्रीय जागृति की ऊष्मा अनुभव नहीं की जा सकी; वह इसलिए

उनके मानवीय विचार व्यापक हुए तथा उन्होंने समाज व साहित्य के प्राचीन बन्धनों को तोड़कर मानवीय हृदय को निकट से पहचाना। देशी-विदेशी विविध साहित्यिक कृतियों के अध्ययन के फलस्वरूप संस्कृत साहित्यकारों को नवीन भाव-भूमि मिली, जो कविता, चम्पूकाव्य, रूपक, गद्यकाव्य, उपन्यास, चरितकाव्य, कथा, निबन्ध आलोचना व पत्र-साहित्य आदि विविध साहित्यिक विधाओं में परिलक्षित होती है। अनेकानेक ऐसी साहित्यिक विधाएँ आईं, जो पहले कभी नहीं देखी गयी थीं।''[17] जैसे—आत्मचरित—केरलवर्म वलिय कोइतम्बुरान का 'विशाख-विजयम' कोरदरामचन्द्र कवि का 'स्वोदय-महाकाव्यम्', चुनक्कर रामबारियर का 'रामात्मचरितम्' आदि, यात्रा-साहित्य—शैल दीक्षित के 'कावेरीगद्यम्' और 'प्रवासवर्णनम्', ए. राजगोपाल चक्रवर्ती का 'तीर्थाटनम्', हरिहरसुरूप शास्त्री का 'काश्मीर-यात्रा', डॉ. सत्यव्रत शास्त्री का 'शर्मण्यदेशः सुतरांविभाति' आदि और लघु-कथा—जिसके प्रमुख लेखकों में अप्पाशास्त्रीराशिवडेकर, चारुचन्द्रवन्द्योपाध्याय, विधशेखर भट्टाचार्य, भट्ट मथुरानाथ नारायण शास्त्री, कांकर केशवचन्द्र दास, डॉ. राजेन्द्र मिश्र और श्रीमती नलिनी शुक्ला आदि हैं। समीक्षा और समीक्षाशास्त्र जो र. कृष्णमाचार्य, आर. वी. कृष्णमाचार्य, अप्पाशास्त्रीराशिवडेकर, हरप्रसाद शास्त्री, टी. गणपति शास्त्री, विधुशेखर भट्टाचार्य, डॉ. रामजी उपाध्याय, श्री सत्यनारायण शर्मा, पं. कृष्ण शर्मा श्री लक्ष्मण शास्त्री, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, डॉ. वीरभद्र मिश्र, डॉ. राधा वल्लभ त्रिपाठी, डॉ. रहस बिहारी द्विवेदी और डॉ. राजेन्द्र मिश्र आदि के हाथों समृद्ध हुआ और हो रहा है पत्र साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती मनोरमा तम्बुराटी और केरलाधिपति कार्तिकतिरनाल महाराज, प्रेमचन्द तर्कालंकार, व्रजगोपाल तर्कालंकार, केरलवर्मबलियकोइतम्बुरान, श्री निवास दीक्षित शास्त्री, कुच्चिरा मवर्मवलियतम्बु-रान, ए. आर. राजराजवर्मकोइतम्बुरान, अप्पाशस्त्रीराव शिवडेकर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

काव्य की विविध विधाओं के अतिरिक्त इस काल में व्याकरण, भाषा-विज्ञान, संगीत-शास्त्र, आयुर्वेद, दर्शन, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, कृषि, पाक-कला, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र, आखेट, गणित और ज्योतिष जैसे विषयों पर भी साहित्य की रचना हुई। सद्यः सामाजिक चेतना की समुत्तेजक साहित्यिक-विधा नियतकालिक पत्र होते हैं। संस्कृत के अनेक प्रसिद्ध पत्रों को देखने से विदित होता है कि अंग्रेजी आदि भाषाओं के पत्रों की अपेक्षा रूपाकार और प्रसार में स्वल्प होते हुए भी संस्कृत के पत्रों का भी अन्य भाषाओं के पत्रों की भाँति ही राष्ट्रीय जन-जागरण और लोकहित सम्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।[18]

जून, 1866 में वाराणसी से 'काशी विद्यासुधानिधि' अथवा 'पण्डित' नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ। यह संस्कृत का पहला पत्र था। इसके बाद संस्कृत पत्रों

विल्किंस नामक विद्वान् ने श्रीमद्भगवद्गीता का आँग्लभाषान्तर प्रकाशित किया, जिससे यूरोप में वैचारिक क्रान्ति को नया मोड़ मिला। 1784 में सर विलियम जोंस के प्रयास से कलकत्ता में 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना हुई। इस प्रतिष्ठान के द्वारा एक ओर तो संस्कृत के बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों का उद्धार हुआ, दूसरी ओर भारत में संस्कृत के सम्मिलित प्रयास से धर्मशास्त्र पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ का संकलन कराया और स्वयं उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया । 1789 में सर विलियम जोंस महोदय ने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का आँग्ल भाषान्तर प्रकाशित कराया, जिसका अनुवाद अन्य यूरापीय भाषाओं में भी हुआ।[9]

"1784 से 1834 तक की अर्द्धशताब्दी को संस्कृत के नवजागरण का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है।[10] इस काल में अनेक ग्रन्थों के संस्कृत से यूरोप भाषाओं में अनुवाद हुए। इसके अनन्तर संस्कृत पाश्चात्य विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र बन गयी। 1849 से 1974 तक जर्मनी के मैक्समूलर द्वारा ऋग्वेद के सुसम्पादित प्रकाशन से न केवल विदेशियों को, वरन् भारतीयों को भी विस्मित कर दिया। मैक्समूलर के बाद ग्रेबमैन, बेव्वर, ओल्डेनबर्ग, विशेल, गेण्डनर, लूडर्स, याकोबी, ल्यूमैन, मार्टिनहॉग, फ्रॉज़कीलहार्न, जॉर्ज बुह्लर, आचार्य मैक्डानल, पेटरपीटर्सन, अब्राहम ग्रियर्सन, जॉर्ज सी. हास और कर्नल जेम्स टॉड आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय विद्या का आस्वादन कर भारतीय संस्कृति की कीर्ति वैजयन्ती का उत्तोलन किया।

रूस में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड के संस्कृतज्ञों के माध्यम से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से आरम्भ हुआ। कालान्तर में रूस में संस्कृत-साहित्य और भारतीय संस्कृति के अध्ययन के क्षेत्र में क्रान्ति-सी आ गयी। **सेर्गेई उवारोव, फ्रीडरिखजालेड्डंग, बर्नाड डोर्न, पावेलयाकोव्लेविच चेत्रोव, कापतानकोसोविच ओट्टोबोटलिंग, वसीलीवसील्येव, इवान्मिनायेव, फिलीप्पफोर्तुनातोव, व्सेवोलोदमिल्लेर, पयोदोरक्नोएर, कुलिकोव्स्की, सेर्गेई ओल्देन बुर्ग, पयोदोर श्चेवरिस्की, अलेक्सेई बरान्निकोव, नताल्या गूसेवा आदि संस्कृतविदों द्वारा साहित्येतिहास, शब्दकोश, संस्कृत के श्रेष्ठ काव्यों का संग्रह, अभिलेख संग्रह, व्याकरण, भाषाशास्त्र, काव्यशास्त्र, दर्शन** आदि विविध क्षेत्रों में अद्भुत कार्य हुए। इस विचारधारा का जन्म हुआ कि "रूस को संस्कृतिविद् की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी गणितज्ञ की एवं इतिहासविद् की।"[11]

1887 में ओल्देन बुर्ग के अग्रेसरत्व में यूरोप और एशिया के कतिपय देशों के विद्वानों के सम्मिलित प्रयास से 'बौद्ध पुस्तक माला' नामक परियोजना आरम्भ

आधुनिक युग में जहाँ पौराणिक कथाओं और मिथकों को लेकर रचनाएँ हुईं, वहीं आधुनिक चरितों, विचारों और स्थापनाओं को लेकर भी पर्याप्त साहित्य का सृजन हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी की परबशता की बेला में जहां कुछ साहित्यकारों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपनी आहुति दे दी, वहीं कुछ ऐसे भी साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने पीड़ित मन से राजाओं और अंग्रेजों की प्रशस्तियां भी लिखी हैं "उन्नीसवीं शताब्दी में महारानी विक्टोरिया और एडवर्ड पर सर्वाधिक प्रशस्तियां लिखी गईं। कुछ कवियों ने पण्डितों व लेखकों की प्रशस्तियाँ लिखी हैं तथा कुछ ने संस्कृत ग्रन्थों व पत्र-पत्रिकाओं का गुणगान किया है। धन, धर्म, काव्यरूप व स्थलों के महात्म्य पर भी चर्चा है तथा समाज की आर्थिक विषमता से खिन्न होकर पापी-पेट की भी व्यंग्यमूलक प्रशंसा है।"[22]

प्रशस्ति काव्यों में कुछ प्रमुख हैं—विनय भट्ट का अंग्रेज चन्द्रिका, जगज्जीवन का अजितोदयम्, जगन्नाथ कवि का अशरफविलासकाव्यम्, पाच्चुमूत्तत का रामवर्ममहाराजचरितम्, श्रीश्वरविद्यालंकार का विजयिनीसकाव्यम्, रामस्वामीराजू का राजांगल महोदयः, ए. आर. राजराजवर्म कोइतम्बुरान का आंग्लसाम्राज्यम्, मंजुल नैषधम् का आंग्लाधिराजस्वागतम्, महेशचन्द्रतर्कचूडामणि का एडवर्डमहादयस्याभिनन्दनम्, मंडबीव्यंक्टरामनरसिंहाचार्य का विक्टोरियाप्रशस्तिः हृषीकेश भट्टाचार्य का राजपुत्रागमनम् धीरेश्वराचार्य का कर्जनप्रशस्तिः, बलदेवसिंह का चक्रवर्ति-विक्टोरियायाः विजय-पत्रम्, टी. गणपति शास्त्री का विक्टोरियाप्रशस्तिः, भट्टनाथ स्वामी का जार्ज-प्रशस्तिः, नन्दकिशोर भट्ट का राजराजेश्वरप्रशस्तिपत्रम् आदि।[23] "ऐसे प्रशस्तिकाव्यों को अंग्रेजों द्वारा धनादि देकर अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए लिखाया गया होगा"—ऐसा विद्वानों का विचार है पर, ऐसी प्रवृत्ति संस्कृत कवियों की ही रही हो ऐसी बात नहीं, अन्य भाषा के कवियों में भी यह देखी गयी[24] और फिर भारतीय साहित्यों की ऐसी प्रवृत्ति कोई अस्वाभाविक और बहुत आक्षेप्य भी नहीं हैं, क्योंकि विश्व में सर्वत्र शासक साहित्यकारों का अपने लिए उपयोग करते देखे गये हैं, प्रत्युत कहीं-कहीं तो साहित्यकारों का सारा कृतित्व शासक वर्ग की प्रशस्ति को ही न्यौछावर होता है[25], अस्तु, ऐसे प्रशस्ति काव्यों और प्राचीन मान्यताओं के समर्थक काव्यों की संख्या अधिक नहीं है। आधुनिक गुरु चेतना वाले काव्यों, जिनकी वृद्धि क्षण-प्रतिक्षण हो रही है, की संख्या इतनी अधिक है कि वह अब से पहले के साहित्य से होड़ ले रही है।

ऐसे काव्य जो नितान्त अर्वाचीन विषय-वस्तु पर आधृत और राष्ट्रीय किंवा जागतिक मंगल के विधायक हैं, उनमें से कुछ ये हैं—राजराजवर्म का गैर्वाणिविजयः, शंकरलाल का गोरक्षाभ्युदयम्, एम. के. तातार्य का भारतीमनोरथम्, म. म.

सम्पर्क से भारतीय भय और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से आक्रान्त और अपने को हीन अनुभव करने लगे थे। राष्ट्रीय अमर मूल्यों के 'आकर' संस्कृत वाङ्मय के अलोडन से पाश्चात्य मनीषियों ने उसके प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की, उसके अपूर्व प्रभाव से अभिभूत जो उद्‌गार व्यक्त किये, उसमें भारतीयों ने अपनी जराक्रान्त आस्था का नवीनीकरण देखा, हम भी कुछ हैं'—उनमें ऐसा भाव जगा। मैक्समूलर के ये शब्द कितने प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए होंगे—

"यदि हमें इस समस्त जगतीतल में किसी ऐसे देश की खोज करनी हो, जहाँ प्रकृति ने धन, शक्ति और सौन्दर्य का दान मुक्त हस्त होकर किया हो या दूसरे शब्दों में, जिसे प्रकृति ने बनाया ही इसलिए हो कि उसे देखकर स्वर्ग की कल्पना साकार की जा सके तो मैं बिना किसी प्रकार के संशय या हिचकिचाहट के भारत का नाम लूँगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि किस देश के मानव-मस्तिष्क ने अपने कुछ सर्वोत्तम गुणों को सर्वाधिक विकसित स्वरूप प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है, जहा के विचारकों ने जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों एवं समस्याओं का सर्वाधिक सुन्दर समाधान खोज निकाला है तथा इसी कारण वे इस योग्य हो गये हैं कि काण्ट और प्लेटो के अध्ययन में पूर्णता को पहुँचे हुए व्यक्ति को भी आकर्षित करने की शक्ति रखते हैं, तो मैं बिना किसी विशेष सोच-विचार के भारत की ओर अंगुली उठा दूँगा। यदि मैं स्वयं अपने से ही पूछना आवश्यक समझूं कि जिन लोगों का समूचा पालन-पोषण (शारीरिक तथा मानसिक) यूनानियों एवं रोमनों की विचारधारा के अनुसार हुआ तथा अब भी हो रहा है और जिन्होंने सेमेटिक जातीय यहूदियों से भी बहुत कुछ सीखा है, ऐसे यूरोपीयजनों को यदि आन्तरिक जीन को पूर्णता प्रदान करने वाली सामग्री की खोज करनी हो, यदि उन्हें अपने जीवन को सच्चे रूप में मानव जीवन बनाने वाली तथा ब्रह्माण्ड-बन्धुत्व (ध्यान रखिए कि मैं केवल विश्वबन्धु की बात नहीं कर रहा हूँ) की भावना को साकार बना सकने में समर्थ सामग्री की खोज करनी हो तो किस देश के साहित्य का सहारा लेना चाहिए, तो एक बार फिर मैं भारत की ओर इंगित करूँगा, जिसने न केवल इस जीवन को ही सच्चा मानवीय जीवन बनाने का सूत्र खोज निकाला वरन् परवर्ती जीवन किंबहुना शाश्वत जीवन को भी सुखमय बनाने का सूत्र पा लेने में सफलता प्राप्त कर ली है।"[16]

नवजागरण काल में संस्कृत साहित्य में शैली और वस्तु दोनों दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जीवन के विविध पक्ष काव्य-वस्तु बनने लगे। शास्त्रीय जकड़ ढीली होने लगी और साहित्य की समस्त विधाएँ व्यक्तिपरकता से हटकर लोकोन्मुख होने लगीं। कवियों की रुचि में युगानुरूप संस्कार हुआ। "पहली बार राष्ट्रीय एकता के विविध उपादानों का वर्णन उत्साहवर्द्धक एवं करुणावर्द्धक रहा।

छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह, रानी दुर्गावती, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोस, लोकमान्य तिलक, मालवीयजी, महात्मा गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू, वीरसावकर, राजेन्द्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, रफी अहमद किदवई, अब्दुल गफ्फार खाँ, मीरमकबूलशेखरबानी, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार पटेल, सरोजनी नायडू, युवराज कर्णसिंह आदि नेताओं और राष्ट्र पुरुषों पर भी एक से अधिक काव्य रचे गये और रचे जा रहे हैं। स्वदेशीय चरितों और राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के अतिरिक्त विदेशीय वस्तु पर भी अनेक काव्य लिखे गये हैं; जैसे—डॉ. पी. सी. देवस्य का 'क्रिस्तु भागवतम्', पद्मशास्त्री का 'लेनिनामृतम्' और डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के 'थाइलैण्डविलासम्' और 'शर्मण्यउदेशः सुतरां विभाति' आदि।

महाकाव्य जैसी अनद्यतन साहित्य-विधा में भी जो इस शतक में प्रचुर रचनाएँ हुईं और हो रही हैं, उससे भी संस्कृत-साहित्य के नवजागरण का संकेत मिलता है। इस शताब्दी में अब तक विभिन्न विषयों पर दो सौ से भी अधिक संस्कृत के महाकाव्य लिखे जा चुके हैं।

आधुनिक संस्कृत वाङ्मय की राष्ट्रीय प्रवृत्ति के चलते वैदिक और बौद्धकालीन महिला कवयित्रियों—घोषा, विश्ववारा, अपाला, लोपामुद्रा, सावित्री, मुक्ता, नन्दा, वाशिष्ठी, सुमेधा और गौतमी आदि की परम्परा का पुनः पल्लवन होना आरम्भ हो गाया और पण्डिता क्षमाराव, श्रीमती लालारावदयालु, प्रियंवदा, बैजयन्ती, त्रिवेणी, लक्ष्मी, सुन्दरवल्ली, ज्ञानसुन्दरी, कामाक्षी, सिस्टरवालम्बाल, अलमेलम्मा, जयावेंकटा, वनमालाभवालकर आदि साहित्य-सेविका महिला रत्नों ने गीर्वाणवाणी का शृंगार किया और कर रही हैं। यही नहीं, गुलामदन्तगीर विराजदार जैसे मुस्लिम बन्धुओं से भी आज संस्कृत और तद्द्वारा भारत का कल्याण सम्पादन हो रहा है।

जैसा कि डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल महोदय का कहना है—"स्वातन्त्र्य प्राप्ति कालोत्तरे वस्तुतः संस्कृत कवि कोविदैः राष्ट्रीयभावनाया देशप्रेम्णः प्रवाह एव महायान् महान् वाहितः।"[26] स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद विघटनकारी तत्त्वों और खण्ड्यमान मूल्यों की संक्रमण वेला में राष्ट्रीयैक्य और राष्ट्रीय गौरव के महत्तर प्रयोजन की सिद्धि का दायित्व देववाणी वहन कर रही है।

युग परिवर्तन के साथ न केवल आज रचनाकारों में युगीन संवेदना उद्बुद्ध होकर उनकी लेखनी से स्वतः स्रवित हो रही है, प्रत्युत् भावुक भी आज पूरी चेतना से अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। वह जीर्ण परातनता के प्रति विद्रोही हो उठा है और आधुनिकता के प्रति अपने पूरे संज्ञान के साथ समर्पित है। पाठकीय रुचि को भी आज साहित्य से युगानुकूल अपेक्षा है—"अधुनातन संस्कृतकाव्यं तु तदेवाभिधातुं युज्यते यस्मिन् वर्तमान भारतदेशस्य राजनीतिक विसंगतीनां संस्कृतकाव्यं तु तदेवाभिधातुं

के प्रकाशन का अनवरत क्रम रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक 50 से भी अधिक संस्कृत के पत्र निकलने लगे थे। 1 जनवरी, 1907 को त्रिवेन्द्रम-केरल से कोमलमारुताचार्य और लक्ष्मीनन्दन स्वामी के सम्पादकत्व में प्रथम दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। आज सौ के लगभग संस्कृत के नियतकालिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, जिनमें से एक दैनिक भी है। संस्कृत पत्रकारिता को डॉ. रामगोपाल मिश्र तीन युगों में विभाजित करते हैं।[19]

(1) उन्नीसवीं शताब्दी

(2) स्वतन्त्रता से पूर्व, और

(3) स्वतन्त्रता के पश्चात्

"उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के मूल में सम्पादकों का आत्मबल, उत्साह और त्याग प्रधान था। इससे संस्कृत भाषा के प्रति जन जागृति का विशेष महत्वपूर्ण कार्य हुआ।"[20] उन्नीसवीं शती में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रेरक राष्ट्रीय नवोत्थान है, ऐसा विद्वानों का विचार है।[21] इस युग के विद्योदयः, उषा, संस्कृत-चन्द्रिका, सहृदया आदि श्रेष्ठ पत्र रहे हैं। अप्पा शास्त्री, हृषीकेश भट्टाचार्य, सत्यव्रतसामश्रमी, आर. कृष्णमाचारियार आदि इस काल के श्रेष्ठ पत्र-सम्पादक रहे हैं।

संस्कृत पत्रकारिता का दूसरा युग प्रगतिमान राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था। इस काल के पत्रों में राष्ट्रीयता की भावना उग्र रूप से लक्षित की जा सकती है। सन् 1906 में पुण्यपत्तनवासी शास्त्री के सम्वाद में 'सूनृतवादिनी' पत्रिका निकली इसमें तिलक के 'केसरी' पत्र की भाँति ही सिंह-गर्जन से वैदेशिक शासन का विरोध किया गया। कटु यथार्थ कथन के कारण 'सूनृतवादिनी' का प्राकशन शासन ने रोक दिया। इस काल के प्रमुख पत्रों में सुनृतवादिनी, जयन्ती, विज्ञान चिन्तामणि, संस्कृत साकेतः, संस्कृतम्, शारदा, मंजूषा, भारतसुधा, भारतश्रीः आदि थे।

तीसरे युग में संस्कृत पत्रों पर राष्ट्र के बहुमुखी उत्थान का प्रभाव पड़ा। पंचशील, गाँधीवाद आदि राष्ट्रीय नवोत्थ विचारों का प्रसार पत्रों से हुआ। इस काल के पत्रों पर स्वतन्त्र विचारों का प्रभाव अधिक रहा। सर्वगन्धा, भवितव्यम्, संस्कृत प्रभा, संस्कृतिः, सागरिका, परमार्थसुधा, ऋतम्, विश्वसंस्कृतम्, गाण्डीवम् भारती, स्वस्मंगला, बाल संस्कृतम्, कामधेनुः, सुधर्मा, विमर्शः, भारतोदयः और विश्वभाषा आदि प्रमुख संस्कृत-पत्र हैं। श्री वे. राघवन्, श्री केशव शर्मा, श्री नारायणशास्त्री कांकर, अ. व. गाडगिल, डॉ. वीरभद्र मिश्र, डॉ. रामजी उपाध्याय, डॉ. गोपालशास्त्री दर्शन केसरी, आचार्य मधुसूदन शास्त्री, श्री वासुदेव द्विवेदी, श्री विश्वबन्धु, श्रीधरभास्कर वर्णेकर, क. न. वरदराजअय्यंगार, डॉ. रमाकान्त शुक्ल आदि इस युग के सफल जागरूक पत्रकार हैं।

6. श्री श्रीधर भाष्कर वर्णेकर—''अर्वाचीन संस्कृत साहित्य'', पृ. 335
7. श्री के. संथानम्—''ब्रिटीश इम्पिरियलिज्म एण्ड इण्डियन नैशनलिज्म'', पृ. 39.-40
8. सर एम. मॉनियर विलियम—''भारतीय प्रज्ञा'' अनु. डॉ. रामकुमार राय (मूल—''इण्डिया विजडम'') पृ. 20
9. विलडूरेण्ट—''सभ्यता की कहानी'', अनु. डॉ. श्रीकान्त व्यास, पृ. 218
10. डॉ. हीरालाल शुक्ल—''आधुनिक संस्कृत साहित्य'', भूमिका, पृ. 11
11. काएतान कोसीविच—'भारत की छवि'
12. पूर्ववत्, पृ. 110
13. पूर्ववत्, पृ. 140
14.'भारत की छवि'—'ग. बोंगार्द लेविन' और 'अ. विगासिन' पृ. 151-153
15. 'भारत की छवि'—'ग. बोंगार्द लेविन' और 'अ. विगासिन', पृ. 154
16. मैक्समूलर—''हम भारत से क्या सीखें' पृ. 23 (मूल—इण्डिया, ह्वाट कैन इट् टीच अस'' अनु. श्रीकमलाकर तिवारी और रमेश तिवारी)।
17. डॉ. हीरालाल शुक्ल—'आधुनिक संस्कृत साहित्य' पृ. 15 (भूमिका)
18. पं. कृष्ण शर्मा—''प्रकाश्यमाना : संस्कृत पत्र-पत्रिकाः'' ('सागरिका'—वर्ष 11 अंक 1, वि. सं. 2029)
19. डॉ. रामगोपाल मिश्र—'संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास', पृ. 212
20. पूर्ववत्।
21. "From the earliest time of the new awakening in Sanskrit efforts have been made to publish sanskrit periodicals."

(Adyar Library Bulletin, Vol. x, Parts 1-2, pp. 43) Quoted by

—Dr. Ram Gopal Mishra—"Sanskrit Partakarita Ka Itihas." pp. 16.

22. डॉ. हीरालाल शुक्ल—''आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ. 78
23. श्री कमलापति मिश्र—'संस्कृत साहित्य' तस्याधुनिक स्वरूपं च (भारत-वाणी, जिल्द तीन, पृ. 571—प्रधान सम्पादक—श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डेय)।
24. डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर—'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य', पृ. 336
25. डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर—'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य', पृ. 496
26. डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल—'स्वातंत्र्योत्तरसंस्कृताव्यम्', 'अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यपरिचयः, —सम्पादक—डॉ. रमाकान्त शुक्लः (प्रथम खण्डः), पृ. 69
27. डॉ. राजेन्द्र मिश्र—'अधुनातन संस्कृतकविताया मूल प्रवृत्तयः' (परमार्थ—सुधा वर्ष 5, अंक 1, वि. सं. 2037)
28. डॉ. राजेन्द्र मिश्र—''अधुनातन संस्कृतकविताया मूल प्रवृत्तयः'' (परमार्थ-सुधा वर्ष 5, अंक 1, वि. सं. 2037)
29. डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर—आर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ. 493.

रामावतार शर्मा का भारतगीतिका और भारतीय गीतिवृत्तम्, मथुराप्रसाद दीक्षित का भारतविजय नाटकम्, नारायणपति त्रिपाठी का श्रीभारतमातृ-माला, पंचानन तर्करत्न का अमरमंगलम् चिट्टिगुडूर वरदारियार का सुषुप्तिवृत्तम्, वासुदेव द्विवेदी का भोजराज्येसंस्कृत साम्राज्यम्, सुरभारतीसंदेशः आदि, कपालीशास्त्री का भारतीस्तवः, बालकृष्ण भट्ट का स्वतन्त्रभारतम्, रामकृष्ण भट्ट का स्वतन्त्र भारतम् नीपजीभीम भट्ट का हैदराबाद विजयम्, श्रीमतीलालरावदयालु के कटु-विपाकः, स्वर्णपुरकृषीवलाः, वीरभा तथा जयन्तु-कुमाऊँनीयाः आदि, नारायणशास्त्री कांकर का स्वातन्त्रयज्ञाहुतिः, वासुदेवशास्त्री बागेवाडेकर का क्रान्तियुद्धम्, चिन्तामणिरामचन्द्र शर्मा सहस्रबुद्धे का राष्ट्रीयोपनिषद् और चहा-गीता, एलत्तरसुन्दरराजअय्यंगार का स्नुषाविजयम्, एल. रंगीलादास का कांग्रेस-गीता, बागीशशास्त्री का कृषकाणां नागपाशः, रुद्रप्रसाद भारद्वाज का भारत-सन्देशः, अजेयभारतम् आदि, सुरेशचन्द्र त्रिपाठी का वीरोत्साहवर्द्धनम्, विद्याधरशास्त्री का दुर्बलबलम्, रामकैलाश पाण्डेय का प्रबुद्ध-भारतम्, श्रीराचन्द्र रेड्डी का सुसंहतभारतम्, डॉ. वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का शरणार्थिसम्वादः, यज्ञेश्वर शास्त्री का भारत राष्ट्ररत्नम्, डॉ. बोम्मकंठिरामलिंग शास्त्री का सत्याग्रहोदयम्, द्वारिकाप्रसाद त्रिपाठी का भारतगणराज्यम्, रामकृष्ण शर्मा का बांगलादेशोदयम्, रदेवोपाध्याय का भारतमस्तिभारतम्, डॉ. के. एस. नागराज का भारत-वैभवम्, श्री कृष्ण जोशी का श्रीकृतार्थकौशिकम्, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी का प्राणाहुतिः, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी का राष्ट्र-गीतांजलिः, रामनाथ पाठक का राष्ट्रवाणी, डॉ. राजेन्द्र मिश्र का वाग्धूटी, फण्टूसचरितभाणः, श्रीजगन्नाथ पाठक का कापिशायिनी, डॉ. रमाकान्त शुक्ल का भातिमे भारतम् और जयभारतभूमे, डॉ. के. राघवन् का पुनरुन्मेषः, पद्यशास्त्री का बंगलादेश-विजयम्, परमानन्द का शिवभारतम्, ह्वी. आर. लक्ष्मी अम्मल का भारतीय-गीता, पं. रामराय का राष्ट्र-स्मृतिः और संस्कृतविजयः, गैरिकपाटिलक्ष्मीकान्त का भव्यभारतम्, महालिंगशास्त्री का भारतीय-विषादः, डॉ. मंगलदेव शास्त्री का दिव्यज्योतिः, रश्मिमाला, श्री धरभास्कर वर्णेकर का मनदोर्मिमाला, तीर्थभारतम्, डॉ. रामजी उपाध्याय का द्वासुपर्णा, डॉ. ह्वी. आर. शास्त्री का विक्रान्तभारतम्, सुधाकर शुक्ल का भारतीयस्वयम्बर, श्री दुर्गादत्त शास्त्री का तर्जनी और मधुवर्षणम्, विद्याधर शास्त्री का विश्वमानवीयम्, श्रीमतीरमा चौधरी का निवेदितनिवादितम्, श्रीरामवेलणकर का छत्रपतिः शिवराजः, लोकमान्यस्मृतिः, डॉ. कृष्ण लाल का शिञ्जारवः, उर्वीस्वनः, डॉ. गजानन बालकृष्णपलसुले का विनायक वीरगाथा, श्रीशठकोप विद्यालंकार का भारतीविजयम् इत्यादि। इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में गृहीत लेखकों के काव्य और परिशिष्ट में उल्लिखित अनेक महाकाव्य हैं।

संस्कृत के नवजागरण काल विशेषकर इस शताब्दी में महाराणा प्रताप,

अलंकृतमसंक्षिप्तरसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तै सुसन्धिभिः ॥
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकर जनम् ।
काव्यं कल्पोत्तरस्थायि जायेत तदलंकृतिः ॥

महाकाव्यों की लक्षण परम्परा में जो सर्वाधिक प्रचलित, सर्वमान्य, परिष्कृत एवं परिवर्द्धित लक्षण है, वह आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण में दिया है। चूँकि अनेक लक्ष्य ग्रन्थों तथा पूर्व के कई लक्षण ग्रन्थों के अनुशीलन के अनन्तर आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य का लक्षण किया है, इसलिए उन्होंने पूर्व के लक्षणों में निहित कमियों का भरपूर समाहार करने का प्रयास किया है। आचार्य विश्वनाथ द्वारा साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में उल्लिखित महाकाव्य का लक्षण निम्नलिखित है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः। सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बह्वोऽपि वा। शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः। इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्। आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्। एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह। नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्। सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः। सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः। वर्णनीय यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा। नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

जिसमें सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इनमें एक देवता या सद्वंश क्षत्रिय-जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों—नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर, शान्त में से कोई एक रस अङ्गी होता है। अन्य रस गौण होते हैं। सब नाटक संधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन संबंधिनी होती हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छंद होता है, किंतु अंतिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छंद का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छंद भी मिलते हैं। सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष,अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु (छहों), वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ण, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा,

युत्यते यस्मिन् वर्तमान भारतदेशस्य रानीतिक विसंगतीनां स्पन्दनं स्यात्। यस्मिन् वर्तमानसमाजस्य पतनोत्थानगाथा ग्रथिताः स्युः। यस्मिन् वर्तमानसर्वविधभावनानां समावेशोभवेत्।''[27]

संस्कृत के रचना-धर्माओं की राष्ट्रीय निष्ठा उनकी रचनाओं में अनेक प्रकार से व्यक्त हुई है। कहीं भारतीय गत-वैभव की वर्णना और परतन्त्रता के कारण उसके ह्रास पर शोक प्रकट किया गया है, कहीं बिना उचित-अनुचित का विचार किये संस्कृति को ओढ़ने और उसके दोषों को आत्मसात् करने की निन्दा की है, कहीं देश और संस्कृति के उद्धारक महापुरुषों का गुण-गान किया है, कहीं सामाजिक दोषों पर कठोरता से दुर्वाक् प्रहार किया है और कहीं प्राचीन को नयी पीठिका में रखकर उसकी समीक्षा की है। जैसा डॉ. राजेन्द्र मिश्र का कथन है, आज संस्कृत रचनाओं में निरुपयोगी प्राचीन के प्रति उपेक्षा भाव और नये युग के अभिनन्दन को प्रवृत्ति बलवती में निरुपयोगी प्राचीन के प्रति उपेक्षा भाव और नये युग के अभिनन्दन की प्रवृत्ति बलवती है—''अद्यतनो रससिद्धः संस्कृतकविर्न तस्मिन् रूढ़वृत्ते बद्धादरः संलक्ष्यते। नासौपूर्वाग्रहग्रस्तो न चापि तातस्य कूपो यमिति कृत्वा क्षारंजलं पातुमुद्यतः। स्वेच्छा विहारी संस्कृतकविरिदानीम्।''[28]

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में अपनी जन्मभूमि, संस्कृति और सभ्यता के प्रति जो आत्मीयता का निश्छल भाव किसी भी रूप में प्राचीन काल से ही समाविष्ट था, वह युगीन प्रभावों से रूपान्तरित होकर भी अपनी विशिष्टता से विशष्ट है। उसकी राष्ट्रीय-चेतना उग्र, दाहक और भयंकर न होकर सौम्य, शीतल और आवर्जक है। ''संस्कृत अन्य किसी भाषा से अधिक राष्ट्रीय सौमनस्य और ऐक्य विधायिनी भाषा है, क्योंकि उसकी लेखक वर्ग—हिंदी, बंगाली, मराठी, पंजाबी जैसे लेखकों-सा प्रादेशिक न होकर अखिल भारतीय है। संस्कृत के प्राचीन अथवा अर्वाचीन साहित्य के पठन-पाठन से कोई प्रान्तीयता की भावना पैदा नहीं होती, प्रत्युत एक अखिल भारतीय चेतना तथा राष्ट्रीयता की अनुभूति होती है।''[29]

संदर्भ सूची

1. श्री कृष्ण वेंकटेश पुणताम्बेकर—'एशिया की विकासोन्मुख एकता', पृ. 278 (मूल-डेवलपिङ्ग, यूनिटी ऑफ एशिया, अनु.—चन्द्रशेखर शुक्ल और बलभद्र प्रसाद मिश्र)
2. ए. आर. देसाई—''भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि'', पृ. 246 अनु. प्रयागदत्त त्रिपाठी)।
3. प्रो. मुकुट बिहारी लाल—''भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन'', भाग 1, पृ. 32
4. डॉ. रामविलास शर्मा—''सन् सत्तावन की राज्य क्रान्ति'', पृ. 333
5. श्री मन्मथनाथ गुप्ता—''क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैज्ञानिक इतिहास'', पृ. 5

शतक के महाकाव्यों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। सद्यस्क इतिहास की मर्यादोल्लंघन अनौचित्यपूर्ण और आशक्यसंभव मानकर कवि सारी नाट्य संधियों का निर्वाह नहीं कर पाये हैं। कवि को अधिकांशतः यथा प्राप्त वस्तु को ही अपनी वर्णन चातुरी से महाकाव्यत्व प्रदान करने का दुष्कर कार्य करना पड़ा है। कल्पना के कच्चे माल का उपयोग कम कर पाने की विवशता और इतिहास की अनभ्यस्त सम्मुखीनता के कारण अनेक महाकाव्यों में केवल महाकाव्य के बाह्य लक्षण का ही निर्वाह हो पाया है, जिससे उनमें महाकाव्योचित् औदात्य का समावेश नहीं हो सका है। ऐसे महाकाव्यों में 'जवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 'गांधिगौरवम्' आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें कवि महाकाव्य के एकमात्र लक्षण सर्गबद्धता को ध्यान में रखकर केवल असंख्य घटनाओं को छंदोबद्ध करते चले हैं।

स्वतंत्रता की व्यापक पृष्ठभूमि में विरचित महाकाव्य इस बात के प्रमाण हैं कि नायक के जीवन की समग्रता और महाकाव्य के कलेवर में गहरा संबंध है। यदि गृहीत वस्तु घटना-बहुत और दीर्घायामी है और महाकाव्य का कलेवर कवि सामान्य या लघु रखना चाहता है, तो वह घटनाओं का केवल संकेत भर कर सकेगा। वहाँ पात्रों के व्यापार पर आश्रित शिल्पकौशल और रस-परिपाक के लिए उसे पर्याप्त अवकाश न मिल पायेगा। ऐसे स्थलों पर या तो महाभारत जैसे महाकाव्य के लिए साहस जुटाना होगा या नायक के जीवन के खण्ड को लेकर महाकाव्योचित् पूर्णता की सृष्टि करनी होगी।

समीक्षक प्रवर डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी कुछ आधुनिक शैली के महाकाव्यों को अब तक की महाकाव्य संबंधी मान्यताओं के साथ साजंस्य करने के लिए महाकाव्य की प्राथमिक मान्यता-इतिवृत्तात्मकता का ही संस्कार करने का परामर्श करते हुए लिखते हैं—"ज्ञानविज्ञानस्यास्मिन् नवीन आलोके वस्तुनो जीर्णपरम्परा तिरोहितेव दृश्यते। अधिकांशतः कथादृव्यं तथा न स्वीकृतं यथाप्राचीनमहाकाव्येष्वावश्यकमिव प्रतीयते। एतादृशान्यपि महाकाव्यानि संति येषु कथावस्तुनोमांसलता नास्ति, तत्र विचाराणां चिंतनानां मनोवैज्ञानिक-चित्रणानां च प्राधान्यमस्ति"[3] और इस प्रकार 'तर्जनी' और 'भू-भामिनीविभ्रमम' जैसे काव्यों को महाकाव्य की कोटि में परिगणित करते हैं। ऐसा करते हुए लगता है, उनकी दृष्टि में महाकाव्य का एकमेव गुण महनीयता औदात्य ही है। 'तर्जनी' इस दृष्टि से निःसंदेह महाकाव्य की भव्यता और उदात्तता से मंडित है। उसके एकादश सर्ग में कथावस्तु भी है, किंतु जैसा कि डॉ. नगेन्द्र का कहना है—"विविधता और व्यापकता महाकाव्य के कथानक के प्रमुख गुण हैं, किंतु एकान्विति उसका प्राणतन्तु है।"[4] उस अनिवार्य 'वस्तु की एकान्विति' का इसमें अभाव है। वैसे डॉ. द्विवेदी भी अंत में स्वीकार करते हैं—"पात्रादिचित्रणाभावे

2

महाकाव्य के लक्षण

बीसवीं शती के संस्कृत महाकाव्यों से सम्बन्धित ग्रन्थों में इस स्थल पर यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्यशास्त्र में आचार्यों ने महाकाव्य का क्या लक्षण नियत किया है। पुनः उन लक्षणों का बीसवीं शती के महाकाव्यों में कितना तथा किस सीमा तक अनुपालन अथवा उल्लंघन अधुनातन कवियों ने किया है। महाकाव्य के लक्षणों के परिज्ञान हेतु प्रमुख रूप से तीन कव्यशास्त्रियों—भामह, दण्डी और आचार्य विश्वनाथ के लक्षण ग्रन्थों—काव्यालङ्कार, काव्यादर्श एवं साहित्य दर्पण का आश्रय प्रकृत स्थल पर लिया जा रहा है। भामह ने काव्यालङ्कार में कहाकाव्य का लक्षण निम्नलिखित प्रकार से दिया है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं महना च महच्च यत्। अग्राम्यशब्दमध्यं च सालंकारं सदाश्रयम् ॥
मंत्रदूतप्रयाणादिनायकाभ्युदयैरपि। पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं जातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्। युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥

कालान्तर में ज्यों-ज्यों महाकाव्यों का विकास होता रहा उसी क्रम में उसके लक्षणों में भी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुआ जिसका विकसित स्वरूप दण्डी के काव्यादर्श में दर्शनीय है—

सर्गबन्धों महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
इतिहासथोद्भूतमन्यद्वापि सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं यतुरादात्तनायकम् ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीड़ामधुपानरतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणादिनायकाभ्युदयैरपिः ॥

सम्भव है। 'ज्ञानेश्वरचरितम्' आदि महाकाव्यों में जैसे चरित को ग्रहण किया गया है, निःसंदेह इस विस्थापित मान्यताओं के युग में उनसे कोई बड़ी सीख नहीं ली जा सकती। किंतु वर्णाश्रम की रूढ़ियाँ जब कोई साहसी व्यक्ति तोड़ने की धृष्टता करता है, तो यथास्थितिवादी समाज उसे जैसा अमानवीय दण्ड देता है, धर्म-भीरू व्यक्ति इसके लिए जितना त्याग करने को विवश हो जाता है, इत्यादि से जो सहज विचारशील व्यक्ति को एक क्रांति दृष्टि मिलती है, ऐसी अनेक सामाजिक विडम्बनाओं से जूझने का जो साहस मिलता है, उसी से हम महाकाव्य की महनीयता का आकलन करते हैं ऐसे चरितों में पूरे व्यापार के बीच जो सदाशयता झलकती है धर्म-प्राण सामाजिक उसके सीधे मनोविशदीकरण का लाभ पा सकता है। इससे भी पात्र-गत औदात्य की बात बनती है।

नायक की सर्वथा गुणान्वितता को लेकर डॉ. नगेन्द्र का कथन बहुत ही समीचीन है—वैसे व्यवहार में भारत के किसी भी प्रमुख नाटक सर्वथा निर्दोष नहीं, राम और कृष्ण भी मानव दुर्बलताओं से मुक्त नहीं हैं, हो ही नहीं सकते थे, भेद केवल इतना है कि इन दुर्बलताओं का अंत में उन्नयन अवश्य कर दिया गया है।[8]

रघुवंश जैसे महाकाव्यों के लिखे जाने पर महाकाव्य के एक नायकत्व की रूढ़ि टूटी और लक्षणकार ने भी इसका अनुसरण करते हुए विधान किया—'एक वंश भवाभूपाः कुलजाब-हवोऽपिवा।'[9] **इस शतक के स्वतंत्रता संग्राम की व्यापक पृष्ठभूमि में लिखे गये कुद ऐसे महाकाव्य हैं, जिनमें एक-दो नहीं, कई नायक हैं, जो एक कुलोत्पन्न भी नहीं हैं और हिंदी प्रख्यात कुलों के न होने से उनकी कुलीनता की भी कोई निश्चितता नहीं है।** यही नहीं वर्ण्यमान प्रत्येक घटना के साथ मुख्यता एक-दो का नाम जुड़ा होने से पूरे महाकाव्य का नायक किसे माना जाए, यह भी निश्चित नहीं हो पाता। ऐसे महाकाव्य हैं—पं. द्विवेन्द्रनाथ शुक्ल का 'स्वराज्यविजयः' श्री विश्वनाथ केशवछत्रे का 'भारतीय-स्वातंत्र्योदयः', पं. परमेश्वरदत्त त्रिपाठी की 'रक्ताक्तहिमालयम्' इत्यादि। ऐसी स्थिति में नायक संबंधी नियमों के पुनः संस्कार की आवश्यकता है। हिंदी के एक समीक्षक डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने नायक के संबंध में एक प्रश्न उठाया है, जिसके उत्तर में ऐसे महाकाव्यों के नायकत्व का यथाकथचिंत् समाधान निहित है—"यदि एक वंश के अनेक व्यक्तियों की कथा से महाकाव्य बन सकता है, तो एक देश के अनेक सांस्कृतिक नेताओं या एक धर्म के विभिन्न अवतारों या तीर्थंकरों की कथा के आधार पर रचित काव्य को महाकाव्य क्यों नहीं माना जा सकता।"[10]

जैसा समीक्षा-पंडितों का कहना है कि महाकाव्य का स्थान उपन्यास ले रहा है, ऐसे संक्रमण काल में यदि महाकाव्य जीवित रह सकता है तो नवावतार लेकर

विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासंभव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से जैसे (कुमारसंभव) या चरित्रनायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है—जैसे भट्टि। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है। संधियों के अङ्ग यहाँ यथासंभव रखने चाहिए। अवसाने यहाँ बहुवचन की विवक्षा नहीं है—यदि एक या दो भिन्न वृत्त होते हों तो भी कोई बात नहीं। जलक्रीड़ा, मधुपानादिक साङ्गोपाङ्ग होने चाहिए।

महाकाव्य के पारम्परिक लक्षणों का आधुनिक लक्ष्य ग्रंथों के संदर्भ में मूल्यांकन

समसामयिक मान्यताओं का ग्रहण करके विकसित होते हुए संस्कृत महाकाव्य की परिवर्तमान पहचान के सम्यक् ज्ञापन के उद्योग में समीक्षक समय-समय पर महाकाव्य के पूर्वमान्य लक्षणों में संशोधन परिवर्द्धन करते रहे हैं। मूल्यों और मानों के संघर्ष और रूपान्तरण के इस गतिशील युग में साहित्य की विभिन्न विधाओं की भाँति महाकाव्य भी बड़ी दूर तक प्रभावित हुआ है। अन्य भाषा के साहित्य में जहाँ महाकाव्य के सृजन की संभावना स्वल्प से स्वल्पतर होती जा रही है, समाज और राष्ट्र की नयी विशेषताओं को आत्मसात् करते हुए संस्कृत महाकाव्य नवावतार-सा लेता प्रतीत हो रहा है।

नीचे हम बीसवीं शताब्दी की युग-परिस्थितियों और नवसृष्ट महाकाव्यों को दृष्टिगत करके महाकाव्य के कुछ शास्त्रीय मानकों पर विचार करेंगे—

कथा-वस्तु

भामह ने 'वृत्तदेवादि चरिताशंसि चोत्पाद्य वस्तु च'[1] और दण्डी आदि आचार्यों ने 'इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा'[2] आदि से महाकाव्य का कथानक अनुत्पाद्य और उत्पाद्य दोनों प्रकार का मानकर महाकाव्य की सृजन-सीमा को विस्तार दिया है। जहाँ तक उत्पाद्य वस्तु की बात है, संभवतः तदाक्षित अभी तक कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया है। इस शतक में अनुत्पाद्य वस्तु को लेकर बहुविध महाकाव्यों की रचना हुई है। एक ओर जहाँ—'रामचरितम्', 'सुगमरामायणम्', 'श्रीकृष्णचरितम्', 'सीताचरितम्', 'जानकी जीवनम्' आदि प्राचीन इतिहासाश्रित महाकाव्य लिखे गये हैं— 'नाचिकेतसम्', 'शुम्भवधम्', 'वामनावतरणम्', 'वृत्रवधम्' और 'सत्यानुभावम्' जैसे पुराकथाओं पर आश्रित महाकाव्यों का प्रणयन हुआ है, वहीं 'क्षत्रपतिचरितम्', 'लेनिनामृतम्', 'गांधिचरितम्', 'सुभाषचरितम्' जैसे आधुनिक ऐतिह्य वस्तु पर भी महाकाव्यों की बाहुल्येन रचना हुई है।

नितांत अद्यतन वस्तु-स्वीकार से महाकाव्य की वस्तु रूढ़ियों का भंजन इस

क्योंकि उस मूल्यव्यवस्था की पूर्णता और वृत्तात्मकता, जो महाकाव्य के वातावरण को निश्चित-नियमित करती है, एक ऐसी समग्रता, एक ऐसे पूर्ण का निर्माण करती है, जो इतना परस्पर संबद्ध और अवयविक होता है कि उसका कोई अंग अपनी ही निजता के भीतर बंद नहीं हो सकता, इतना आत्मनिर्भर नहीं हो सकता कि अपनी ही आभ्यन्तरिकता खोज ले अर्थात् एक व्यक्तित्व बन जाए"[18] दूसरे स्थल पर लुकाच महोदय शब्दान्तर से कहते हैं—"अपनी नियति के वाहक के रूप में महाकाव्य का नायक अकेला नहीं होता, क्योंकि यह नियति दृढ़ सूत्रों द्वारा उसे ऐसे जनसमुदाय में बाँध देती है, जिसका भाग्य उसके अपने भाग्य के भीतर रूपायित होता है।"[19]

सर्ग और छंद

महाकाव्य की वस्तु को सुव्यवस्थित रूप से सजाने के लिए उसकी समग्रता को प्रसंगानुकूल कई अंशों में विभक्त करके प्रस्तुत करने की परम्परा रही है। इनमें से एक-एक खण्ड को महाकाव्य में प्रायः सर्ग नाम दिया जाता है।[20] वैसे वाल्मीकि रामायण काण्डों और सर्गों में तथा महाभारत पर्वों और अध्यायों में विभक्त है। बीसवीं शताब्दी के महाकाव्यों में बहुत समय से चली आ रही सर्गाभिधान की रूढ़ि टूटी है। 'भारतीय-स्वातंत्र्योदयः' पर्वों में, 'तिलकयशोर्णवः' तरंगों में, 'नारायण स्वामिचरित्रम्' अलंकारों में, 'रक्ताक्त हिमालयम्' शिखरों में और 'गान्धि-गाथा' भागों में विभक्त है। इसी प्रकार प्राकृत महाकाव्य प्रायः आश्वासों और अपभ्रंश संधियों आदि में विभक्त होते हैं।

भामह ने महाकाव्य के आकार के विषय में केवल 'महत्'[21] कहकर रहने दिया, किंतु परवर्ती लक्षणकारों ने सर्गों की संख्या आदि की भी सीमा निर्धारित कर दी। ईशान संहिता में कहा गया—'अष्टसर्गान्न-तु-न्यूनं त्रिंशत् सर्गाच्चनाधिकम्'[22] साहित्यदर्पणकार ने विधान किया—'नातिस्वल्पा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।'[23] इस शतक के महाकवियों ने ऐसे सभी सीमांकनों को चुनौती दे डाली। 'भारतीय स्वातंत्र्योदयः' और 'भगतसिंहचरितम्' में जहाँ क्रमशः छह सर्ग और सात सर्ग हैं, वहीं 'स्वराज्यविजयः' (पं. क्षमाराव विरचित) में अट्ठावन सर्ग, 'शिवराज्योदयम्' में अड़सठ सर्ग और 'तिलकशयोर्णवः में पिच्चासी तरंग हैं और तो और गाँधी-गाथा महाकाव्य कहने को तो 'पूर्वभाग' और 'उत्तरभाग' दो भागों में विभक्त है, किंतु वस्तुतः यह सर्गबन्ध कोटि की रचना ही नहीं है। पूरा महाकाव्य अंतर्विभाग से रचित एक अनूठा महाकाव्य है। पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों में इन बंधनों को और भी नकारा गया है। प्राकृत महाकाव्य 'कंसवधं' और 'उषा निरुद्धं' में केवल चार-चार सर्ग हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश महाकाव्य 'यशोधचरितं' में चार संधियाँ हैं। पाली में दो महाकाव्यों—'जिनालंकार' और 'जिनचरित्रं' का तो सर्गों में विभाजन ही

महाकाव्यत्वमस्य निर्विवादं नास्ति।"[5] इसी प्रकार 'भू-भामिनी-विभ्रमम्' को भी यद्यपि द्विवेदी जी महाकाव्य की परिधि में ही रखकर समीक्षित करते हैं, उसकी उदात्तता के प्रति आकृष्ट भी हैं, किंतु विशिष्ट पात्र-विरह के कारण उसकी भी महाकाव्यता के प्रति संदिग्ध हैं।[6]

'श्रीबोधिसत्वचरितम्', जिसे उसके रचनाकार श्री सत्यव्रत शास्त्री स्वयं महाकाव्य मानते हैं, के प्रत्येक सर्ग की वस्तु को जन्मजन्मान्तर में भटकते बोधिसत्व के एकनायकत्व से सुघटित मानकर उसे महाकाव्य माना जा सकता है। किंतु निःसंदेह यह एक नयी पद्धति का ही महाकाव्य है। इस शतक के ऐसे महाकाव्य यद्यपि महाकाव्य की अब तब की इतिवृत्तात्मकता की रूढ़ि को तोड़कर कोई सर्वमान्य भूमि नहीं तैयार कर पाये हैं, परंतु इतिवृत्तात्मकता की दृढ मान्यता के आगे प्रश्न-चिह्न तो लगा ही दिए हैं।

महाकाव्य के कथानक के संबंध में एक विशेष बात यह ध्यातव्य है यदि प्राचीन कथा अथवा 'मिथक' को लेकर महाकाव्य लिखा जाए, तो उसकी ऐसी प्रस्तुति होनी चाहिए कि वह समसामयिक प्रसंगों से जुड़कर नवीनता ग्रहण कर सके। इस शतक में अनेक महाकाव्य ऐसे मिलेंगे, जिनमें कवियों ने महाकाव्य की कुछ शास्त्रीय स्थापनाओं के अंतर्गत वस्तु का पद्य-बद्ध उपबृंहण मात्र करके उन्हें महाकाव्य की कोटि में रख दिया है। जैसे 'शिवकथामृतम्', 'परशुराम दिग्विजयम्', 'सुगमरामायणम्', 'श्रीजानकीचरितम्' इत्यादि और इस प्रकार उनसे कोई युग संदेश देने में असफल रहे हैं।

नायक

इस शतक के संस्कृत महाकाव्यों में–'सद्वंशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः'[7] जैसी पुरानी नायक संबंधी मान्यताएँ टूटी हैं। नायक-विषयक जातीय बंधन तो इतना व्यर्थ सिद्ध हुआ है कि उसकी चर्चा ही नहीं की जानी चाहिए। 'क्रिस्तुभागवत्', 'लेनिनामृतम्', 'तुकारामचरितम्', 'स्वामिविवेकानन्दचरितम्', 'विश्वभानुः', 'सुभाषचरितम्' आदि महाकाव्यों के नायक न क्षत्रिय हैं और न ब्राह्मण। इसी प्रकार 'सतीचरितम्', 'यशोधरा', 'जानकीजीवनम्' और 'झाँसीश्वरीचरितम्' आदि महाकाव्यों के प्रमुख पात्र स्त्री हैं। वीरोदयम् आदि महाकाव्यों को देखते हुए नायक संबंधी धीरोदात्तता की मान्यता भी अपुष्ट लगती है। 'धीरोदात्तता और गुणान्विततता' का अनुबंध वास्तव में महाकाव्य के चरम प्रयोजन सहृदय के उदात्तीकरण और सत्प्रभाव की दृष्टि में रखकर किया गया था। इस प्रयोजन की सिद्धि कवि के द्वारा गृहीत चरित के काव्योपन्यास पर निर्भर करती है। यह अलग बात है कि कवि द्वारा इसका चारित्रिक उपन्यास सभी ऐतिहासिक वस्तुओं के विषय में असम्भव अथवा कृच्छ्

के षष्ठ सर्ग में 'तोटक' और 'सवैया' छंदों का, 'जवाहरज्योतिर्महाकाव्य' के सप्तदश-सर्ग में हिंदी के गेय छंदों का प्रयोग और 'गांधी-गाथा' महाकाव्य में 'सार' और 'दोहा' छंदों का प्रयोग। इसी प्रकार 'सुदर्शनोदयं' महाकाव्य में प्रभाती, काफ, होलिका राग, कव्वाली, रसिक राग, सारंग राग, श्यामकल्याण राग और सौराष्ट्रीय राग आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

रस

'रस' केवल महाकाव्य का ही नहीं प्रत्युत काव्य मात्र का अनिवार्य तत्त्व है, तथापि भामह से लेकर विश्वनाथ तक और इनके अनन्तर भी काव्यशास्त्री महाकाव्य के लक्षण में रस का उल्लेख विशेष रूप से किये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रबंध काव्यों (नाट्य, महाकाव्य आदि) में रसेतर काव्य तत्त्वों की सुष्ठु योजना के नियम को देखते हुए रस का भी महत्त्व विशेष हो जाता है। हाँ यह अवश्य है कि जैसा विश्वनाथ, महाकाव्य के लिए निश्चित रसों का अंगित्व अंगीकार करते हैं[28] वैसा अन्य आचार्य नहीं करते। आद्याचार्य भामह महाकाव्य में सभी रसों का समावेश उचित मानते हैं।[29] प्राचीन महाकाव्यों में कुछ में भले हो, आधुनिक महाकाव्यों में सभी रस अनिवार्य रूप से आये ही हों, ऐसी बात नहीं। फिर जैसा कि आचार्य आनंदवर्धन का मंतव्य है कि अनेक रसों के प्रबंध में भी किसी एक रस को अंगीरस होना चाहिए[30], ठीक लगता है। इसके विपरीत 'शृंगारवीरशांतानामोकोऽङ्गीरस इष्यते'[31] जैसे विश्वनाथ के नियमन का कोई औचित्य नहीं ठहरता। यह परिभाषा जहाँ करुणा रस प्रधान प्राचीन महाकाव्य 'रामायण' पर सटीक नहीं बैठती, वहीं आधुनिक--'सीताचरित्रम्' एवं 'जानकीजीवनम्' जैसे काव्यों पर (इनका अंगीरस करुण रस है।) जैसा डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी का कहना है--भक्ति रस और वात्सल्य रस की भाँति ही 'राष्ट्र-भक्ति' रस की भी युग प्रभाव से प्रतिष्ठा हो गयी है[32], जिसे इस शतक के अनेक महाकाव्यों में अंगित्वेन देखा जा सकता है। यद्यपि मानवीय करुणा और आर्त्तरक्षण के लिए प्रबुद्ध उत्साह स्थायी भाव को देखते हुए इस रस को भी वीर रस की कोटि में रखा जा सकता है, तथापि महाकाव्य के लिए शृंगार, वीर और शांत तीनों में से किसी एक का अनिवार्य अंगेत्व समुचित नहीं लगता।

डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी अपने 'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्' में अर्वाचीन महाकाव्यों का तत्त्व-विमर्श करते हुए लिखते हैं--'मुक्तकेषु रसः सकल प्रयोजनमौलिभूतो भवतुनाम, किंतु महाकाव्यं नूनमेव केनाचित् महदुद्देश्येन लिख्यते तत्तत् केवल मंगुलिगण-नीयानांसहृदयानां मनोरंजनाय न भवित। तत्र मानवमात्रस्य कल्याणं निहितं भवति। तस्मिन् शृगारादिरस्याभिव्यक्तिः कांतोचित्तमाकर्षण-मुद्दिश्यभवेनाम्, किंतु सा प्रयोजनमौलितां न व्रजति।"[33] इसका तात्पर्यार्थ केवल

ही। इसलिए महाकाव्य के परम्परित नियम आज तेजी से बदल रहे हैं। डॉ. जयशंकर त्रिपाठी ने कल कहा—"विजेता होने पर भी भगवान परशुराम को किसी कवि ने अपने महाकाव्य का नायक नहीं बनाया।"[11] और आज ही हेमचंद्र राय कविभूषण का 'परशुरामचरितम्' और श्री छज्जूराम शस्त्री का 'परशुरामदिग्विजयम' महाकाव्य देखने में आ गये।

'विशेष व्यक्ति' और 'सामान्य-व्यक्ति' के बीच अंतर मिटने की आधुनिक स्थिति में जार्ज लुकाच जब यह कहते हैं कि "महाकाव्य का व्यक्ति जो उपन्यास का नायक होता है—"[12], तो बहुत उचित नहीं लगता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि उपन्यास में भी सामान्य व्यक्ति नायक होते हैं और अब महाकाव्य में भी, किंतु महाकाव्य के परम्परित आभिजात्य की परिधि में आकर वह सामान्य भी विशिष्ट हो जाता है।

जैसा डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है कि, आधुनिक महाकाव्यों में नायक के अभ्युदय और फलाप्ति आदि के नियम भी नहीं खरे उतरते[13] 'चतुर्वर्गफलायत्तता'[14] की कौन कहे विश्वनाथ कविराज के इस विधान 'चत्वारस्तस्यवर्गाः स्तुस्तेष्वेकंचफलं भवेत्'[15] के अनुसार एक फल की प्राप्ति भी आज के कुछ महाकाव्यों के नायकों को नहीं होती। उदाहरणार्थ 'तिलकयशोर्णवः', 'सुभाषचरितम्', 'झाँसीश्वरीचरितम्' और 'श्रीभगतसिंहचरितम्' आदि के नायक 'देशमोक्ष' रूपी फल को बिना पाये ही नाम शेष हो जाते हैं। अभ्युदय प्राप्ति के बारे में भी ऐसी ही बात है। आजीवन ये सब शत्रुओं से पीड़ित और कारा का जीवन जीते हैं।

नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः न तस्यवधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया[16]

भामह के इस कथन के विपरीत गांधी, नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, भगत सिंह, लेनिन, ईसा मसीह आदि अनेक चरितों पर लिखे गये महाकाव्यों में नायकों की मृत्यु दिखायी गयी है।

महाकाव्य के नायक से संबंधित इन समस्त मान्यताओं से परे कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी उपस्थिति के अभाव में महाकाव्य की अन्य सारी विशेषताएँ ही लड़खड़ा जाती हैं। वह यह कि महाकाव्य के नायक को ऐसे व्यक्तित्व का होना चाहिए। जो स्वयं अपनी कहानी बनाकर न समाप्त हो जाए, प्रत्युत देश और काल के विस्तार में अपना स्थान भी सुरक्षित कर जाये। ऐसे चरितों से मंडित काव्य के विषय में ही दण्डी का कथन था—"काव्यं कल्पान्तरस्यायि"[17] इसी ओर जॉर्ज-नुकाच का भी संकेत है—"महाकाव्य का नायक कभी व्यक्ति नहीं होता। यह एक परम्परागत विचार है कि महाकाव्य की मूल विशेषाताओं में से एक यह भी है कि उसका विषय एक व्यक्ति की नियति न होकर जनसमुदाय की नियति होती है और यह सही भी है,

वस्तुतः ऐसा गहन लक्षण है, जिससे इन रूपों की सच्ची प्रकृति सर्वाधिक सही और प्रामाणिक रूप से उद्घाटित होती है।"[37] सारतः महाकाव्य के लिए पद्यबद्धता अनिवार्य सिद्ध होती है।

निष्कर्ष

कथानक, नायक, रस, सर्ग और छंदों के अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य 'स्वरूपापादक' तत्त्वों में भी पर्याप्त अन्तर आये हैं। राजाओं और सामंतों की जीवन कथा की सिसृक्षा न होने से मृगया, शैल-वन, ऋतु, सागर-वर्णनों, संयोग और वियोग तथा विवाह-उत्सवों आदि के लिए कवि को कम अवसर प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर खुरदुरे यथार्थ का सामना करते हुए नायक के जीवन से संबद्ध अनेक त्रासद क्षणों और घटनाओं का चित्रण भी महाकाव्य की वर्णना में समाविष्ट होने लगा है। ऐसे परिवर्तन महाकाव्य की आदर्शोन्मुखता से यथार्थोन्मुखता के चलते हो रहे हैं।

हम देखते हैं—"पूर्व-मान्य प्रबंधों में, जो पात्र गृहीत हुए हैं, वे गुणों या दोषों या उनके मिश्रित रूपों के संपुंज प्रतीत होते हैं और उनमें उन गुणों या दोषों या उनके मिश्रित रूपों का एक शृंखलित विकास दिखाया जाता है। दूसरी बात यह है कि वे पात्र समय के विस्तार में फैलते हैं जहाँ कुछ हरियालियाँ, कुछ शुष्क उपेक्षणीय ऊसर कुछ मान्य-महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, प्रसंग हैं, मर्मस्पर्शी अवसर हैं और हैं महत्त्वहीन घड़ियाँ और स्थल। पात्र एक महत्त्वपूर्ण से दूसरे महत्त्वपूर्ण तक दौड़ते हैं। शेष-समय और स्थान तो केवल दूरी भरने के लिए होते हैं। अतः देश और काल के विस्तार में दौड़ते हुए पात्र पूर्ण स्वीकृत जीवन तीर्थों की ही यात्रा करते हैं। अपने भीतर की तन्मयता से हर क्षण और हर स्थल को तीर्थ नहीं बना सकते।"[38] ऐसी प्रबंध रचना के पीछे जो जीवनदृष्टियाँ, रुचियाँ और मान्यताएँ रही हैं, उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। अनेक अंतर्विरोधों और असंगतियों के बीच विघटित व्यक्तित्व के इस युग में अखण्ड व्यक्तित्व के नायकत्व की मान्यता और एक समूचे जीवन-विस्तार की बात अयुगीन सिद्ध हो जाती है। आज जीवन के संपूर्ण काल-विस्तार की अपेक्षा कुल महत्त्व के क्षण ही हमारे आकर्षण के विषय हो सकते हैं। इसीलिए आज के अनेक महाकाव्यों में नायक के संपूर्ण जीवन विस्तार को लेकर भी उसमें क्षणों और घटनाओं पर ही ध्यान केंद्रित किया जा सकता है, शेष सारी रिक्तियों को अनपेक्ष वर्णनाओं से रहित छोड़ दिया गया है।

यद्यपि 'श्रीकृष्णचरितामृतम्', 'सुगमरामारायणम्', 'क्रिस्तुभागवतम्', 'विश्वभानुः', 'भारतपारिजातम्' आदि महाकाव्यों में मुख्यपात्र को गतकालिक संस्कार के कारण साधारणेत्तर— अवतरी व्यक्ति मानकर प्रस्तुत किया गया है, किंतु 'लेनिनामृतम्', 'गांधीगाथा', 'सीताचरितम्' आदि ऐसे भी अनेक महाकाव्य हैं, जिनमें युगीन चेतना

नहीं किया गया है। ध्यातव्य है, ये सारे महाकाव्य इस शतक से पहले के हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविजनों ने महाकाव्य के सर्ग विषयक पारंपरिक नियमों को स्वेच्छया परिवर्तित किया है। ऐसी स्थिति में डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी का विचार अधिक उचित लगता है कि यदि आचार्यों को महाकाव्य की सीमा ही निर्धारित करनी थी तो सर्ग सीमा के स्थान पर छंद संख्या नियमबद्ध करनी चाहिए थी।[24] क्योंकि आज गिनती को तो सर्ग पर्याप्त होते हैं, किंतु महाकाव्य का कलेवर लघु काव्यों का जैसा होता है, उदाहरणार्थ—'नारायण स्वामिचरितम्' के बारह अलंकारों में तीन सौ श्लोक, 'भारतीय स्वतंत्र्योदयः' के छह पर्वों में चार सौ तीन छंद, 'श्रीभगतसिंहचरितम्' के सात सर्गों में चार सौ पच्चीस श्लोक और 'गंगासागरीयम्' के दस सर्गों में पाँच सौ छंद हैं; जबकि दूसरी ओर 'तिलकयशोर्णवः' महाकाव्य में बारह हजार श्लोक हैं।

प्रत्येक सर्ग की छंदः संख्या में भी इसी प्रकार अराजकता देखी जा सकती है। 'तिलकयशोर्णयः' की कुछ तरंगों में जहाँ तीन-चार सौ तक छंद हैं, वहीं कुछ में पच्चीस छंद भी हैं। इसी प्रकार 'नाचिकेतसम्' के सत्ताइसवें सर्ग और 'स्वराज्यविजयं' महाकाव्य (श्री द्विजेंद्रनाथ शास्त्री) के उपसंहार सर्ग में ग्यारह-ग्यारह श्लोक हैं।

कुछ महाकाव्यकार तो जैसे छंदों की प्रत्येक सर्ग में संतुलित संख्या रखने के पूर्वाग्रह से युक्त हैं। जैसे—'लेनिनामृतम्' के पंद्रह सर्गों के दशम सर्ग (जिसमें छिहत्तर छंद हैं) को छोड़कर शेष में 75-75 छंद हैं। इसी प्रकार 'विश्वभानुः' महाकाव्य के इक्कीस सर्गों में से उन्नीस में पच्चीस-पच्चीस छंद हैं और सोलहवें में पचास तथा इक्सीसवें में मात्र तीन छंद हैं।

सर्ग संख्या और प्रत्येक सर्ग में छंदः संख्या की ऐसी स्वैरता को देखते हुए डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी का यह कथन समीचीन लगता है—'वस्तुतः सर्गसंख्यायाः पद्यसंख्याया वा परिसीमनं लक्षणे न युक्तम्। महाकाव्य प्रतिपाद्य विधयानुरोधेन कविधिया प्रस्तुतिकृतं सानुपातिकं नियममेदात्रस्वीकार्य स्यात्।'[25]

'एकवृत्तमयैःपद्यरवसानेन्यवृत्तकैः'[26] और 'नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन् दृश्यते'[27] दोनों नियमों के अनुसार लिखे गये महाकाव्य इस शताब्दी में मिलेंगे, वरन् 'गांधी-गाथा' महाकाव्य, जो पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त है, के पूर्व-भाग के दो छंदों को छोड़कर शेष भाग 'सार' नामक एक प्रकार के ही छंद में उपनिबद्ध है और उत्तर भाग दोहा और अनुष्टुप् छंदों में।

यद्यपि संस्कृत के महाकाव्यकार हिंदी के महाकाव्य प्रणेताओं की भाँति छंदोमुक्त पद्य में महाकाव्यों का प्रणयन नहीं किये हैं, किंतु युग प्रभाव के फलस्वरूप अनेक आधुनिक छंदों के प्रयोग निःसंकोच किये हैं। जैसे 'श्रीगोस्वामीतुलसीदासचरितम्'

वृत्तबद्धता का नियम उन महाकाव्यों पर कैसे अनुप्रयुक्त हो सकेगा जो छंदोमुक्त पद्य में निबद्ध हैं! यद्यपि ऐसा महाकाव्य अभी संस्कृत में नहीं लिखा गया है, किंतु हिंदी आदि सहित्यों की प्रवृत्ति के प्रभाव में असम्भव भी नहीं है।

लक्षणगत 'संवादैः' लक्षणांश में यदि संवाद का तात्पर्य 'कथोपकथन' से है तो यह तत्त्व विशेषतः नाट्य का है, महाकाव्य का नहीं, भले ही काव्य में चमत्काराधान और पात्रों के चरित-चित्रण के लिए इसका भी महत्त्व हो। हाँ यदि 'संवाद' का आशय आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तुओं और रसों आदि के विषय में लक्ष्याभिमुख परस्पर अविरोध-समंजसता है तो उसका महत्त्व असंदिग्ध है।

इस प्रकार आज उपन्यास, कथा, लघुकाव्य जैसी अनेक साहित्य विधाओं से अपदस्थ की जाती हुई महाकाव्य विधा आधुनिक राष्ट्रीय और मानवीय चेतना से ऊर्जा लेकर साहित्य में अपना स्थान नियत कर रही है। जिसके अनुरूप उसे अनेक प्राचीन सीमाओं और वर्जनाओं की उपेक्षा करते हुए वर्तमान मूल्यों, देशों, प्रश्नों और आवश्यकताओं से सामंजस्य स्थापित करना पड़ा रहा है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य भामस—'काव्यालंकार, 1/17
2. आचार्य दण्डी—काव्यादर्श, 1/15
3. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी—'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 105-06
4. डॉ. नगेंद्र (संपादक)—'अरस्तु का काव्यशास्त्र', पृ. 128
5. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी—'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 100
6. वही, पृ. 98
7. विश्वनाथ कविराजन—'साहित्य दर्पणः', 6/316
8. डॉ. नगेंद्र (संपादक)—'अरस्तु का काव्यशास्त्र', पृ. 134
9. विश्वनाथ कविरा—'साहित्य दर्पणः', 6/316
10. डॉ. शम्भूनाथ सिंह—'हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास', पृ. 44
11. डॉ. जयशंकर त्रिपाठी—'आचार्य दण्डी और संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन', पृ. 210
12. जार्ज लुकाच—'उपन्यास का सिद्धांत', पृ. 80
13. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी—'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 117
14. आचार्य दण्डी—'काव्यादर्श', 1/15
15. विश्वनाथ भामह—'साहित्य दर्पणः', पृ. 6/318
16. आचार्य भामस—'काव्यालंकार, 1/22
17. आचार्य दण्डी—'काव्यादर्श', 1/19

इतना है कि आज के प्रबंधकार का मनोरंजन मात्र प्रयोजन नहीं होता, जैसा कि मध्यकाल के कवियों का हुआ करता था। और तदनुकूल रसेकदृष्टि होकर रचनाकारों का काव्य व्यापार आरम्भ होता था। फलतः सामाजिक मूल्यों और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की आदर्श-प्रस्तुति का प्रयोजन गौण और साग्रह रस के परिपाक का प्रयोजन प्रमुख हो जाता था। आज स्थिति इसके विपरीत है। आज के प्रबंध की सृष्टि किसी अनिवार्य कथ्य की प्रसव-पीड़ा में होती है, जिसका मूल कहीं-न-कहीं समष्टि जीवन से जुड़ा होता है। समासेन, आज के कविकर्म का चरमोद्देश्य रसानुषंग में जीवन की सार्थकता की खोज है। सुकविजनों का यही प्रयोजन पहले भी था, केवल रस वासना की पूर्ति नहीं।

यहाँ यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि अपने परिवेश के प्रति अति संवेदनशील होने के कारण आधुनिक कवियों ने काव्य के काव्यत्व की बड़ी हानि भी की है। भावावेश में वे भूल गये हैं कि कविता का उद्देश्य जो कुछ भी हो व्यंजकता अथवा ध्वनि ऐसा तत्त्व है जो उसके अस्तित्व से प्रमुख रूप से जुड़ता है और इसके लिए कथ्य कथन-भंगि की आवश्यकता होती है।

इस शतक में रस सिद्ध महाकाव्यों की कमी नहीं है, तथापि ऐसे महाकाव्य भी बहुत हैं, जो निःसंकोच 'अधम' कोटि में रखे जा सकते हैं। रस का यत्र-तत्र अभिधान भले ही हो, उनमें कोई व्यंजकता नहीं है। केवल वस्तु का छंदोबद्ध उपन्यास मात्र किया गया है। यद्यपि 'वीरोदयम्', 'जयोदयम्', 'रुक्मिणीहरणम्' जैसे शृंगार रस के उच्चकोटि के महाकाव्य लिखे गये हैं तथापि इस शतक की रसविषयक एक स्फुट विशेषता यह रही है कि शृंगार रस के प्रति कवियों का उन्मादपूर्ण अभिधावन नहीं हुआ है। इसके विपरीत वीर रस की व्यापक प्रतिष्ठा हुई है।

पद्यबद्धता

महाकाव्य के लिए पद्यात्मकता अनिवार्य सी है, किंतु यह आवश्यक नहीं है कि पद्य वर्णिक, मात्रिक या लय-ताल संतुलित छंद ही हों। महाकाव्य के लिए पद्यात्मकता की अनिवार्यता के महत्त्व को स्थापित करते हुए एक समीक्षक का कथन है—"...सच में यदि महाकाव्य पद्यबद्ध न होता तो उसे दण्डी के युग में कथा या आख्यायिका ही कहा जाता। आख्यायिका के कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि वर्णनों को दण्डी ने स्वयं सर्गबंध (महाकाव्य) के समान कहा है।[34] पद्य-गद्य का ऊपरी स्वरूप ही महाकाव्य एवं आख्यायिका-कथा की संज्ञाओं के भेद का कारण बनता है, नहीं तो आंतरिक प्राणवत्ता प्रायः इन सबकी समान होती है।"[35]

महाकाव्य की पद्यात्मकता को लेकर पाश्चात्य समीक्षा दृष्टि में अंतर आया है, किंतु "पद्य न तो महाकाव्य का अंतिम निर्णायक घटक होता है और न ही त्रासदी का..."[36] यह कहते हुए भी समीक्षक को मानना ही पड़ता है—"यद्यपि यह (पद्य-बद्धता)

3

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य एवं भारतीय स्वाधीनता संगाम

(क) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य

विगत दो-तीन सौ वर्षों का संस्कृत वाङ्मय गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती काव्य वाङ्मय से स्पर्श करता हुआ विकसित हो रहा है। संस्कृत साहित्य की कोई भी विधा—महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक, नाट्य, गद्य एवं चम्पू—ऐसी नहीं है जिसमें संस्कृत कवियों ने अपनी लेखनी न उठायी हो। यही नहीं, विषय-वस्तु की दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य में धार्मिक, रूढिगत एवं पारम्परिक लेखन परम्परा से हटकर, समसामयिक समस्याओं से सम्बद्ध विषयों पर अगाध साहित्य की सर्जना हुई। यही कारण है कि उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी का संस्कृत साहित्य भारतीय स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं एवं तथ्यों से भरा पड़ा है। प्रकृत स्थल पर बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों से अभिप्रायः यह है कि बीसवीं शती में सैकड़ों महाकाव्यों की सर्जना हुई है उन सबका अनुशीलन प्रस्तुत स्थल में यथेष्ट नहीं है अपितु स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं अथवा क्रांतिकारियों से संबंधित कुछ महाकाव्यों को लेकर ही महाकाव्य साहित्य का विशेष दिक्प्रवृत्ति की पड़ताल की गयी है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम से संबंधित बीसवीं शतो के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य निम्नलिखित हैं—

1. सत्याग्रह गीता	पंडिता क्षमाराव	1931
2. उत्तरसत्याग्रहगीता	पंडिता क्षमाराव	1931
3. भारतपारिजातम्	स्वा. श्रीमद्भागवदाचार्य	1951
4. पारिजातापहारः	स्वा. श्रीमद्भागवदाचार्य	1951
5. पारिजातसौरभम्	स्वा. श्रीमद्भागवदाचार्य	1951
6. स्वराज्यविजयः	पंडिता क्षमाराव	1962
7. श्रीसुभाषचरितम्	श्री विश्वनाथ केशव छत्रे	1963
8. भारतीयस्वातंत्र्योदयः	श्री विश्वनाथ केशव छत्रे	1965

के प्रभाव में नायक और नायिका के काव्य व्यक्तित्व का निर्माण साधारण मानवीय गुणों-दोषों और क्षमताओं को लेकर किया गया है। लेनिन एक साधारण कृषक-पुत्र और गांधी एक साधारण नागरिक हैं, जो अपने अधिकारों को लेकर सामंती व्यवस्था से जूझ रहे हैं। इसी प्रकार सीता सामाजिक अन्याय से पीड़ित एक साधारण नारी और राम लोकापवाद से मर्माहत एक पति तथा जनता की भावनाओं का आदर करते हुए वर्चस्व त्याग करने को विवश एक शासक हैं।

आधुनिक युग में 'पुराकथाओं' और प्राचीन इतिहास से ली हुई वस्तु को आश्रय करके भी महाकाव्य लिखे गये हैं, किंतु वस्तुतः वे ही सफल महाकाव्य हैं, जो वर्तमान आकांक्षाओं-उपेक्षाओं के अनुरूप ढल सके हैं, नये संदर्भों में अपने को जोड़ सके हैं।

आशय यह है कि आधुनिक महाकाव्य घटना प्रधान न होकर मूल्य प्रधान है। हिंदी सामाजिक अथवा राष्ट्रीय मूल्यों को उजागर करने के अभिप्रायः से उपयुक्त पात्रों और घटनाओं का आश्रय लिया गया है। इसके लिए समाज के साधारण वर्ग से पात्रों को बिना लिंग, जाति और धर्म की विशिष्टताओं पर ध्यान दिये नायकत्वेन चुनाव और मानववत् साधारणीकृत देवपात्रों का ग्रहण किया गया है। महाकाव्य के आकार-प्रकार, सर्ग, छंद, रस और अलंकार संबंधी रुचियों का महाकाव्य के श्रेय-प्रेय इन्हीं मानव मूल्यों की सापेक्षता में विकास हो सका है।

डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी ने आधुनिक महाकाव्यों की प्रवृत्ति को देखते हुए महाकाव्य का लक्षण किया है—

"सर्गैर्वृत्तैत्तश्चबद्धं सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थरम्यं
संवादैश्चोच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रंथिमुक्तं समृद्धम्।
पात्रंस्याद्यस्य मुख्यं परमगुणयुतं लोकविख्यात वृत्तं
भव्यं लोकस्वभावंमहदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते॥"

इस लक्षण में भी कुछ सूक्ष्म त्रुटियाँ रह ही गयी हैं, जैसे लक्षण के अनुसार महाकाव्य को सर्गों में निबद्ध होना चाहिए (सर्गैर्वृत्तैश्चबद्धम्...)। यहाँ 'सर्ग' पद विभाग-मात्र का उपलक्षक है, तथापि अनेक सर्गों की बात संगत नहीं लगती। यदि और नहीं तो 'गांधीगाथा' महाकाव्य इस लक्षण के निकष पर खरा नहीं उतरता, जो केवल दो भागों—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभक्त है यद्यपि ऐसा विभाजन (जैसा 'गांधीगाथा' में है) न तो वैज्ञानिक है और न स्पृहणीय ही।

'वृत्तैश्चबद्धम्' लक्षणाशं भी दुष्ट है, क्योंकि कम-से-कम एक उत्कृष्ट महाकाव्य- 'गणपतिसंभवम्' जो आद्यन्त एक प्रकार के छंद (शार्दूल विक्रीडित) में निबद्ध है, इससे लक्षित नहीं हो सकता, फिर यह भी कि यदि वृत्त छंद का पर्याय है तो

(ग) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम

1. सत्याग्रहगीता (18 अध्याय)

सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता एवं स्वराज्यविजयः प्रभृति महाकाव्यों एवं कतिपय अन्य मौलिक संस्कृत कृतियों की रचयित्री पंडिता क्षमाराव हैं। इनका जन्म पूना में 4 जुलाई, 1890 ई. को हुआ था। इनके पिता शंकर पांडुरंग पंडित संस्कृत के महान् विद्वान् और लेखक थे। यद्यपि इनकी उच्च शिक्षा नहीं हो पायी, किंतु आरम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि की होने से इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी में असाधारण पटुता प्राप्त कर ली। आरम्भ से काफी दिनों तक ये अंग्रेजी में लिखती रहीं, किंतु 1931 ई. से विधिवत संस्कृत में लिखना प्रारम्भ किया। पंडित क्षमाराव का देहावसान 22 अप्रैल, 1945 ई. को हुआ।

प्रस्तुत महाकाव्य पंडित क्षमाराव की प्रथम राष्ट्रीय काव्यकृति है। इसमें अट्ठारह अध्याय और छः सौ उनसठ श्लोक हैं। इनकी सर्जना सन् 1931 में हुई थी। और यह तथ्य अतीव गौरवास्पद है कि एक ही वर्ष पश्चात् ब्रिटिश शासनकाल में ही इसका प्रकाशन भी हो गया था।

इस कृति में भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति हेतु महात्मा गांधी के निर्देशन में चलाए गए सत्याग्रहात्मक आंदोलन की सन् 1930 ई. तक की रोमांचक कथावस्तु का वर्णन किया गया है।

फलस्वरूप देशभक्ति किंवा राष्ट्रीय आंदोलन इस काव्य में साध्य के स्वरूप में अभिव्यक्त है। लेखिका ने भी स्वनिष्ठ देशभक्ति से संप्रेरित होकर ही इस काव्य की सर्जना की है।[1] यही कारण है कि इस काव्य में अपने राष्ट्र को अंग्रेजाधीन देखकर अतीव खेद प्रकट किया गया है, अपनी जन्म-भूमि भारत भूमि की पराधीनता को ही यहाँ के लोगों की हीनता, दीनता, दरिद्रता आदि दुःखों तथा दोषा का कारण बताया गया है, इससे मुक्ति पाने के लिए प्रेरणा दी गई है, राष्ट्रीय स्वाधीनता के महत्त्व को प्रकट किया गया है, इसे राष्ट्र का अभीष्टतम लक्ष्य बताया गया है, पराधीनता को राष्ट्र की मृत्यु माना गया है, इसके दुस्सह दुष्परिणामों को गिनाया गया है, और पराधीनता के पाश को तोड़कर स्वाधीनता का वरण करने के लिए अथक प्रोत्साहन दिया गया है–

प्रौढेन वयसा युक्तोऽप्यानतः क्लेशसंचयैः।
न्यवर्तत निजं देशं दीनं दुभिक्षपीडितम्॥
ग्रामीणानां क्षुधार्तानां क्षेत्रेक्षेत्रैऽपि निर्जले।
दृष्ट्वास्थिपंजरान् भीमान् विषण्णोऽभूद् दयाकुलः॥

18. जार्ज लुकाच–'उपन्यास का सिद्धांत', पृ. 80
19. वही, पृ. 81
20. सर्गबद्धता महाकाव्य का एक ऐसा महत्त्व का लक्षण रहा कि बहुत दिनों तक उसी के अनुसार महाकाव्य को 'सर्ग-बंध' काव्य कहा जाता रहा।
21. आचार्य भामस–'काव्यालंकार, 1/22
22. द–'रंगाचार्य की काव्यादर्श की टीका', पृ. 29
23. विश्वनाथ कविराज–'साहित्य दर्पणः', पृ. 6/320
24. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी–'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 111
25. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी–'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 11
26. विश्वनाथ कविराज–'साहित्य दर्पणः', पृ. 6/320
27. वही, पृ. 3/321
28. विश्वनाथ कविराज–'साहित्य दर्पणः', पृ. 6/317
29. भामह काव्यालंकार परि, 1/21
30. 'प्रसिद्धेऽपि प्रबंधनां नानारसनिबंधने। आचार्य आनंदवर्धन–
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥' 'ध्वन्यालोक', 3/21
31. विश्वनाथ कविराज–'साहित्य दर्पणः', पृ. 6/3/7
32. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी–'अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्', पृ. 116
33. वही
34. आचार्य दण्डी–'काव्यादर्श', 1/29
35. डॉ. जयशंकर त्रिपाठी–'दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन', पृ. 217
36. जार्ज लुकाच–'उपन्यास का सिद्धांत', पृ. 71
37. वही, पृ. 71
38. डॉ. रामदरश मिश्र–'हिंदी कविता : आधुनिक आयाम', पृ. 114

महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रह के प्रसंगों में भारतीय अहिंसक देशभक्त पुरुषों, महिलाओं और बालक-बालिकाओं पर विदेशी अंग्रेज शासकों के निर्मम, हिंसक और अनैतिक अत्याचारों का वर्णन निश्चय ही पाठक की धमनियों में बहते हुए शांत रुधिर को उष्ण किये बिना नहीं रहता। फलस्वरूप उसमें राष्ट्रीय भावना एवं स्वतंत्रता का अमंद संचार हो उठता है।[3]

2. उत्तरसत्याग्रहगीता (47 अध्याय)

यह कृति पूर्व वर्णित 'सत्याग्रहगीता' नामक कृति की संपूरिका कृति है, क्योंकि यह कृति उसी कृति के प्रतिपाद्य विषय को उसी शैली में आगे बढ़ती है और इसकी लेखिका भी पंडिता क्षमाराव हैं। इस कृति में भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति हेतु महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रहात्मक आंदोलन से संबंधित विविध किंतु क्रमिक घटनाओं का अतीव संचालित प्रांजल भाषा-शैली में वर्णन किया गया है, जो 47 अध्यायों तथा 1999 श्लोकों में समाप्त हुआ है। उल्लेखनीय है कि दक्षिण भारत के विख्यात गांधीवादी भिक्षु निर्मलानन्द द्वारा किए गए महात्मा गांधी के 'सत्याग्रह आंदोलन' को विषय बनाकर संस्कृत भाषा में काव्य रचना के लिए अखिल भारतीय प्रोतियोगितात्मक आह्वान पर पंडित क्षमाराव ने मई, 1944 ई. में सितंबर, 1944 ई. के बीच इस काव्य की सृर्जना की थी और निर्णायकों ने उनकी इस रचना को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया था। फलस्वरूप दिसम्बर, 1944 ई. में मद्रास में आयोजित एक भव्य समारोह में डॉ. राघवन आदि लब्धप्रतिष्ठ मनीषियों के सन्निधि में क्षमाराव को उक्त रचना के लिए उक्त पुरस्कार अतीव सम्मान के साथ समर्पित किया गया था। बाद में स्वाधीनता प्राप्ति हो जाने पर अप्रैल, 1948 ई. में इस रचना का अंग्रेजी में अनुवाद सहित प्रकाशन भी किया गया।

इस कृति में 1931 ई. से 1944 ई. तक के महात्मा गांधी के सत्याग्रहात्मक राजनैतिक कार्यकलापों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। फलस्वरूप इस कृति में सर्वत्र ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम के स्थल दृष्टिगोचर होते हैं। अपने देश के प्रति स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता की भावना प्रकट करने में कवयित्री पंडित क्षमाराव अतीत जागरूक रही हैं। इस संदर्भ में वह अपने चरितनायक महात्मा गांधी द्वारा देश का हित संपादित करते रहने की शपथ प्रस्तुत करती हैं। उनका कहना है कि देशद्रोही को कभी क्षमादान नहीं देना चाहिए; उसे तो पाषाणखण्डों के आघातों से अवश्य ही आहत करना चाहिए; अपनी मातृ-भूमि की रक्षा हेतु व्यक्तियों को चाहिए कि वे प्रत्येक प्रकार के क्लेशों को हँसते हुए सहें।[4] अपने देश की सर्वांगीण दृढ़ता हेतु जो देश के कल्याणमय गौरव की रक्षा हेतु परम आवश्यक है, देश में व्याप्त अस्पृश्यता की असामाजिक एवं अराष्ट्रीय भावना का समूलोन्मूलन करने की भी प्रेरणा दी गई

9. विशालभारतम्	पं. श्यामवर्ण द्विवेदी	1967
10. श्रीनेहरूचरितम्	श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल	1969
11. स्वराज्यविजयम्	श्री द्विजेंद्रनाथ विद्यामार्तण्ड	1971
12. गांधिगाथा	आ. मधुकर शास्त्री	1973
13. नेहरूयशः सौरभम्	श्री बलभ्रद प्रसाद शास्त्री	1975
14. इंदिरागांधीचरितम्	डॉ. सत्यव्रत शास्त्री	1976
15. गांधीगौरवम्	श्री शिवसागर त्रिपाठी	1977
16. जवहारज्योतिर्महाकाव्य	पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी	1977
17. भक्तसिंहचरितम्	श्री स्वयंप्रकाश शर्मा	1978
18. झाँसीश्वरीचतरितम्	श्री सुबोधचन्द्र पंत	1979

(ख) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख बिंदु

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों के उल्लेख एवं परिज्ञान के उपरान्त संप्रति यह जानना आवश्यक है कि स्वाधीनता संग्राम से संबंधित अथवा स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत क्रांतिकारियों और नेताओं से संबंधित इन महाकाव्यों में स्वाधीनता संग्राम के वे कौन-कौन से प्रमुख बिन्दु हैं, जिनका कि प्रकृत स्थल पर विचार किया जायेगा। एतदर्थ उन प्रमुख बिंदुओं एवं स्थलों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है, जिन्हें केंद्रबिन्दु मानकर ही पुस्तक का लेखन-कार्य संपादित हुआ। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का उदयबिन्दु 1857 की क्रांति, क्रांति का शमन, विक्टोरिया शासन में भारतीय राजनीतिक, भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि।

स्वाधीनता संग्राम का सामाजिक पक्ष-अंग्रेजों के अत्याचार, चम्पारन में नील की खेती पर प्रतिबंध, बारदोली सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रों की बिक्री, भारतीय कुटीर उद्योगों का विनाश, समाज में पारस्परिक विद्वेष, हिंदू-मुस्लिम विद्वेष में अंग्रेजों का हाथ, अन्यान्य सामाजिक विघटन, राजा राममोहन राय आदि के समाज सुधार आंदोलन।

स्वाधीनता संग्राम का राजनैतिक पक्ष—कांग्रेस की स्थापना, गांधी का दक्षिण अफ्रीका से प्रत्यागमन, प्रथम विश्व महायुद्ध की विभीषिका, रोलेट बिल, रोलेट बिल का विरोध, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, 1920-21 का असहयोग आंदोलन, साइमन कमीशन का बहिष्कार, नौकरियों का त्याग, नये नेताओं का अभ्युदय; नेहरू, सुभाष, जिन्ना, पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि, नमक कानून का विरोध, दाण्डी मार्च, भारत छोड़ो आंदोलन, द्वितीय विश्व युद्ध की परिस्थितियाँ पूर्ण स्वतंत्रता की माँग, आंदोलन का स्वरूप भारतीय स्वाधीनता दिवस, भारत बंटवारा आंदोलन आदि, गांधीजी की हत्या। स्वतंत्र भारत जवाहर लाल नेहरू प्रधानमंत्री।

और संवदेना के साथ प्रस्तुत किया गया है। विश्वविश्रुता है कि महात्मा गांधी ने अपना संपूर्ण जीवन भारत के स्वाधीनता संग्राम में संघर्ष करते हुए समर्पित कर दिया। वे एक उत्तम कोटि के राष्ट्रभक्त थे जिनके रोम-रोम में राष्ट्र-भक्ति के भाव भरे पड़े थे तथा जिसके फलस्वरूप ही भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्ति मिल सकी। यही कारण है कि उनके जीवन-चरित पर आधारित इस महाकाव्य में उनके जीवन से संबंधित जिन घटनाओं परिस्थितियों एवं जीवन संघर्ष का वर्णन किया गया है, वे सभी भारतीय स्वाधीनता संग्राम से ही संबंधित घटनाएँ हैं। तथापि स्वाधीनता संग्राम से संबंधित कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं जिनका विवरण ही कवि ने इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में आभार के शब्दों में कवि स्वयं लिखता है कि श्रीमहात्माजी ने अपने समस्त जीवन में अनेक आश्चर्यमय घटनाओं को जन्म दिया है। परंतु मैं समझता हूँ कि दांडीकूच, सन् 1942 का "भारत छोड़ो" आंदोलन सत्याग्रह और नोआखाली यात्रा, यह उनके अनेक कार्यमालाओं के समेरू हैं। इसीलिए मैंने "भारतपारिजातम्" में दांडीकूच को, पारिजातापहारः में भारत छोड़ो, सत्याग्रह को और पारिजातसौरभम् में नोआखाली यात्रा को मुख्य स्थान दिया है।"

संपूर्ण महाकाव्य की विषयवस्तु का संक्षिप्ततः विवेचनोपरान्त यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इसके तीनों भागों-भारतपारिजतम्, पारिजातापहारः तथा पारिजातसौरभम् में विस्तृत रूप से वर्णित गांधीचरित के अंतर्गत ही स्वाधीनता संग्राम से संबंधित प्रमुख घटनाओं का क्रमशः अनुसंधान किया गया।

3. भारतपारिजातम्

25 सर्गों वाले महाकाव्य के इस प्रथम भाग के प्रारंभिक छः सर्गों में महाकाव्य के नायक गांधीजी के जन्मस्थान, वंशवृक्ष, शिक्षा, दक्षिण अफ्रीकागमन तथा पुनः भारत आगमन आदि का विस्तार के साथ वर्णन है (सर्ग 1-7)। किंतु इन स्थलों में भी गांधीजी की उस भावना का संकेत अवश्य मिलता है जो भारत की स्वतंत्रता के लिए उनके मन में बीच रूप में पहले से ही विद्यमान थी; यथा—उनके मित्र ने एक बार सलाह दी कि मांस खाकर खूब स्वस्थ हो जाओ जिससे अंग्रेजों को हराने में समर्थ होंगे—

मांसाहारं हि कुर्वाणा बलवृद्धिसमन्विताः।
वयमाङ्ग्लान्पराजेतुं शक्ताः स्यामेति निश्चितम्॥ (3/14)

फिर क्या था—गांधीजी ने छुप-छुपकर मांस खाना शुरू कर दिया। लेकिन वे जीभ के स्वाद के लिए ऐसा नहीं करते थे, वरन् विदेशियों को देश से भगाने के लिए—

मांसाहारे न तस्यासीज्जिह्वास्वादः प्रयोजकः।
बलं प्राप्य विदेशीयविजिगीषैव कारणम्॥ (3/67)

इतरैरवधूतानामन्त्यजानामवस्थया।
द्रवीभूतौ महात्मासौ दीनानां गौतमो यथा॥
निर्धनत्वज्जनुर्भूमेः पारवश्याच्च बांधवः।
तिरस्कृता भवंतीति प्राज्ञेन किल निश्चितम्॥
वयमांग्लयुगे बद्धा भविष्यामो धिकाधिकम्।
विवशा दुर्बलाश्चेति बोधितं दूरदर्शिना॥
इहांग्लैः स्थापितं राज्यं देशलुण्ठनलोलुपैः।
इत्यस्थिपंजरा एवं जनानामत्र साक्षिणः॥

× × ×

कुर्वन्तो नित्यमेवं हि स्वातंत्र्यं प्राप्स्यथा चिरात्।
स्वातंत्र्यादपि भूतानां प्रियमन्यन्न विद्यते॥
अथ चेतान्तवं धर्म्य न करिष्यथ बांधवाः।
बद्धा परयुगे नित्यं दास्यभावे निबत्स्यथ॥
जीवन्तोऽपि न जीवन्ति परदास्यधुरन्धराः।
पारतंत्र्यमुदारणां मरणादतिरिच्यते॥
दास्यभावे स्थितैः कष्टं सोढव्यमतिदुस्सहम्।
दासोऽश्नाति स्वमप्यन्नं काकशङ्की पदे पदे॥
उत्तिष्ठत ततः शीघ्रं तान्तवे कुरूतोद्यमम्।
ततो देशोदयप्राप्तिरिति भूयो न्यवेदयत्॥

लोगों में राष्ट्रीय भावना भरने के लिए पराधीनता को नपुंसकता का पर्याय बताया गया है, जो अतीव शोचनीय स्थिति होती है। इसके अतिरिक्त देश-परदेश में सदैव अपमानित होने की सत्यता का कटु बोध कराया गया है, अपने देश के सम्मान की वृद्धि हेतु तथा अपने देश की स्वतंत्रता के लिए, अपने वैयक्तिक सुख के त्याग का उपदेश दिया गया है (सत्याग्रहगीता, 2/36-46) और अपने राष्ट्र के कल्याण हेतु सर्वात्मना संगठित होकर स्वाधीनता को प्राप्त करने का रोमहर्षक संदेश दिया गया है। (वही, 7/4)

स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय एकता की परमावश्यकता है तथा राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित रखने के लिए अछूतोद्धार के कार्य को भी सुपर्याप्त महत्त्व देने का उपदेश दिया गया है। अपने ही देश के लोगों को 'अस्पृश्य' कहकर उनका सामाजिक बहिष्कार करना भारत देश के लिए अत्यधिक हानिकार लांछन बताया गया है, और इसे सर्वात्मना समाप्त करने को नैतिक तथा राजनैतिक कर्त्तव्य सिद्ध किया गया है, (वही, 2/1524)।

बोले, मैं बिहार प्रान्त के चम्पारण शहर में रहता हूँ। धन के लोभी अंग्रेज आजकल वहाँ अन्याय कर रहे हैं। ये लोग धन के लालच में नील (मधुपर्णिका) की खेती करते हैं। भूख से पीड़ित भारतवासियों को उन लोगों ने मजूरी (मजदूरी) के लिए रख छोड़ा है। माँगने पर भी वह विरुद्ध व्यवहार करने वाले अंग्रेज, मजदूरी नहीं देते हैं। हे प्रभो! काम में लगे रहने पर भी वह हैरान (परेशान) करते हैं। यह अंग्रेज सभी मजदूरों को व्यर्थ में अनेक प्रकार से पीड़ा पहुँचाते हैं। विविध विपत्तिरूप सागर में पड़े हुए लोगों को, हे परोपकार के लिए जीवन धारण करने वाले महात्मा जी बचाइए (सर्ग-7/1-7)

क्रियते धनलाभलोभतः कृषिरेतैर्मधुपर्णकौषधेः।
श्रम कर्मकराश्च भारता नियतास्तैर्व्यथिताः क्षुधानलैः ॥ (7/5)

× × ×

बहुधा परिपीड्यन्ति ते सकलान्कर्मकरानमी मुधा।
विविधापदपांनिधौ जनान्पतितान्पाहि परार्थजीवित ॥ (7/7)

फिर क्या था कि गांधीजी पटना और वहाँ से ब्रजकिशोर प्रसाद जी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी तथा मुजफ्फरपुर से आचार्य कृपलानी को लेकर महात्मा जी तिनकठिया का समूल नाश करने के लिए अनेक सज्जनों के साथ चम्पारण गये। वहाँ गोरों के सेक्रेटरी से वार्ता करने पर जब वह नहीं माने तो अनुयायियों सहित अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। महात्माजी को जेल जाना पड़ा, मुकदमा चला अन्ततः बिहार के गवर्नर ने जनता के दुःख की जाँच के लिए एक समिति गठित कर दी। समिति के सभापति के पद पर उदारचित्त वाले सर फ्रेंस्काइल महाशय नियुक्त हुए थे। उस समिति ने कृषिकारों के विरोध को उचित ठहराया। अंततः समिति के निश्चय के अनुसार सदा के लिए जनता के संकट का निवारण हो गया। सौ वर्षों से चलती आ रही हुई इस अन्याय पद्धति को महान् श्रम से दूर करके दरिद्रों के देवता परमधार्मिक महात्माजी गुजरात आ गये (सर्ग 7/8-68)।

अनुसृत्य च सम्प्रधारणं समितेर्न्यायसदध्वस प्पुषः।
अभवर्न्ननु सार्वकालिकं जनतासङ्कटसन्निवारणम् ॥ (7/66)
प्रवर्तिता नीतिविरुद्धपद्धतिं, शताच्च वर्षेभ्य उदस्य धार्मिकः।
महाश्रमेणैव विहारभूतला–दरिद्रदेवो गुजरातमाययौ ॥ (7/68)

खेड़ा जिले में सत्याग्रह आंदोलन

गांधीजी जब बिहार प्रांत के चम्पारन शहर में सत्याग्रह युद्ध कर रहे थे, उसी समय गुजरात प्रांत के खेड़ा जिले में भारी अकाल पड़ा था। अकाल का रूप अत्यन्त भयंकर होने के बाद भी अंग्रेज सरकार किसानों से मालगुजारी वसूलने के लिए नियम के विरुद्ध भी कटिबद्ध थी। अत्यन्त निर्ममता एवं कठोरता के साथ किसानों

है; तथा एतदर्थ महात्मा गांधी द्वारा किए गए अथक प्रयत्नों का प्रशंसापरक वर्णन किया गया है।[5] भारतवर्ष में निवास करने वाले हिंदुओं और मुसलमानों के सौमनस्य एवं सद्भाव को भी परम आवश्यक बताया गया है। भारतीय राष्ट्रभाषा, राष्ट्रध्वज और वन्देमातरम् जैसे राष्ट्रगीत के विषय में हिंदुओं और मुसलमानों को सदैव उदात्त राष्ट्रीय भावना का समादर करते रहने का सदुपदेश दिया गया है।[6]

राष्ट्र की राजनैतिक स्वतंत्रता तथा संप्रभुता को भी परम आवश्यक सिद्ध किया गया है। अपनी मातृ-भूमि की सेवा को अपनी माता की सेवा के समान मान दिया गया है और अपना देश किसी अन्य देश के अधीन रहे, इस तथ्य को अपने लिए निंदा का विषय बताया गया है। फलस्वरूप देश को स्वाधीन कराने के लिए सुनियोजित सत्याग्रह का आंदोलन अहिंसात्मक एवं वीरतापूर्वक आंदोलन चलाया गया है, जिसमें अनेक दुस्सह वेदनाओं को सोत्साह सह लिया गया है।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि राष्ट्र के प्रति सर्वात्मना समर्पित महापुरुष गांधी के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव प्रकट करके कवयित्री पंडिता क्षमाराव ने आत्मनिष्ठ राष्ट्रीय भावना, दुष्ट अंग्रेजी शासन का विरोध एवं उससे मुक्ति की भावना का ही समग्र राष्ट्रवासियों में संचार करना चाहा है और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है।

श्रीमहात्मागांधिचरितम्

तीन भागों में विभाजित यह एक अतिविशाल महाकाव्य है। प्रथम भाग को **"भारतपारिजातम्"**, द्वितीय भाग को **"पारिजातापहारः"** तथा तृतीय भाग को **"पारिजातसौरभम्"** की संज्ञा दी गयी है। भारतपारिजातम् में 25 सर्ग और 1814 श्लोक, पारिजातापहारः में 29 सर्ग और 2025 श्लोक तथा पारिजातसौरभम् में 21 और 1672 श्लोक हैं। कुल मिलाकर इस महाकाव्य के संपूर्ण सर्गों की संख्या 75 और श्लोकों की संख्या 5511 है।

इस पृथुकाय महाकाव्य के लेखक पंडितराज स्वामिश्रीभगवदाचार्यजी, हैं, जिनका जन्म स्यालकोट (पंजाब) में 1880 ई. में हुआ था। ग्रंथ के प्रारंभिक अंशों तथा स्वयं कवि के कथनों से यह प्रतीत होता है कि वे गांधीजी के समकालीन निकटस्थ तथा उनके परम भक्त थे। इस महाकाव्य की सभी प्रकार के सामायिक परिवर्तनों और परिवर्द्धनों के पश्चात् अंतिम और अभीष्टतम परिसमाप्ति 1951 ई. में हुई तथा इसी समय यह अपने सांगोपांग रूप से प्रकाशित भी हुआ।

जैसा कि ग्रंथ के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इस महाकाव्य में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सूत्रधार किंवा संचालन परम देशभक्त, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के तपःपूत जीवनचरित को इतिहास और काव्य के ताने-बाने में बड़ी ही कुशलता

रौलट विरोध

इसके विरोध में पं. मालवीय जी तथा अन्य सदस्य कौंसिल से अपना पद छोड़कर बाहर चले गए। गांधीजी ने समस्त भारतीयों को 6 अप्रैल को उपवास एवं शोक सभाएँ आयोजित करने का आदेश दे दिया। सर्वत्र देश में जंगल की आग की तरह विरोध प्रदर्शन होने लगे। इसी बीच डॉ. सत्यपाल और डॉ. किचलू को समस्त भारतीय प्रजा में एकता बढ़ाने के कारण सरकार ने देश से निकाल दिया। इन दोनों नेताओं को दण्ड से छुड़ाने के लिए कमिश्नर के पास गयी जनता के ऊपर अंधाधुन्ध गोलियाँ चलाकर उसे भून दिया गया। उन्हें सरकारी अस्पताल में भर्ती करने की आज्ञा नहीं दी गयी। अंततः डॉ. केदारनाथजी के निजी अस्पताल में भर्ती किया गया, जहाँ गोलियों से भूने हुए भारतीयों को देखकर ईसडन (नर्स) हँसकर कहने लगी कि आज इन सबको योग्य पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उसकी जहरीली वाणी सुनकर लोग उसे मारने दौड़े किंतु वह मिली नहीं। पंजाब के सुपुत्रों ने क्रुद्ध होकर नेशनल बैंक को जला दिया, उसके मैनेजर स्टुअर्ट और काट्स को भी मार डाला। राबिन्स, रामसन और रोलैण्ड इन तीन गोरों को भी मार डाला। एक-एक अंग्रेज की हत्या के लिए लाखों भारतीयों का वध करने के लिए तथा उनका अपमान करने के लिए अंग्रेज अधिकारियों ने फौजी शासन (मार्शल लॉ) की व्यवस्था अमृतसर में लागू कर दी (9/27-43)।

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड

जल्यानवालेत्यभिधानबोध्ये बृहत्तमे चोपवने सभायाम्।
नराधमो डायरनामको—संदौरङ्गंजो वहिनचयं ववर्ष ॥(9/44)

नराधम डायरनाम वाले दुष्ट अंग्रेज ने जलियांवाला नामक एक बड़े बाग में ही सभा के ऊपर चुपचाप एक सेना के द्वारा रास्ता रोककर निरीह हजारों बालक, वृद्ध, स्त्री, जवान सभी लोगों को बिना किसी विचार के गोलियों से भून डाला। कवि ने इस नृशंस हत्याकाण्ड का अत्यन्त कारुणिक दृश्य उपस्थित किया है (3/44-49)। यही नहीं शेरबुड नाम की किसी रोगी औरत पर किसी ने हमला कर दिया था। राक्षस राज डायर ने उसका बदला अत्यन्त निकृष्ट रीति से चुकाया (3/50-56)।

कवि कहता है यह कथा तो केवल अमृतसर की है। अब लाहौर की दुःखद कथा को सुनने के लिए छाती को भारी पत्थर से दबाकर तैयार हो जाओ—

अमृत्सरस्यैवमियं कथा सील्लाहौर—पुर्या अपि तां दुरन्ताम्।
श्रोतुं समापीड्य भवेत सज्जा उरः स्वकीयं दृषता दृढेन ॥ (9/57)

इस नरसंहार को सुनते ही गांधी जी पंजाब की ओर चल दिए। उस समय पंजाब का गवर्नर ओडवायर था। महात्माजी का पंजाब पहुँचना सुनकर दुष्टबुद्धि

यही थी गांधीजी की भावना कि अपने देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने के लिए कुछ भी कर गुजरने को वे किशोरावस्था में ही कृतसंकल्प थे। इनकी यह प्रसुप्त भावना जागृत हुई अफ्रीका में—जहाँ भारतीयों के प्रति अंग्रेजों की रंगभेद नीति तथा अपने प्रति रेलगाड़ी में हुए अपमानजनक दुर्व्यवहार के फलस्वरूप उन्होंने यह निश्चय किया कि अंग्रेजों के हृदय में से रंगद्वेष को निर्मूल करने के लिए सब दुःखों को सहकर भी यथाशक्ति उद्यम करना चाहिए—

गौराङ्गकाणां हृदयाद्धि रङ्गिकं द्वेष समुन्मूलयितुं यथाबलम्।
सर्वाणि दुःखानि विषह्य चोद्यमः कर्त्तव्य इत्यप्यथ स व्यचिन्तयत् ॥ (5/22)

इस प्रकार गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में नाताल, प्रीटोरिया, मारीत्स-वर्ग, चार्ल्सटाउन जोहान्सिबर्ग, स्टण्डर्टन तथा जर्मीष्टन आदि जगहों पर अंग्रेजों की रंगभेद नीति, अत्याचार एवं अवमानना आदि को अपनी आँखों से देखा सहन किया तथा अनुभव किया। पुनः नाताल आकर हिंदुस्तान वापस आने की तैयारी कर लिए (सर्ग-5)

हिंदुस्तान पहुँचकर अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे सत्याग्रह आश्रम की स्थापना कर भारतोद्धार की चिंता में संलग्न हो गए—

आजीवनं भारतरक्षणाय रक्षाविधीनामपि शिक्षणाय।
अहम्मदाबादमहापुरैऽसौ व्यक्तिष्ठिपच्चाश्रममेकमीड्यम् ॥ (6/1)

आश्रम में रहते हुए सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए तथा लोगों को इसका उपदेश देते हुए अंत्यजोद्धार एवं भारतोद्धार के लिए लोगों को प्रेरित करने लगे तथा भारत माँ की स्वतंत्रता के लिए व्याकुलचित्त गांधीजी दिनोदिन उपासना में दृढ़ होने लगे (सर्ग 6)—

स्वतंत्रताया जननी पुरा या नवद्यविद्याव्रतजन्मभूर्या।
सा भारती भूमिरदभ्रदुःखप्रदा बभूवास्य विपत्तिमग्ना ॥ (6/41)
मोक्षं समुत्पादयितुं महात्मा श्रीभारतस्याथ महाविपत्तेः।
उपासनायां पुरुषोत्तमस्य दिने दिने सौ दृढ़तां प्रपेदे ॥ (6/42)

जो भारतभूमि पहले स्वतंत्रता की माता थी और समस्त उत्तम विद्याओं और व्रतों की जन्मदात्री थी वही भूमि दुःख में फँसी हुई होने के कारण महात्माजी को अत्यंत दुःख देने वाली बन गयी। इस महती विपत्ति से भारत को मुक्ति दिलाने के लिए श्री महात्मा जी भगवान की उपासना में दिनोदिन दृढ़ होने लगे।

चम्पारन में नील आंदोलन

इस समय गांधीजी एक बार लखनऊ में कांग्रेस राष्ट्रीय महासभा को देखने के लिए लखनऊ गये थे वहीं राजकुमार शुक्ल नामक कोई किसान महात्मा जी के पास आए और अत्यन्त खिन्न होकर प्रणाम करके अपनी विपत्ति सुनाने लगे। वह

बम्बई, मद्रास और चौरीचौरा काण्ड में अपनी सहमति को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने अपना लिखित बयान प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया कि राज्य के दोष जब-जब मेरी दृष्टि में आए मैंने उनको दूर करने के लिए प्रयत्न भी किया। इस प्रकार से आपकी दृष्टि से जो राजद्रोह है—उसे मैंने बहुत ही कम सजा मेंबदल दिया सन् 1893 में दक्षिण अफ्रीका में एक विषम स्थिति में सबसे पहले मेरा कार्य आरम्भ हुआ।

1899 ई. में मैंने बोवर युद्ध के समय राज्य की सहायता की थी। उस कठिन समय में घायलों की सेवा करने के लिए मैंने एक स्वयं सेवक समाज की स्थापना भी की थी। युद्ध छिड़ जाने पर मैंने लेडी स्मिथ को बचाने के लिए सब कुछ किया। 1906 ई. में जूलू युद्ध के समय मैंने ऐसी ही सहायता की थी। इन दोनों कार्यों के लिए प्रसन्न होकर सरकार ने मुझे पदक दिया था।

उस समय लार्ड हार्डिंज से केसरे हिंद का स्वर्ण पदक भी मैंने अफ्रीका में प्राप्त किया था। सन् 1914 ई. में जर्मनी और इंग्लैंड के भयंकर युद्ध में लंदन में रहने वाले भारतीयों का जिनमें विशेष रूप से छात्र थे—मैंने एक संघ का निर्माण किया था। 1917 ई. में हस्तिना-दिल्ली में हुई थी, उसमें लार्ड चेम्स फोर्ड ने सैनिकों की भर्ती के लिए आग्रहपूर्वक मुझसे प्रार्थना की थी, इतनी सेवा मैंने इसलिए की थी कि राज्य में मेरे देशबंधुओं को भी बराबरी का हक मिलेगा। मेरी इस आशा-लता पर सबसे पहले संहार करने वाला रौलेट एक्ट रूप में वज्र पड़ा। उसके विरोध में उग्र आंदोलन हुआ। पंजाब में घोर हत्याकाण्ड हुआ, जलियाँवाला बाग (अमृतसर) में प्राणि-हिंसा मनुष्यों का वध हुआ। पंजाब में घोर हत्याकाण्ड हुआ जलियाँवाला बाग (अमृतसर) में प्राणी-हिंसा मनुष्य का वध हुआ, बेकसूर लोगों को कोड़ों से पीटा गया, मनुष्य को पेट के बल रेंगाया गया तथा ऐसे कृत्य हुए जिनका वर्णन नहीं हो सकता। यह सब कुछ जानते हुए भी मैंने सरकार के साथ मित्रता की रक्षा करने के लिए 'मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार' जो हमारी परतंत्रता की वृद्धि का एक नया उपाय था तथा सबको असंतोषकारक भी था, मैंने स्वीकार कराया। इस संपूर्ण अंग्रेजी अत्याचारों का उलाहना तथा अपनी एवं भारतीय जनता की सत्य, अहिंसाप्रियता की दुहाई का बयान गांधी ने दिया तथापि उनके साथी शंकरलाल बैंकर को एक हजार रुपये और एक वर्ष की सजा तथा उनको भी तिलक के समान छः वर्षों की अपरिश्रम कारावास की सजा दी गयी (10/54-58)

लाहौर अधिवेशन एवं पूर्ण स्वराज्य की मांग

परोडा कारागार में गांधीजी के बीमार पड़ जाने से उन्हें समय से पहले ही छोड़ दिया गया। महासभा के संचालकों ने। जनवरी, 1931 को लाहौर में अधिवेशन करके मोतीलाल के पश्चात् जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया तथा इसी

से कर वसूल कर रही थी। उस समय चम्पारन में स्थित महात्माजी ने खेड़ा जिले के किसानों की रक्षा में लगे हुए सब लोगों को मालगुजारी देने से रोकने के लिए आदेश दिया (8/1-12)।

शीघ्रं महात्मवसुमत्यधिपेन तेन चम्पारणे स्थितवता निखिला निदिष्टाः।
खेडाकृषीवलसुरक्षणदत्तचित्ता रोद्धुं च राज्यकरदानमवश्यमेव ॥ (8/6)

नादियाण सभा में सत्याग्रह

गुजरात पहुँचकर महात्माजी ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन शुरू कर दिया। सत्याग्रह को समझाने के लिए उन्हें नादियाण में एक सभा का आयोजन कर किसानों एवं जनता को संबोधित किया–

उद्घोष्य स प्रतिवचस्विति दीनदेवः सत्याग्रहाख्यसमरप्रतिपादनाय।
सम्पादिताशु समितिर्नडियाद एका तत्राजहार गिरमित्यभयं महात्मा ॥ (8/13)

अंततः गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन के समक्ष अंग्रेज सरकार ने घुटने टेके। मालतदार ने श्रीमहात्माजी के पास विनयवत होकर कहा कि यदि जो किसान राजदेय-सरकारी कर देने में समर्थ हैं, वह यदि अपना कर दे दें तो गरीबों का कर इस वर्ष अवश्य ही मुतलबी रख दिया जाएगा। विजयी सत्याग्रही अपनी वांछित वस्तु को पाकर सब दुःखों को भूल गये। इस युद्ध के द्वारा सब किसानों के दुःखों का अंत करके वह महानुभाव तथा भारत-कल्पवृक्ष श्री महात्माजी सब जनता को संतुष्ट करके स्वयं भी संतुष्ट हो गये–

दुःखस्य नाशमखिलस्य कृषिवलानां सम्पाद्य महानुभावः।
संतोष्य सर्वजनतां स्वयमप्यतीव तुष्टो बभूव स हि 'भारतपारिजातः' (8/52)

रौलेट बिल (एक्ट)

एक बार सत्याग्रह आश्रम में गांधीजी बीमारावस्था में पड़े थे, उसी समय अंग्रेज सरकार ने रौलेट बिल नाम से प्रसिद्ध एक बिल तैयार किया जो अत्यन्त तीक्ष्ण और महाभयंकर था (9/2-9) भारतीय जनता और जननायकों पर अत्याचार करने के लिए और अपने लाभ के लिए इस एक्ट को समस्त भारत में प्रचलित कर दिया गांधीजी ने सोचा कि यदि यह कायदा बन जाएगा तो उसे नष्ट करने के लिए मैं अवश्य सत्याग्रह युद्ध करूँगा। अतएव एक सभा का आयोजन कर एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया, जिसे सब लोगों ने स्वीकार किया (3/13-18)। उसे सभी समाचार-पत्रों में छपवा दिया गया, किंतु क्रूर सरकार ने किसी की एक न सुनी। अंततः 18 मार्च, 1919 को यह बिल कानून के रूप में परिणत हो गया (9/26)

ग्रहेश्वराङ्केशमिते खिरिस्त–संवत्सरे मार्च उपप्लवाढये।
अष्टादशे हन्त तिथावियं सा भवद्वयवस्था तु विधानमेव।। (9/26)

उपयोग करती है और निश्चय ही इसके टैक्स का भार उस गरीब प्रजा के लिए दुःखद है। अतः भारत की रक्षा के लिए मैं इस सत्याग्रह युद्ध का आरम्भ नमक कानून तोड़ने से ही करूंगा।

यह सत्याग्रह युद्ध कानून तोड़ने के द्वारा सरकार के अन्यायपूर्ण सर्वप्रवृत्तियों को अवश्य दूर करेगा, यह मेरी बलवती आशा है–

सत्याग्रहो सावनुशासनानां भङ्गेन राज्यानयत्प्रवृत्तीः।
दूरीकरिष्यत्यखिला अवश्यमिव्ये–वमाशा बलिनी मदीया ॥ (11/61)

मैं प्रार्थना करता हूँ कि अपने आदमियों के द्वारा किये गए अन्याय को स्वीकार कीजिए और उन्हें दूर करने के लिए तैयार हो जाइए। यदि यह मेरी बात ठुकरा दी जाएगी और कोई सुन्दर उपाय आपकी ओर से नहीं विचारा जाएगा तो मैं तीक्ष्ण सत्याग्रहास्त्र को लेकर युद्ध करने के लिए अपने सैनिकों के साथ दांडी जाऊंगा–

अन्याय्यमेतल्लवणस्य राजस्वं मे महद्दीनदृशा विभाति।
तस्माद्रणारम्भणमस्य भङ्गैः करिष्यते भारतरक्षणाय ॥ (11/64)
वाचो मदीया अपमानिमाश्चेत्तव–याभ्युपायो न च वीक्षितश्चेत्।
सत्याग्रहास्त्रं निशितं गृहीत्वा युद्धाय दांडी व्रजितास्मि योधैः ॥ (11/63)

दांडी यात्रा

जिस समय गांधीजी ने अपना पत्र वायसराय के पास भेजा उसी समय पुलिस ने वल्लभ भाई को रास गाँव में पकड़ लिया। गांधीजी ने समझा कि जिस युद्ध की घोषणा मैंने पत्र में की है, अंग्रेजों ने वल्लभ भाई को पकड़कर उसे स्वीकार कर लिया। अतः लाचार होकर उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि 11 मार्च को युद्ध आरम्भ कर दिया जाएगा। 10 मार्च की शाम से ही लोग इकट्ठे होने लगे। गांधीजी ने संपूर्ण जनता को अपने सत्य अहिंसा के द्वारा नमक कानून भंग करने हेतु दाण्डी चलने के विचार को स्पष्ट किया तथा दाण्डी के लिए प्रस्थान कर दिया। पुनः रास्ते में जगह-जगह रुककर लोगों को भाषण देते, इकट्ठा करते आगे बढ़ने लगे। गांधी जी जिस रास्ते एवं गाँव से होकर गुजरते समस्त नर-नारी आबाल, वृद्ध एवं नेता आदि उनके साथ हो लेते। इस प्रकार गांधीजी असलाली, बारेजा, नवागाम, वासाणा, मातर, डभाण, नदियाण बोरियावी, आनंद, नापा, बोरसद, रास, कंकापुर, कारेली, गजेश, अणस्वी, जम्बूसर, आमोद, समनी, दरोला, भरौच, अंकलेश्वर, मांगरोल, रायमा, डपराछी, शाहोल, भटगाँव, मुहम्मदपुर, सांधिपेट, देलाड, छापराभाठा, डिडोली, बाँझ, जलालपुर, नवसारी, सूरत, तथा पेथाड़ आदि गांवों एवं स्थानों से होते हुए गांधी जी करांडी पहुँच गये। गांधीजी जिस गांव से होकर गुजरते वहाँ के लोग उनका अभिनन्दन करते तथा उनके साथ हो लेते।

गवर्नर ने गांधीजी को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया। गांधीजी की गिरफ्तारी को सुनकर लोग उन्हें छुड़ाने के लिए गवर्नर के पास जाने लगे। गवर्नर ने इस समाचार को सुनकर तुरन्त गोली चलाने का आदेश दे दिया। क्षणभर में निशस्त्र निर्दोष बहुत से लोग वहाँ गिरा दिए गये और मार डाले गए–

वृत्तं सपद्येव निबुध्य शास्ता समादिदेशानलवर्षणानि।
क्षणेन लोका बहवो निरस्त्रा निपातिताः सन्निहताश्च तत्र ॥ (9/62)

गवर्नर ने लाला दूनीचन्द्र, श्रीहरिकृष्ण लाल, पं. रामभज दत्त चौधरी आदि को देशनिकाला देकर लाहौर में भी फौजी कानून (मार्शल लॉ) घोषित कर दिया, जिसकी बागडोर कर्नल जॉन्सन को सौंप दी गयी। हण्टर समिति के सामने जॉन्सन ने अभिमान के साथ कहा मेरा यह कृत्य जरा भी अन्याययुक्त नहीं था। गूजरांवाला शहर में भी अंग्रेजों ने हवाई जहाजों से गोले बरसाये थे। वहाँ अनेक निरपराध स्त्री, पुरुष और अबोध बच्चे मारे गये थे। कसूर शहर में चौराहे पर ही फाँसी देने का मचान बनाया गया था। पं. मोतीलाल नेहरू ने प्रयत्न करके मनुष्यों की फाँसी को बंद कराया था तथापि अनेक भारतीय गोरों के हाथों मारे गये थे (9/58-73)।

राजद्रोह के कारण गांधीजी की गिरफ्तारी : नये नेताओं का अभ्युदय

गांधीजी ने पंचम जार्ज को संदेश दिया कि तुम्हारे आदमियों ने भारत वासियों पर बड़े-बड़े अन्याय किए हैं, इन सबको दण्ड देना चाहिए। किंतु उसने इसे अनसुनी कर दिया। ज्यों-ज्यों अंग्रेजों का जुल्म बढ़ता गया त्यों-त्यों भारतीय प्रजाशक्ति सम्पन्न बनती गयी। पं. मोतीलाल नेहरू जवाहरलाल नेहरू, दीनबंधु चितरंजन दास, मौ. अबुल कलाम आजाद, लाला लाजपत राय, राव गंगाधर पांडेय आदि अन्य बहुत से वीर देश रक्षा के लिए तैयार हो गए। देश रक्षा रूप अपराध के कारण सैकड़ों उन बुद्धिमान देशरक्षकों को जेल में ठूँस दिया गया। गांधीजी को साबरमती आश्रम से पकड़ लिया। 'यंग इंडिया' में लिखे गये तीन लेखों के कारण उनके ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चला (10/1-15)।

यङ्गेण्डियागतैर्लेखैः कैश्चित्त्रिभिरयं मुनिः।
राजद्रोहापराधेन दूषितो घोषितोऽभवत् ॥ (10/15)

कचहरी में बैरिस्टर ने जो भी राजद्रोह गांधीजी पर लगाए (10/16-25) उन सबको गांधी जी ने सहर्ष स्वीकार करते हुए पहले मौखिक निवेदन किया (10/26-52) पुनः लिखित निवेदन जो किया है, उन सभी में स्पष्ट रूप से गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाओं के साथ-साथ स्वाधीनता संग्राम की प्रमुख घटनाओं का भी विवरण प्राप्त होता है। यथा–

मौम्बय्यं चापि माद्रासं चौरीचौरं च सर्वथा।
जनतावधकाण्डं तन्मत्पक्षस्य समर्थकम् ॥ (1026)

दिया जिसके कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। भारत को स्वराज्य देने की इच्छा वाले अंग्रेजों ने एक सूचना-पत्र प्रकाशित किया। उस सूचना पत्र में महात्माजी ने देखा कि अंत्यजों और हिन्दुओं को अलग-अलग कर दिया गया और हिंदुओं से पृथक् अन्त्यजों को अधिकार दिए गये हैं। जेल में ही गांधीजी ने अंत्यजोद्धार और छूआछूत के लिए उपवास प्रारंभ कर दिया। संपूर्ण देश में यह आंदोलन शुरू हो गया तथा इस कार्य में भी गांधीजी को यथासंभव सफलता मिली—(सर्ग 24)।

4. पारिजातापहारः

'महात्मगांधिचरितम्' के तीनों भागों में आदि से लेकर अंत तक कोई भी ऐसा श्लोक या वाक्य नहीं है जो गांधीजी के जीवन दर्शन के साथ भारतीय स्वाधीनता संग्राम के किसी-न-किसी बिंदु को न स्पर्श करता हो। भारतपारिजातम् की ही भांति पारिजातापहार में भी स्वाधीनता संघर्ष की कुछ प्रमुख घटनाएँ अवश्य हैं, किंतु उतनी नहीं। 29 सर्गों वाले इस भाग के पहले सर्ग में सर्वप्रथम भारत के तत्कालीन शासन का वर्णन है। सात प्रांतों में राष्ट्रीय महासभा का शासन था जिसमें हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई परस्पर अत्यन्त सुखी थे, किंतु दुर्भाग्य से तीन प्रान्तों में मुस्लिम लीग का शासन था जिसमें हिंदुओं को बहुत अपमानित और पीड़ित किया जाता था। मुस्लिम लीग की नीति ने हिंदू मुसलमानों में बहुत बड़ा सांप्रदायिक विद्वेष फैला रखा था। (1/1-16)—

साम्प्रदायिकाविद्वेषं प्राचीचरदनुद्धरम्।
मुस्लिमलीगगता नीतिर्हिन्दुमुसलमानयौः॥ (1/6)

बंगाल, जयपुर, जोधपुर, लिम्बडी तथा राजकोट आदि राज्यों में अंग्रेजों की शह से सांप्रदायिक विद्वेष एवं राजाओं के द्वारा प्रजा पर अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। गांधी जी एवं पटेल जी ने स्थिति को सुधारने की पूरी कोशिश की तथा राज्यों के "राजाओं से संपर्क करके प्रजाहित के लिए कानून बनाए। गिब्सन को जब यह पता चला तो उसने पुनः फूट डालो की नीति से राजाओं द्वारा कानून भंग करवा दिए। इसी बीच जर्मनी के हिटलर ने युद्ध में विजय प्राप्त करके अंग्रेजों में भय पैदा कर दिया। इंग्लैंड भी युद्ध के लिए तैयार हुआ तथा बिना किसी से पूछे ही अपने साथ भारत को भी युद्ध में सहभागी बनाने की बात घोषित कर दी। भारत के सात प्रांतों में कांग्रेस की सरकार थी। अतः महात्माजी ने यह घोषित कर दिया कि इस पापयुद्ध में "भारत शामिल नहीं होगा" अंग्रेज इस घोषणा को नहीं सहन कर सके तथा देश के नेताओं को पकड़ना शुरू कर दिया। जवाहरलाल नेहरू को पकड़कर 4 वर्ष के लिए जेल में डाल दिया। अंततः गांधीजी ने वाणी स्वातंत्र्य संग्राम शुरू कर दिया—

वाणीस्वातंत्र्यसंग्राममारब्धातो विचारतः॥ (1/105)

सभा में पूर्ण स्वराज्य की मांग एवं घोषणा की गयी (11/1-5)–

तिथौ च मासे प्रथमे खकाल–ग्रहेशयुक्तेऽथ खिस्तकाब्दे।
लाहौरपुर्यामधिवेशनंतन्महासभायाः समपादि तज्जैः ॥ (11/3)
जवाहिरोऽसौ मिहिरप्रतीको जग्राह राष्ट्राधिपतित्वमत्र।
पिता च पुत्रे निखिलाधिका– रान्समार्पयत्सर्वमतानुमानी ॥ (11/4)
महासभा घोषयदत्र पूर्णस्वराज्य–मेवेष्टमतः परं में।
श्रीमानयं मान्यवरो महात्मा–प्यलं बलेनानुमतिं दयधत्त ॥ (11/5)

गांधीजी का अहिंसा, सत्याग्रह एवं नमक कानून

गांधीजी ने आश्रमवासियों की एक सभा की जिसमें अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों एवं दुर्नीतियों के खिलाफ सत्याग्रह और अहिंसा के द्वारा युद्ध करने की घोषणा की। उन्होंने कहा कि तुम लोग तो जानते ही हो कि सत्याग्रह एक ऐसा तीव्र और अव्यर्थ शस्त्र है जिसके सामने बड़ी बलवती सेना भी टिक नहीं सकती–

सत्याग्रहस्तीव्रममोघशस्त्र स्थातुं न शक्नोति पुरश्च तस्य।
अनीकिनी कापि महाबलापीत्ये–तत्तु जानीश चिरेण यूयम् ॥ (11/13)

अंग्रेजी सरकार की भारतवर्ष का नाश करने वाली निरंकुश अत्यन्त दुष्ट हिंसा प्रतिदिन चला रही है। उस हिंसा का निवारण करने के लिए जो महानुभाव उद्यत हुए हैं, वह भी तीव्र हिंसा का मार्ग लेकर ही। ये दोनों ही मेरे लिए असह्य हैं। मैं मानता हूँ कि दोनों ओर से प्रवृत्त इस हिंसा को सर्वथा जीतने के लिए अहिंसा ही समर्थ है। अतः मैं आज उसी अहिंसा का प्रयोग करने के लिए निश्चय कर रहा हूँ–

मन्येऽमद्योभयथा प्रवृत्तां हिंसां विजेतुं नितरां समर्था।
भवेदहिंसैव ततः पवित्रां तां सम्प्रयोक्तुं बत निश्चनोमि ॥ (11/16)

अतः नमक के लिए अन्यायपूर्ण अपमान की इच्छा से बनाया गया दुष्ट और निन्दनीय जो सम्राट का कानून है–पहले उसे तोड़ूँगा–

ततो व्यवस्थां लवणस्य पूर्वं कृतां च राज्येन विनिन्दनीयाम्।
अन्यायपूर्णामपमानराशिप्रसूतिमेतां विभनज्मि दुष्टाम् ॥ (11/17)

इसी संदर्भ को लेकर गांधीजी ने वाइसराय के पास एक पत्र 2.3.1930 को इस आशय से भेजा कि जो अवधि मैं दूंगा उस समय तक यदि मुझे उत्तर नहीं मिला तो युद्ध के लिए तुरन्त ही निश्चय कर लिया जाएगा। (11/26-66)। सबकी तरह मुझे भी पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की जो आशा थी, उसे तो गोलमेजी परिषद् तथा आपके वचन ने भी भग्न कर ही दिया है। यह बात निर्विवाद है कि सबके नित्य उपयोग आने वाली चीजों में से नमक मुख्य चीज है। गरीब प्रजा उसका अधिक

गांधी जी अमेरिकावासियों तथा जापानवासियों से अपने मधुर संबंधों की चर्चा करते हुए अंग्रेजों के अत्याचार एवं उनके भारत छोड़ने के संदर्भ में विशद वार्ता करते हैं। (5, 6 सर्ग)। पुनः वे भारतीय राजा लोग जो अंग्रेजों की सहायता लेकर अपने देशबंधुओं को शत्रुवत् समझते हैं तथा उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि—हे राजाओ आप लोग ही अंग्रेजी राज्य के स्तम्भ हैं, उसके रक्षकों में श्रेष्ठ हैं। यदि आप लोग अपनी प्रजा के कल्याण में नहीं लग जाते तो मैं आपके राज्य में रहने वाली सर्वगुण संपन्न प्रजा को कहूँगा कि वह आपको शीघ्र ही सीधे मार्ग में ले जाए। जो सर्वोत्तम कार्य फ्रांस की जनता न कर सकी उसे भारत की जनता अवश्य सिद्ध करेगी इस देश में न तो अंग्रेज रहेंगे और न आप लोग इस विरुद्ध भाव के साथ रहेंगे (7/1-26)—

न श्वेतशासनमिदं भवितात्र देशे।
यूयं न चापि भवितास्थविरुद्धभावाः॥ (7/25)

वर्धा महासभा

युग्मश्रुतिग्रहब्रह्मसंमिते यैशवेऽब्दके।
चतुर्दश्यां जुलाय्यास्ते पूजार्हा देशनायकाः॥ (3/1)
वर्धाख्ये नगरे रम्ये श्रीमत्या राष्ट्रसंसदः।
कार्यवाहक समितेरधिवेशमतन्वत॥ (13/3)

14.7.92 ई. देश के पूज्य नेताओं ने वर्धा में राष्ट्रीय महासभा की कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन किया। महात्माजी के प्रयत्न से सदस्यों ने स्पष्ट रूप से यह तय किया कि अब अंग्रेजी राज्य का यहाँ से अंत होना चाहिए। जिस किसी प्रकार से अब अंग्रेजी राज्य को इस भूमि से हटाना चाहिए। नाजीवाद, फासीवाद, सेनावाद, आदि वादों को समूल नष्ट करने के लिए भारत की स्वतंत्रता सर्वथा अपेक्षित है। अन्य देश की निर्बल प्रजाओं को हैरान करने वाली प्रजा को स्वतंत्र भारत ही दूर कर सकता है। अंग्रेजी राजशासन को प्रजा के प्रतिनिधियों के अधीन करेंगे ऐसी महासभा की इच्छा थी। ऐसा किये जाने पर सर्वत्र पनपती हुई स्वतंत्रता को भारतवर्ष अवश्य जीवन प्रदान करेगा, ऐसी महासभा की इच्छा थी। सबके कल्याण की इच्छा रखने वाली यह महासभा भारत पर शत्रुओं के आक्रमण को जरा भी नहीं चाहती है। देश और काल का विचार रखने वाली यह महासभा ऐसे मार्ग को ग्रहण नहीं करेगी जो मित्र राज्यों की अभिलाषा का नाश करें। भारत और ब्रिटेन दोनों के हित के लिए ही महासभा ने न्यायपूर्ण माँग पेश की है। ब्रिटेन इस प्रार्थना को यदि नहीं स्वीकार करेगा तो राजकीय अधिकारों और स्वतंत्रता की सिद्धि के लिए महासभा अपनी अहिंसक महाशक्ति का प्रयोग करेगी। कितने ही विषयों का निर्णय करने के लिए

गांधीजी इन गांवों में रुक-रुककर भाषण देते, उपदेश देते तथा विश्राम करते हुए बढ़ते। इस बीच बहुतेरे राष्ट्रीय नेता भी उनके पीछे-पीछे चल दिए (सर्ग 12 से 21 तक) गांधीजी करांडी से जब आगे बढ़े तो उनके साथ लाखों नर-नारी साथ चल रहे थे। अंततः दाण्डी पहुंचकर राष्ट्रीय सप्ताह के प्रथम दिन में अजेय शक्ति वाले गांधीजी ने नमक कायदा तोड़ना शुरू किया। पहले समुद्र में घुसकर स्थान करके, रामनाम का स्मरण करके समुद्र तट पर पड़े हुए नमक को उठा लिया। सैनिकों ने भी प्रसन्न होकर मुठ्ठी में नमक लेकर राजा के कानून को तोड़ डाला। इस प्रकार सारे भारत में उत्साहपूर्वक नमक कानून तोड़ा गया (21/27-30)

तदनु तु निखिलेऽस्मिन्भारते क्षाररक्षिनियमतनु विभङ्गो भून्महोत्साहशाली।
अनतिसुलभदेवेना हिता या तपस्या फ्लतु नहि कथं सा सर्वशुद्धा समिद्धा ॥
(21/30)

पुनः नमक लूटने का क्रम रोज जारी रहा। गांधीजी की गिरफ्तारी हो गयी लेकिन अब्बास अली तथा सरोजनी नायडू आदि ने नमक कानून भंग आंदोलन जारी रखा। संपूर्ण देश में यह आंदोलन जोर पकड़ लिया। हजारों लोग मारे गये अंततः करबंदी की लड़ाई में महात्माजी की विजय हुई तथा वायसराय से समझौता हुआ–

प्रसन्नबुद्धिर्विरचय्य संधपत्रं स्वहस्ताक्षरितं च ताभ्याम्।
विधाय तद्युद्धविरामकाल मघोल–यत्सोऽस्थिरमेव तर्हि ॥ (22/28)

गोलमेज सम्मेलन

गन्तुं तदा श्रीयतिराजराजः सम्प्रार्थितो वर्तुलगोष्ठिकायाम्।
भूत्वा सदस्यः समपदीर्विनेन स लंदनं धीरवरो जगाम ॥ (22/84)

उसी समय लार्ड इरविन ने गांधीजी से गोलमेज परिषद् में सदस्य होकर जाने की प्रार्थना की। अतः वह लंदन चले गये। वहाँ उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण से अपना तथा कांग्रेस महासभा का मन्तव्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा महासभा ने सरकार और महासभा के बीच में संधि हो जाने पर यह भी यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक पूर्ण स्वराज्य भारतवर्ष को नहीं मिलेगा परिषद् की बनायी हुई उप-समितियों के द्वारा लिए गए निर्णयों को और महाप्रधान के द्वारा घोषित साम्राज्य के निश्चय से युक्त निवेदनों को मैंने मन लगाकर शांति से मनन किया है। मुझे मालूम हुआ कि वह सब निर्णय और सब निवेदन महासभा के ध्येय से बहुत अल्प हैं। अतएव उनका ग्रहण नहीं हो सकता है। न्यूनाधिक करने में मैं समर्थ हूँ परन्तु इस सामर्थ्य का उपयोग मैं उसी वस्तु में कर सकता हूँ जो महासभा शासन के अनुकूल हो अन्यथा नहीं (23/1-26)।

गोलमेज की असफलता के बाद लौटकर गांधीजी ने पुनः आज्ञा भंग शुरू कर

प्राप्त करने के लिए भारत वीरता के साथ अंग्रेजी राज्य से युद्ध करेगा, यह महासमिति की घोषणा है। बीस वर्षों से अहिंसक शक्तियों के द्वारा युद्ध करना इस देश ने सीखा है, उन्हीं शक्तियों से आज लड़ेगा। इस सात्त्विक युद्ध के सेनापति पद पर इस महासमिति ने महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी को स्थापित किया है। महान कष्ट सहन करके इस भारत-भूमि को जो स्वतंत्रता प्राप्त होगी वह यहाँ के समस्त मनुष्यों के उपयोग के लिए होगी (सर्ग 17)।

कष्टं विषह्य विपुलं समुपार्जितं स्या—त्स्वातंत्र्यस्य भरतक्षितिमंडलस्य।
यत्तत्समस्तनुवंशजनोपभोग्यं, नो केवलं भवतु जातु तदेकजातेः ॥ (7/90)

बर्धा में कार्यकारिणी समिति ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया था उसी की स्वीकृति लेने के लिए बंबई में महासमिति बुलाई गयी। मोहम्मद अली जिन्ना सहित तीन सदस्यों के अतिरिक्त सभी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। अतः महात्मा गांधी ने हिंदू-मुसलमान भाइयों में एकता की दृष्टि से जिन्ना आदि के विचारों की निन्दा करते हुए सद्भावना भाषण दिया। सेनापति की हैसियत से गांधीजी ने संपूर्ण दिन लगातार ओजस्वी भाषण देते रहे (सर्ग 8)। अंततः उन्होंने हिंदी न जानने वालों के लिए रात्रि में अंग्रेजी में भाषण देना प्रारंभ किया (सर्ग 19)।

भाषण देने के बाद सभा से निवास स्थान में जाकर वृद्ध शरीर वाले महात्माजी सो गए। अंग्रेजी सेना ने निद्रित दशा में ही उन भारतपारिजात का अपहरण कर लिया। सुशीला बहन, प्यारे लाल, कस्तूरबा, गांधी पटेल, नेहरू प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मौलाना आजाद आदि प्रमुख नेताओं को अंग्रेज राक्षसों ने एकाएक पकड़कर जेल में डलवा दिया। नेताओं की गिरफ्तारी की खबरें सुनकर संपूर्ण भारतवर्ष क्रोध और शोक से भर गया। चारों तरफ पाठशाला, मिल, कचहरी आदि विभिन्न संस्थान बंद कर दिए गये। अंग्रेजों के नृशंस अत्याचार से बच्चों, महिलाओं, बालाओं एवं बंधुओं को भी प्रभावित होना पड़ा। बच्चों को निर्दयता से काटकर फेंक देते, गर्भवती महिलाओं एवं कुंवारी कन्याओं के साथ बलात्कार जैसे नृशंस कृत्व को भी अंग्रेज निःसंकोच करते थे। आंसू गैस फैलाकर लोगों पर गोलियाँ चलाकर भून देते थे। संपूर्ण भारतवर्ष अंग्रेजों के अत्याचार से आक्रांत था। (सर्ग 20)।

इसी बीच जेल में महादेव भाई देसाई का देहावसान हो गया (सर्ग 21)। संपूर्ण देश की दुरवस्था से संतप्त गांधीजी ने वायसराय को लगातार तीन पत्र लिखे (सर्ग 22-26)। अपने चौथे तथा अंतिम पत्र में उन्होंने 21 दिन के उपवास की घोषणा कर दी जो समाचारपत्रों में प्रकाशित हो गया (सर्ग 27)। अंततः भारत के गृहसचिव का एक पत्र गांधीजी के पास उपवास न करने के लिए आया (सर्ग 28) किंतु गांधी जी ने अपना निर्णय नहीं बदला और कारागार में ही अपना उपवास प्रारंभ कर दिया।

इस महातेजस्वी युद्ध में पचास हजार मनुष्यों को अंग्रेजों ने पकड़कर जेल में बंद कर दिया। अंत में अंग्रेजों ने गांधीजी से संधि कर ली तथा सभी कैदियों को छोड़ दिया (1/17-107)।

तारीख 3.9.1939 को महात्माजी ने हिटलर के पास एक संदेश भेजा कि रूजवेल्ट की प्रार्थना को आप शांति से सुनें तथा युद्ध और हिंसा की नीति का त्याग करके संधि का मार्ग अपनाएं। तारीख 3.9.1940 को प्रत्येक अंग्रेज को भी समझाते हुए पत्र लिखे कि वे सब भी इस युद्ध का परित्याग कर शांति और अहिंसा का आश्रय लें जिससे निरीह जनता का नाश न हो। परंतु तारीख 10.7.1940 को वायसराय ने अपने पत्र में गांधी जी के विचारों की प्रशंसा करते हुए लिखा कि यह आपका मत ग्राह्य नहीं है (1/108-142)।

अंग्रेजों का अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। महात्माजी इन अत्याचारों को दूर भगाने के लिए किसी उत्तम उपाय को सोचने लग गये। इसी समय प्रयाग में राष्ट्रीय महासभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई–

प्रयागपुर्यामथ कार्यकर्त्री महासभायाः समितिर्बभूव ॥ (2/2)

वहाँ उपस्थित सभ्यों ने प्रस्ताव किया कि ब्रिटिश हम भारतीयों को सब प्रकार से पराधीन बनाकर हमसे सहायता चाहते हैं। यह बात भारतीय प्रजा को इष्ट नहीं है। (2/1-44)।

सर्वान्समन्तादिह भारतीया–न्विधाय दासान्यतते ग्रहीतुम्।
साहाय्यमस्मन्न तदेषणीयं भवेत्कदाचिद्भरतप्रजानाम् ॥ (2/34)

इन लुटेरों से प्रजा को बचाना चाहिए ही, इसमें तो कोई विवाद है ही नहीं। अंग्रेजी राज्य रहे या जाये, परंतु रक्षा का कार्य तो करना ही है–

लुण्टाकलोकेभ्य इमाः समस्ताः प्रजास्तु रक्ष्या इति नो विवादः।
प्रतिष्ठतां तिष्ठतु वा सिताङ्ग–राज्यं परं कार्यमिदं तु कार्यम् ॥ (2/43)

अंग्रेजों के उपद्रव को देखते हुए गांधीजी ने गंभीर वाणी से घोषणा की कि अब भारत छोड़ देना चाहिए नहीं तो भारतीय राजा एवं जनता इतनी जागरूक हो गयी है कि उन्हें भारत छोड़ना ही पड़ेगा (3/1-35)। अंग्रेजों के विरुद्ध ऐसा भाषण करके गांधीजी ने प्रत्येक अंग्रेज को एक पत्र लिखा कि–अफ्रीका में जो बहुत से प्रदेश अंग्रेजों ने वश में कर रखे हैं, उन सबको उसे शीघ्र छोड़ देने के लिए मैं अंग्रेजों से प्रार्थना करता हूँ। एशिया में जो भूमि उनके अधिकार में है, उसे शीघ्र छोड़कर चले जायें। भारत से तो अपने हित के लिए ही शीघ्र चले जाना चाहिए। विलम्ब करने का कोई कारण नहीं है (4/1-49)–

अध्येशियं या स्ववशीकृता भुव–स्ताश्चापि हित्वा सपदि प्रयान्तु ते।
श्रीभारतादात्महिताय सत्वरं गच्छन्तु नास्त्यत्र विलम्बकारणम् ॥ (4/8)

प्रतिपादन कोई नया कार्य नहीं है। बीस वर्षों से भी अधिक हो गए, मैं इस कार्य का प्रतिपादन करता रहा हूँ। निश्चय ही 1920 ई. से ही अंग्रेजों के हाथ से इस स्वदेश को शीघ्र छुड़ाकर इसे कल्याण मार्ग में चलाने का सामूहिक प्रयत्न आदरपूर्वक चल रहा है। महासभा के बड़े-बड़े नेता इससे भी पहले सामुदायिक युद्ध चलाने के लिए मेरे समक्ष बड़े आग्रह से प्रार्थना कर रहे थे, परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उत्सुक इन नवजवानों के हृदय में जो आग सुलग रही है, उसे विचारपूर्वक मैंने अंकुश में रखा था। यह है इस संबंध में सच्ची बात।

मैंने यह सिद्ध किया है कि स्वराज्य प्राप्ति का यह कोई नया यत्न नहीं है। आपको तो महासभा की कीर्ति का विरोध करना है; अतः चाहे जो कह सकते हैं। आपका कहना है कि जब मेरे सभी कारण स्पष्ट हैं तथा यह युद्ध क्यों शुरू किया गया यह महासभा के रजिस्टर में लिखा हुआ है तो इसके कारण के शोध के लिए आपका मन इतना चंचल क्यों है। अतः अंग्रेज यहाँ से चले जाएँ। भारत पुनः स्वतंत्रता के सुख का आस्वाद लें। इस महान् कार्य की सिद्धि के लिए मेरी अखण्ड शक्ति का व्यय हो। इस देश से अंग्रेज अपनी सेना और अन्य साधनों के साथ चल जाएं। यह मेरा आशय नहीं। मेरी तो इतनी ही इच्छा है कि अंग्रेज सेना भी जाये और राज्य भी जाये। अंग्रेजी शासन के चले जाने पर सेना तो अपने आप चली जायेगी। यह मेरी कल्पना है। इसी प्रकार के बहुत सारे तर्कों एवं ओजस्वी शब्दों के द्वारा गांधी जी ने अंग्रेजों को भारत से बाहर स्वदेश लौट जाने के विषय में ही वकालत की गयी है। इसी प्रकार द्वितीय सर्ग में भी अन्य बहुत सारे तर्कों के साथ गांधी जी ने उपर्युक्त दोषारोपण का उत्तर दिया है। जिसमें देश की स्वाधीनता की ही बात कही गयी है।

ग्रंथ के तृतीय सर्ग में कस्तूरबा गांधी का महाप्रयाण, चतुर्थ सर्ग में महात्माजी की कारागृह से मुक्ति, स्टेफर्डक्रिप्स से दिल्ली में भेंट की पुनः 1940 ई. में नौआखाली (बंगाल) में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर किये जाते हुए अत्याचार को रोकने के लिए बंगाल चल देते हैं। कलकत्ता में कुछ समय तक रहने के पश्चात् वहाँ से चलकर रामपुर (बंगाल) पहुँचते हैं जहाँ बहुत ही सारगर्भित भाषण देते हैं जिससे मुसलमानों को शांत करके तथा हिंदुओं को उनके घरों में वापस लाकर स्थिति को नियंत्रित करते हैं (पंचम सर्ग)। षष्ठ सर्ग के अंतर्गत गांधी जी हिंदुओं को बहुविध उपदेश देते हुए समझाते हैं। मुसलमानों को भी मुहम्मद साहिब के शब्दों द्वारा उपदेश देते हैं। वहीं दौलतपुर में एक जमींदार ने महात्मा जी को कुछ भूमि भी समर्पित की। सप्तम सर्ग के अंतर्गत मनुगांधी को गांधी जी ने गीता का अध्ययन करवाया। अष्टम सर्ग में हिंदू-मुसलमानों दोनों को सम्मिलित रूप से सारगर्भित वचनों द्वारा उपदेश दिया।

कार्यकारिणी समिति महासमिति के सभ्यों के सामने रखेगी। बम्बई में भी उसका अधिवेशन हो वहाँ ही सब कार्यों का निर्णय होगा। ता. 7.8.1942 ई. के दिन यह सम्मेलन किया जाये (3/1-67)

मुम्बापुर्यां भवेत्तस्यास्तस्मादेवोपवेशनम्।
तत्रैव सर्वकार्याणां निर्णयः संभविष्यति॥ (13/66)
युग्मवेदग्रहब्रह्मसंमिते ब्र यैश्वेऽब्दके।
अगस्तस्य च सप्तम्यामिदं सम्मेलनं भवेत् ॥ (13/67)

अंग्रेजों ने जो भी नियम कानून बनवाये हैं, जो टैक्स लगाये हैं आदि को भंग कर दिया जाये। अपनी रक्षा के लिए जो संस्थाएँ बनी हैं, उसको बंद करने के लिए जो भी सरकारी अंकुश हों सब हटा दिए जायें। अपनी मातृ-भूमि के लोगों को दुखित देखकर और अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले अनर्थों को देखकर व्याकुल होकर महासभा ने सबके कल्याण के लिए यह प्रस्ताव स्वीकृत किए हैं—(3/68-106)

फ्रेडरिक पकल नामक हिंद शासन का एक अंग्रेज मंत्री था जो अत्यंत दुष्ट, लबार तथा क्रूर था। उसने 5.7.42 को दिल्ली के प्रांतीय सरकारों के मंत्रियों एवं कमिश्नरों के पास एक गुप्त पत्र भेजकर आदेश दिया कि 7 अगस्त को बम्बई में वर्धा प्रस्ताव का निर्णय करने के लिए जो राष्ट्रीय महासभा की महासमिति का अधिवेशन होगा। इस थोड़े समय में ही ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे महासभा के प्रति विरोध बढ़ जाये नहीं तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो जाएगा (सर्ग 14)। अंततः उसके आदेश से महासभा के विरोध हेतु सर्वत्र आदेश दे दिए गए (सर्ग 15)।

लंदन में न्यूज क्रोनिकल नामक एक समाचार पत्र प्रकाशित होता है, उसके एक प्रतिनिधि बंबई में आकर गांधीजी से मिले तथा कहा कि अपने अंग्रेजों और अंग्रेजी सरकार को यहाँ से चले जाने की आज्ञा दी है, परंतु वह जल्दी कैसे जा सकता है। राज्य के भार को वह किसे सौंपे। महात्माजी ने कहा—वह भारत देश को भगवान के चरणों में सौंपकर चले जायें। भले ही यहाँ अराजकता फैले, युद्ध हो और परस्पर लूटपाट हो।

अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा की महासमिति 8वीं अगस्त को बंबई में इकट्ठी हुई। सब सदस्यों की हार्दिक सम्मति लेकर उसने निम्नलिखित एक प्रस्ताव स्वीकृत किया।

दिनांक 14/7 को वर्धा में जो प्रस्ताव हुआ था उसके अनुसार कार्यकारिणी समिति ने विचार करके कहा—यह महासमिति 'अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ से उठ जायें', इसे बारंबार करती है। स्वतंत्रता की घोषणा करने के पश्चात् सर्वपक्ष की प्रजा को अभिमत हो ऐसी एक अस्थायी सरकार स्थापित की जायेगी। अतः स्वतंत्रता

सुनते हैं। हिंदुओं का प्रबल क्रोध प्रदर्शन तथा गांधी जी का उत्तर। अंततः महात्मा जी पर प्रार्थना सभा में गोली प्रहार तथा ता. 29/1/1948 ई. के दिन महात्मा जी लीलादेह को त्याग करके हृदय में बार-बार राम नाम स्मरण करते हुए स्वरूप में लीन हो गये। सप्तदश सर्ग में पं. जवाहर लाल नेहरू का विलाप एवं अष्टादशसर्ग में पंडित जी के भाषण का उल्लेख है। एकोनविंश सर्ग में महात्मा जी के परम धाम प्रयाण काल में देश के शीर्षस्थ क्रांतिकारी नेताओं द्वारा शोक संवेदना प्रकट की गयी है तथा विंश सर्ग में परमधामस्थ महात्मा जी गांधी के देह की उक्रातर क्रिया संपन्न की गयी है। ग्रंथ के उपर्युक्त सभी सर्गों एवं प्रसंगों तथा महात्मा गांधी के भाषाणों एवं कृत्यों में पदे-पदे भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख बिन्दुओं एवं कार्यों के दर्शन होता है। स्थल-स्थल पर भारत देश को अंग्रेजी दासता से मुक्त करके स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारियों द्वारा किए गए त्याग-बलिदान की भूयसी प्रशंसा एवं चर्चा की गयी है।

संदर्भ सूची

1. तथापि देशभक्त्याहं जातास्मि विवशीकृता।
   अत एवास्मि तद् गातुमुद्यता मंदधीरपि ॥ —सत्याग्रहगीता, 1/3
2. सत्याग्रहगीता, 1/21-39,
3. सत्याग्रहगीता, 3/14-31, 5/9-40, 10/1-47, 11/1-30, 12/1-45, 14/1-36, 15/1-28, 16/1-52, 17/1-70
4. हन्त भोः किं बहूक्तेन प्रतिजाने दृढं हि वः।
   सर्वात्मना यतिष्येऽहं देशकल्याणासिद्धये ॥
   साधयिष्यामि देशस्य क्लेशमुक्तिहिंसया।
   अहिंसैव हि साधूनाम मोघं दिव्यसाधनम् ॥
5. वही, 3/1-17 तथा सप्तम अध्याय
6. वही, (क) 21/43-55, (ख) 32/1-31
   वंचयेय स्वदेशं चेच्छिलाघातैर्हतैव माम्
   न काप्यत्र घृणा कार्या वरं वैरी न वंचकः ॥
   × × ×
   जन्मभूमेः कृते सोढं शुभोदकं भविष्यति।
   मातुरर्थे सुपुत्रस्य कई क्लेशों दुःसहो भवेत्? —उत्तरसत्याग्रहगीता, 2/10-15
7. सत्याग्रहगीता, 3/19-39
8. वही, अध्याय 4-12 तथा 43
9. वही, 2/17-36, 47/17-21

गांधीजी के उपवास को सुनकर संपूर्ण भारतवर्ष के नर-नारी उनकी प्राण रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। चारों तरफ हाहाकार मच गया। उनकी तपस्या से पृथ्वी काँप उठी। इसका सबने अनुभव किया। ब्रिटिश मंत्री चर्चिल उस समय अकस्मात बीमार पड़ गया। अमेरिका का सर्वाध्यक्ष रूजवेल्ट भी रोगी होकर चारपाई पर पड़ गया। सर्वतः अंग्रेजों का अधःपतन होने लगा। अंततः 21 दिन बीत गये। भारत ने सुप्रभात का दर्शन किया। करोड़ों मनुष्यों के मनोबल से तथा महात्माजी के प्रताप से सत्त्व की विजय हुई।

5. पारिजातसौरभम् (20 सर्ग)

'महात्मागांधिचरितम्' के तृतीय पारिजातसौरभम् में पूर्व के दो भागों की अपेक्षा स्वाधीनता संग्राम की प्रमुख घटनाओं का वर्चस्व थोड़ा कम है तथापित गांधीजी के जीवन से संबंधित ग्रंथ होने के कारण कुछ प्रमुख घटनाएँ अवश्य ही सुलभ हैं। 20 सर्गों वाले पारिजातसौरभम् नामक इस भाग के प्रथम सर्ग के अंतर्गत गांधी जी के कारावास में रहने का उल्लेख है। इसी समय महात्मा जी के पास भारत की अंग्रेजी सरकार ने एक भाषण भेजा। उसमें सन् 1942 ई. के भारत में हुए उपद्रवों का दोष महात्मा जी पर और कांग्रेस पर आरोपित हुआ था। गांधी जी ने इसके प्रत्युत्तर में अंग्रेजी सरकार को खूब खरी-खोटी सुनाई जो ग्रंथ के पहले और दूसरे सर्गों में उल्लिखित हैं। प्रत्युत्तर देते हुए गांधी जी ने कहा कि जिसके ऊपर यह अपराध लगाया जा रहा है, वह उपस्थित नहीं है, उसे बहुत दूर रख दिया गया है, उसका मुँह भी बंद कर दिया गया है और तब यह घोषणा करना कि 'वह अपराधी है' विद्वानों के मत से यह आपके लिए शर्म की बात है। भारत देश में परदेशी लश्कर को देखकर मेरा मन दुःखी बन गया जो यह आपका कथन है, वह सर्वथा असत्य दुःखकर है जो कुछ मेरा वचन सत्य है उसे आप सुनें।

यदि अंग्रेजी राज्य को दया उत्पन्न हुई है और वह इस भारत-भूमि की रक्षा करना चाहता है तो क्या कारण है कि जो शिक्षित भारतीय सैनिक हैं उन्हें भारत से बाहर भेजने की सरकार इच्छा कर रही है। भारतीय सैनिकों को परदेश क्यों भेजा जा रहा है। तथा परदेश से सेना यहाँ क्यों आ रही है तथा कांग्रेस नाश करने के लिए क्यों सदा उद्यम होता रहता है? इससे भी अधिक आज यह कहने को मन चाहता है कि यह सुन्दर देश बचाया नहीं जा रहा है, बल्कि अधिक पीड़ित किया जा रहा है जिससे कि यहाँ से स्वराज्य की बला चली जाये। गांधीजी जब से यह कहने लगे कि अंग्रेज भारतवर्ष से क्षण भर में बाहर निकल जायें तब से ही महासभा के 7 अगस्त को होने वाले अधिवेशन तक कांग्रेस के सभी बड़े-बड़े लोग अंग्रेजों को निकालने के काम में लग गये थे। आपका यह कथन भी व्यर्थ है। स्वतंत्रता का

राष्ट्र के उन संकटापन्न निर्णायक-क्षणों के चित्रण से महाकाव्य का आरम्भ होता है, जब अनेक प्रकार के मूल्यों के संघर्ष में भारतीय राष्ट्रीयता का रूपाकार निश्चित हुआ था।

सेवामग्राम में रहते हुए गांधी जी के पास इस आशय के पत्र आया करते थे कि समस्त भारतवासियों का हित ध्यान में रखते हुए आपको देश-विभाजन का अनुमोदन नहीं करना है।[1] दूसरी तरफ अंग्रेज जिन्ना को अलग राष्ट्र बनाने को प्रेरित कर रहे थे और घोषित कर रहे थे कि जब तक हिंदू और मुसलमान एक नहीं हो जाते तब तक वे स्वाधीनता देने को तैयार नहीं हैं।[2] ऐसी दुर्नीति के चलते गांधी जी द्वारा प्रत्येक संधि-प्रयास असफल हो रहा है।[3] किंतु फिर भी महात्मा जी स्वतंत्रता के लिए अपनी सारी आस्तिकता की बाजी लगा चुके थे और बड़े आत्मविश्वास के साथ अपने देशवासियों को सांत्वना दे रहे थे–

"आर्या भोः बान्धवा मास्म भैष्टाऽस्मिन् प्रस्तुते मनाक।
प्राणेभ्योऽपि हि मे प्रेयान् मातृभूमेः सुखोदयः॥
खंडन स्वशरीरस्य करिष्येऽ सहस्रशः।
न तु स्वप्नेऽवि विच्छेदं चिंतयिष्ये जनुर्भुवः॥"[4]

मोहम्मद अली जिन्ना से एक मास तक विचार-विमर्श करने पर भी कोई समाधान नहीं निकला फिर भी गांधी जी को निराशा नहीं हुई। उन्हें आशा थी कि जन्म-भूमि के विभाजन की हानि अवश्य ही जिन्ना को भी अनुभूति होगी।[5] ऐसा था गांधी जी का मानवता पर विश्वास प्रायः मनुष्य और अपने पर भी विश्वास की कमी के सम्पूरक के रूप में ईश्वर पर लोगों का विश्वास होता है, किंतु गांधी का ईश्वर पर विश्वास ऐहिकता से पलायन न होकर उस पर दृढ़ विश्वास का प्रमाण है, वे कहते हैं–

"परमात्मनि विश्वासाद्विश्वासो में नरेष्वपि।
नरेष्वपि च विश्वासाद्विश्वासः परमात्मनि॥"[6]

महात्मा जी का 'परमात्मा' प्रत्यय भी कोई योगगम्य या गलदश्रु-भावुकता की वस्तु नहीं थी, प्रत्युत उनके लिए सत्य और अहिंसा जैसे कोमल गुण ही परमात्मा के स्थानी थे–

"स एव सत्यं सत्यं च परमात्मेति में मतिः"[7] और उसी पर उनका अटल विश्वास था।[8] जिस जन्मभूमि की स्वतंत्रता के प्रति उनमें सदैव ये भाव हिलोरें मार रहे थे–

"आदास्बंधनिर्मुरास्वातंत्र्यफलोदयम्।
नास्ति भोः मम विश्रांतिः प्राणेभ्यो जन्मभूः प्रिया॥"[9]

हिंदुओं की दुर्दशा पर गहरी चिंता भी व्यक्त की जिसे उन्होंने अपने यात्राकाल में देखा था। नवम सर्ग अंतर्गत के मनुगांधी को आगे करके गांधी जी सब जनता को उपदेश दिए। महात्मा जी पैदल चलते हुए आमकी नामक गांव में पहुँचे जहाँ उनका वृद्ध शरीर निर्बलता के कारण मूर्च्छित हो गया। राम नाम का स्मरण करते हुए गांधी जी मूर्च्छा से उठे। इसी संदर्भ में वे राम नाम का माहात्म्य बताते हैं।

प्रतिवर्ष 26 जनवरी को बहुत दिनों से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रतिज्ञा स्मरण का उत्सव देश ने स्वीकार किया था, किंतु आज हिंदू-मुसलमान दोनों जातियों में प्रबल द्वेषाग्नि जल उठी है। अतः ताप से मेरा शरीर जर्जर हो गया है, इसलिए मैं तिरंगे झंडे को नहीं उड़ाऊंगा। इसका कारण मेरी स्वेच्छा है। यदि अंग्रेजी सरकार झंडा उड़ाने से मुझे मना करे तो मैं उस तिरंगे झण्डे को अवश्य उड़ाऊंगा। यदि देश में आज यही दशा है, सर्वत्र विश्वास एवं भाई-चारे की भावना का विनाश हो चुका है तो महाप्रभावशालिनी भगवती स्वतंत्रता आज किसी शरण ढूँढ़ेगी–

देशे दशेयं यदि वर्ततेद्य सर्वत्र विश्वासलयो विभाति।
महाप्रभावा भगवत्यनिंद्या स्वतंत्रता कं शरणं करोतु ॥ (9/46)

दशम सर्ग के अंतर्गत डॉ. महमूद सैय्यद के पत्र पर महात्मा जी नोआखाली से बिहार पहुँचे। जहाँ हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर भयंकर अत्याचार एवं हिंसात्मक कार्य हो रहे थे। हृदय को कँपा देने वाले उस दावानल को शांत करने के लिए महात्मा जी ता. 5/3/1947 ई. को उन्मत्त बने हुए पटना में गये। पटना में उन्होंने हिंदुओं को बहुविध समझाने के लिए लगातार भाषण दिया। हिन्दू-मुसलमान में एकता एवं सौहार्द्र के लिए महात्मा जी द्वारा दिए गए भाषण का उल्लेख ग्रंथ के एकादश एवं द्वादश सर्ग में भी पूर्णरूपेण वर्णित है। त्रयोदश सर्ग के अंतर्गत विहार में शांति स्थापित करके महात्मा जी का वायसराय के आमंत्रण से दिल्ली तथा झोपड़ियों में ही भारत का वास्तविक दर्शन हो सकता है। इसके समर्थन के लिए एक इतिहास एवं भाषण आदि का उल्लेख है।

इसी समय में हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर आक्रमण होता हुआ देखकर महात्मा जी अत्यन्त दुःखी हो गए। एतदर्श उन्होंने उपवास की घोषणा कर दी। लोगों के पूछने पर उपवास के कारण का भी निरूपण करते हैं साथ ही उपवास के निश्चय पर अडिग रहते हैं–सर्ग चतुर्दश। पुनः पञ्चदश सर्ग के अंतर्गत उपवास के समय गांधीजी के भाषण का वर्णन है। अंततः बाबू राजेंद्र प्रसाद जी का हिन्दू एवं मुस्लिम नेताओं के साथ सभा में आगमन तथा परस्पर न लड़ने के प्रतिज्ञापत्र का वाचन। अंत में गांधी ने अपना उपवास समाप्त किया।

षोडश सर्ग के अंतर्गत गांधी जी बन्नू से आए हुए हिंदुओं की दुःख-गाथा को

नेताजी सुभाषचंद्र बोस के कृतित्व का पुण्यस्मरण करते हुए उनकी मृत्यु के उपरान्त राजद्रोह में निगृहीत उनकी सेना के अधिकारियों के विषय में कवयित्री का कथन कितना मार्मिक है कि उन वीरों का कोई अपराध नहीं था, यदि था भी तो कोई देशभक्त होने का तथा देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का अपराध था।[25]

अमेरिका के सेलर नामक पत्रकार ने गांधी जी को एक पत्र लिखा हम अमेरिकावासी आपकी क्या सहायता कर सकते हैं?[26] गांधी जी ने उन्हें उत्तर दिया कि आप निर्भीकता से भूतार्थ का प्रचार करें।[27]

राष्ट्र-यज्ञ में प्रत्येक नागरिक का स्वसामर्थ्यानुसार समित्स्वरूप कुछ भी समर्पण उसके तरंगित राष्ट्र-भाव का प्रमाण होता है। कलकत्ता से लौटते हुए महात्मा गांधी को गोण्डा के एक धनिक ने जहाँ चाँदी का एक पत्र समर्पित कर राष्ट्र-दैवत के चरणों में अपनी श्रद्धा न्यौछावर की[28] वहीं एक अकिंचन वृद्धा द्वारा दो-आने का श्रद्धार्पण[29] किसी भी महत्तर दान से भी बढ़कर रहा। दीनबंधु सी.एफ. एण्ड्रूज का स्मारक बनवाकर[30] तत्कालीन भारत ने यह सिद्ध कर दिया कि लोकसेवा की भावना जाति, धर्म और राष्ट्रीयता सबसे ऊपर होती है और भारतीयों को ऐसे लोकसेवकों की महानुभावता का आदर करना भी आता है। गांधी जी दीर्घायुष्य का रहस्य निष्काम सेवा-भावना को ही मानते थे।[31] उनका मत था—

"वपुर्नृणां हि सेवार्थं नतु सौख्योपभुक्तये।
सुखं संजायते त्यागात् त्याग एव हि जीवितम् ॥"[32]

1946 ई. में कलकत्ता में एक छात्र-सभा को सम्बोधित करते हुए महात्मा गांधी ने उन्हें अपने कर्त्तव्य में सावधानतया लगे रहने[33], समय का सदुपयोग करने[34], स्वदेशीयवस्तु से अनुराग करने[35], अस्पृश्यता और जातिभेद की भावना का परित्याग करने[36], असहायों की सहायता[37] और स्वभाषा के प्रसार[38] आदि की सीख दी।

किसी भी देश की राष्ट्रीयता का 'भाषा' एक सबल घटक है। इस सत्य से अभिज्ञ गांधी जी जब स्थान-स्थान पर आयोजित सभाओं में लोगों के अंग्रेजी में भाषण करते सुनते तो उद्विग्न हो उठते और उन्हें सलाह देते कि या तो राष्ट्र-भाषा में बोलने का अभ्यास करें या लोक-भाषा में बोलें।[39] यद्यपि गांधी जी के लिए अंग्रेजी सभ्यता के दीर्घकालिक संपर्क के कारण अंग्रेजी ही सरल थी, किंतु उनकी दृष्टि में तो अपनी सुविधा नहीं, प्रत्युत्य राष्ट्र-गौरव छाया हुआ था, भारत देश की स्वतंत्रता एवं कल के भारतीयों की सुख-सुविधाएँ समायी थीं। विशाखापत्तन में एक सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा कि स्वराज्य की प्राप्ति में देश के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

"पूर्वमस्पृश्यताव्याधे निर्मूलनमशेषतः,[40]
द्वितीयं सर्वजातीनामेकमत्येन वर्तनम्,
तृतीयमादिवासिभ्यः समभोगाधिकारिता।"[41]

4

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम

1. स्वराज्य विजय : (54 सर्ग)

'स्वराज्यविजयः' पंडिता क्षमाराव की रचना है।

प्रकृत महाकाव्य पंडिता क्षमाराव का राष्ट्र की एक और उपायन है। इसमें युगपुरुष गांधी के जीवन के अंतिम वर्षों की राष्ट्रीय घटनाओं का कवयन है। इसमें 54 सर्ग और 1740 छंद हैं सर्गशः विषयवस्तु सर्ग नामों से स्पष्ट है, जो अधोलिखित हैं–

1. देश-खण्डन, 2. सेवाग्रामवृत्त का वर्णन, 3. विश्वयुद्ध-समाप्ति, 4. शांति संदेश, 5. वेवलोपन्यास, 6. शिमला सम्मेलन, 7. बन्दी-मोक्ष, 8. हिंद-सैनिक बंध-मोचन, 9. गांधी-दंगाधिपसंलाप, 10. आन्ध्र स्मार-कस्यायन, 11. आन्ध्र स्तवन, 12. छात्र-संदेश, हरिजन शिक्षावेश्मोद्घाटन, 14. नाविक-कार्यनिग्रह, 15. मदुरायात्रा, 16. पल्लीग्राम सम्मेलन, 17. रामनाम महिमा वर्णन, 18. हरिजन सहवासानुमोदन, 19. गांधी निमंत्रण, 20. मंत्रिसम्मंत्रण, 21. मंत्रिसंधावैकल्य, 22. रामराज्य वर्णन, 23. नव-विधा वर्णन, 24. मंसूरी यात्रा का वर्णन, 25. मंत्रि-नियोजन, 26. आकस्मिकोद्घात, 27. कलकत्ता विप्लव, 28. श्री गांधी-जन्मोत्सव, 29. दिर्भविप्लव, 30. श्री गांधी का कलकत्ता प्रस्थान, 31. गांधी-प्रधर्षण, 32. नौआखालीप्रयाण 33. बंगग्राम-पर्यटन, 34. गांधीप्रयास, 35. ग्रामपर्यटन, 36. राधामुकुद मूर्तिस्थापन, 37. ग्रामाटन, 38. स्वराज्योद्घोषणा, 39. आसिया सम्मेलन में गांधी प्रवचन, 40. कोराणपठनाक्षेपनिरास, 41. राम-रहीम साम्य निदर्शन, 42. महात्मानुशासन, 43. गांधी जी का अनुशासन, 44. लोकसान्त्वन, 45. देश-खण्डन, 46. कश्मीर प्रस्थान, 47. स्वराज्य लाभ, 48. दिल्ली विप्लव, 49. शरणार्थिसान्त्वन, 50. अंतिमप्रायोपवेशन, 51. गांधी जी पर बप फेंका जाना, 52. महात्मा जी का निर्वाण, 53. ग्रंथोपसंहार।

व्याख्या करते हुए गांधी जी ने 'हरिजन' पत्र में लिखा—'रामराज्य' जैसे व्यवस्था का स्वायत्त शासन चाहिए और वह रामराज्य कोई वायवीय व्यवस्था नहीं। उसके अनुसार सार्वजनीन समता के लिए हमें नैतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी प्रकार की स्वतंत्रता अपेक्षित है।[55] गांधी जी मंसूरी गये, वहाँ वे एक ओर वैभव सम्पन्न जनों की विलासिता और दूसरी ओर निर्धन कर्मकारों का दैन्य जीवन देखकर द्रवित हो उठे।[56]

वायसराय द्वारा कांग्रेस और मुस्लिम लीग को जुलाई, 1946 ई. में आंतरिक सरकार बनाने का आमंत्रण दिया गया। काफी विरोध-अवरोध के पश्चात् 12 अगस्त, 1946 को नेहरू जी ने वायसराय को सूचित किया कि हम सरकार गठित करने को तैयार हैं। 13 अगस्त को वायसराय ने एक विज्ञप्ति द्वारा इसकी घोषणा कर दी। 16 अगस्त को अपने पूर्व निर्णय के अनुसार मुस्लिम लीग ने सारे देश में विरोध-दिवस मनाया।

उस समय कलकत्ता में सिरफिरे मुसलमानों और हिंदुओं के बीच जो अत्याचार हुए[57] वह राष्ट्र के इतिहास की एक ग्रहणीय घटना है। इस नरसंहार में आठ सहस्त्र मनुष्यों के प्राण गये।[58] यही नहीं इसके आगे भी बहुत कुछ हुआ। नये भारत ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध ही लड़कर अपने को क्षत नहीं किया प्रत्युत अपने परिजनों के रक्त से भी स्वाधीनता का तर्पण किया। नोआखाली में मुसलमानों पर जो अत्याचार हुए[59] उन्हें देखकर गांधी जी का कोमल हृदय चीत्कार कर उठा।[60] गांधी जी कलकत्ता गये। कलकत्ता और बिहार के गाँव-गाँव में प्राणों पर खेलकर गांधी जी ने 'क्रियतां म्रियतां'[61] के दृढ़ निश्चय के साथ अपने जीवन को समर्पित कर दिया।[62] उपद्रव बंद हो गये, किंतु जितना हो चुका था, वही बहुत था। यह उस तपस्वी महात्मा का आत्मिक बल ही था कि मुसलमान भी उसके दर्शन से अपने को धन्य समझने लगे थे और हिंदू भी।[63] वे अपने लिए गांधी जी को कष्ट उठाते देखकर लज्जित हो उठते थे।[64] जो शांति स्थापना पश्चिमोत्तर भारत (पंजाब-लाहौर) में सेना से न हो सकी, यह पूर्व भारत में गांधी जी के अकेले अहिंसक प्रभाव से सम्पन्न हो गयी।

दिल्ली में हुए एशियी सम्मेलन में गांधी जी ने दृढ़तया स्पष्ट कर दिया कि किस प्रकार साम्राज्यवादियों ने विदेशों में भारत की छवि धूमिल करने का यत्न अब तक किया है[65] और इसके अनन्तर कहा कि भारत का यदि विश्व को कुछ संदेश है तो यही कि सब लोग परस्पर प्रेमपूर्वक एकीभूत हो सत्य और अहिंसा का सेवन करें।[66]

गांधी जी का कुरान का पाठी करने पर कुछ हिंदुओं ने विरोध किया, इस पर उन्होंने कहा—ईश्वर भाषादि से निरपेक्ष विभु है, अतएव गीता और कुरान में विरोध

स्वतंत्रता की सिद्धि के लिए सत्य और अहिंसा के मार्ग को ही वे न्याय समझते थे।[10] ब्रिटिश-शासन ने द्वितीय विश्वयुद्धोपरान्त भारत को स्वाधीन कर देने का वचन दिया था। युद्ध का आर्थिक और सैन्य-भार भारत को वहन करना पड़ा।[11] इस पर भी देश को स्वतंत्र नहीं किया गया[12], जो राष्ट्र के लिए असमी दुःख की बात थी[13] और जिस पर अहिंसात्मक स्वातंत्र्य-समर का निश्चय[14] अपनी स्वाधीनता के लिए जागरित विवश राष्ट्र का अंतिम विकल्प था। विश्वयुद्ध के भीषण रक्तपात पर कवयित्री का करुणाकुल हृदय युद्ध विधाताओं के अपने धर्म-प्रवर्तक ईशा को झुठलाने पर कटु व्यंग्य करता है।[15] वस्तुतः ईसा के नाम पर दैनंदिन के धर्मान्तरण से धार्मिक साम्राज्य की स्थापना और परराष्ट्रों के साथ ऐसे अमानवीय व्यवहार में कोई संगति नहीं बैठती दीखती।

चर्चिल ने गांधी जी को एक बार नंगा भिखारी कहा था, इस पर गांधी जी का उत्तर था—

"तां मय्यारोपितां संज्ञां मन्येऽहमतिदुर्लभाम्।
भिक्षुकस्य पदंलब्धुं प्रयते हि मया भृशम्॥
भिक्षुको हंत विश्वस्य जनोयमुपयोज्यताम्।
आवयोर्देशसौख्यार्थं तद्द्वारां जगतस्तथा॥"[16]

चर्चिल बेचारे को क्या ज्ञान कि गांधी के राष्ट्र ने भिक्षु के रूप में ही बहुत समय तक सभ्यता की समृद्धि का विश्व को दान किया है। अमेरिका के सांफ्रांसिस्को-पत्तन पर आयोजित सभा में गांधी जी ने जिन प्रस्तावों की बात की[17] वे राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ विश्वमंगल भाव की भी सूचना देते हैं।

अंग्रेज वैमनस्य का बीज होते हुए भी प्रबुद्ध मुस्लिमों को बहकाने में सफल न हो पाये थे। शिमला-सम्मेलन में मौलाना अबुल कलाम आजाद भी पूर्ण स्वराज्य की बात और अंग्रेजों की दुर्नीति की शिकायत सुन सकते थे—

"पूर्णस्वराज्यसम्प्राप्ति देशस्य परमा गतिः।"[18]

और

"नास्ति स्वतंत्रतावार्ता पक्षयोरैक्यमंतरा।
भवदीयोविधिस्तावत्पा-र्थक्यमवलम्बते॥"[19]

इंग्लैंड में शासन-परिवर्तन हुआ।[20] नये प्रधानमंत्री एटली के समय भारतीयों को स्वातंत्र्य की प्राप्ति की आशा बढ़ी।[21] विश्व-जनमत के डर से स्वातंत्र्य बंदियों को मुक्त किया जाने लगा।[22] उधर युद्धरत जापान के दो नगरों पर अणु शस्त्र के प्रयोग से अमेरिका ने बड़ा ही जघन्य आचरण किया।[23] ऐसे घातक अस्त्रों के उपयोग से मानव की विज्ञान-बुद्धि मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध की अनेक घटनाओं में एक यह भी अंध-राष्ट्र-भाव की दुष्परिणति थी।[24]

"भूयोऽपि प्रतिजानेऽस्ति यथाजने।
तथैवाङ्ग्लेऽपि में स्नेहा मानुष्यं हि द्वयोःसमम् ॥"[75]
और
"विदेश्यान् प्रति विद्वेषी नास्त्यस्मिन् संविधानके।
यथा वयं तथा तेऽपि मनुष्या इति मन्महे ॥"[76]

उस निष्काम कर्मयोगी का सम्पूर्ण जीवन भारतीय राष्ट्र के इस गौरवपूर्ण सिद्धान्त को समर्पित था–

"वपुर्नृणां हि सेवार्थं न तु सौख्योपभुक्तये।
सुखे संजायते त्यागात् त्याग एव हि जीवितम् ॥"[77]

इन सब लोकोत्तर गुणों से प्रभावित एक पाश्चात्य चिंतक का सत्योद्घोष था–

"शतवर्षोत्तरं रूजवेल्ट्चर्चिलस्टालिन्मुखाञ्जान्।
विस्मृत्यजगती गांधेनमिघोषं करिष्याति ॥"[78]

और ऐसे ही राष्ट्र चरित से भारत की ऐसी छवि विदेशों में उभर सकी–

"इतिहाससुसंस्कृत्योरध्यात्मविषयेऽपि च।
भारतादधिकः कोऽपि न देशः शांतिवत्सलः ॥"[79]

पंडिता क्षमाराव का सारा कृतित्व मानवीय मूल्यों की स्थापना के महदुद्देश्य को समर्पित है। गांधी जैसे युग-प्रवर्तक पुरुष की राष्ट्रीय समर्चा में इन्होंने 'सत्याग्रह गीता' और 'उत्तर सत्याग्रह गीता' नामक दो पुष्प और चढ़ाए हैं। वस्तुतः गांधी के विशदायामीचरित को कवयित्री ने इन तीनों महाकाव्यों के सम्मिलित प्रयास से आक्रोड में लेना चाहा है। स्वतंत्रता के लिए वर्तमान राष्ट्र के जिस जाज्वल्यमान काल-खण्ड को महाकाव्य में गृहीत किया गया है, उसमें भूतार्थ के अतिरिक्त वर्णना के लिए न आवकाश था और न कवयित्री का उद्देश्य ही, किंतु इससे गांधी जी का चरित जो आज केवल आदर्श की वार्ता बन गया है, यथार्थ का--जीवन का अंश नहीं बनाया जा सका है। उसमें जीवनीय शक्ति का अन्वेषण गांधीवाद और उसकी सफलता-असफलता के द्वन्द्व की पड़ताल में किया जा सकता था, जो कवयित्री की गांधी विषय श्रद्धैकपरक और आदर्शवादी काव्यदृष्टि से सम्भव नहीं हो सका है।

2. सुभाषचरितम् : (10 सर्ग)

श्री सुभाषचरित्रकार श्री विश्वनाधकेशवछत्रे शास्त्री का जन्म महाराष्ट्र के नासिक, पंचवटी में 27 सितम्बर, 1906 ई. को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री केशव शास्त्री और माता का नाम यशोदा था। आप स्नातक कक्षा तक अध्ययन करके भारतीय रेल सेवा विभाग में लिपिक के पद पर कार्यरत रहे। संप्रति आप सेवा-निवृत्त होकर "सिद्धेश्वर जाली, जोगलेकरवाड़ा, कल्याण, जिठठाणे (महाराष्ट्र) में

मद्रास में 'हरिजन-शिक्षा-संस्थान' का उद्घाटन करने जा रहे महात्मा गांधी का मार्ग में जनसमूह ने स्थान-स्थान पर सोपायन अभिनन्दन किया।[42] यह अभिनन्दन किसी सामन्तयुगीन नेता का नहीं वरन् स्वतंत्रता के लिए तड़पते राष्ट्र की आशा ज्योति का था। मद्रास में गांधी जी ने एक मजदूर सभा को संबोधित करते हुए कहा—जैसे भारतभूमि एक है, उसी प्रकार जाति, धर्म और व्यवसाय-विशेष से ऊपर कर्ममात्र को ही समर्पित सभी कर्मकर एक है[43], और वस्तुतः देश का स्वामित्व भी उन्हीं का है।[44] गांधी जी की मातृ-भाषा यद्यपि हिंदी नहीं थी, किंतु उन्होंने राष्ट्र-हित के लिए पौनः पुन्येन हिंदी के लिए लोगों से आग्रह किया।[45] मद्रास से लौटते समय मार्ग में गांधी जी ने पल्लीग्राम में लोगों को सम्बोधित किया। उन्होंने अस्पृश्यता पर बड़ी कटु फबती कसी और कहा—"अस्पृश्यता की रूढ़ सामाजिक व्यवस्था बड़ी अज्ञतापूर्ण है। वास्तव में ब्राह्मणत्व के लिए भी तदनुकूल चरित की आवश्यकता होती है, दुराचारी ब्राह्मण को भी ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।"[46] 'यह ब्राह्मण और वह ब्राह्मणेतर है', 'यह अपना धर्म है और वह पराया' ऐसी धारणा त्याज्य है।[47] वस्तुतः—

"मनुष्यकुलसम्भूतां वयं सर्वे सहोदराः।"[48]

यहाँ भंगी और ब्राह्मण दोनों समान हैं—

"समाजे हि समानः स्याद् द्विजेन मलशोधकः।"[49]

मीनाक्षीपुरम में गांधी जी ने मंदिर में प्रवेश नहीं किया, कियोंकि वहाँ हरिजनों के प्रवेश पर रोक लगी हुई थी।[50] अन्ततः गांधी जी के प्रयास से हरिजनों को मंदिर में प्रवेश मिला। गांधी जी धर्म की बाह्याडम्बरों को व्यर्थ मानते थे।[51] गांधी जी के ये सारे कार्य कोई दिव्य कार्य नहीं प्रस्तुत देश और काल को अनिवार्य आवश्यकता थी तथा भारतीय स्वाधीनता में सहयोगी उपकरण थे, किंतु उसे लोक से मनवाने का न तो किसी में साहस था और न आकुलता। इसके लिए तो कोई समाज का समर्पित व्यक्ति ही आगे आ सकता था, जिसे गांधी जी ने पूरा किया।

किसी ने गांधी जी की प्रतिमा किसी मंदिर में प्रतिष्ठित कर पूजना आरम्भ कर दिया, इस पर समाचार-पत्र के माध्यम से उसे गांधी जी ने ऐसा करने से मना करके उस मंदिर को सूत्रवयनशाला के रूप में परिवर्तित कर देने की सलाह दी।[52] उन्होंने कहा मनुष्यों की पूजा उसकी उचित आज्ञा का पालन ही है और कुछ नहीं।[53] गांधी जी ने हरिजनों के बीच रहकर अपनी समत्वबुद्धि का ठोस प्रमाण प्रस्तुत किया।[54]

स्वतंत्रता के लिए राष्ट्र की आकुलता कोई भावुक बंध-मुमुक्षा नहीं, प्रत्युत अपने सम्यक् विकास के लिए योजनाबद्ध विचारों का कार्यान्वयन था, जिसकी

अवलोकरन किया जाएगा। वस्तुतः नेता जी का अमर कृतित्व उनके बाद के उनके सहस्रों समानधर्मी क्रांतिवीरों में राष्ट्र की स्वाधीनता के प्रति प्राणोत्सर्ग की आग भड़काता रहा था और आज की पीढ़ी के लिए भी ज्योतिः स्तम्भ है। 'श्रीसुभाषचरितम्' की रचना को लेकर कवि का भी यही उद्देश्य है, जिससे गुरुजनों में राष्ट्र के प्रति सद्भाव जागृत हो।[80] हम देखेंगे कि ऐसे ऊर्जस्वीचरित को लेकर लिखा गया महाकाव्य कहाँ तक अपने लक्ष्य को सफल बना सका है।

राष्ट्रीय-स्वाभिमान के जागृत होने पर व्यक्ति अपने बड़े-बड़े स्वार्थ को भी ठोकर मार सकता है। सुभाषचन्द्र बोस के पिता ने राजकीय उपाधि 'राजबहादुर' का त्याग करके[81] अपनी इसी भावना का परिचय दिया था। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक कहीं की भी किसी सुखद या दुःखद घटना को लेकर नागरिकों में समान संवेदना उनकी एक राष्ट्रीय चेतना की परिचायक होती है। पूना में शासन के अत्याचार का प्रतिकार करने पर चाफेर बंधुओं को जो यातना दी गयी, वह व्यक्ति विशेष की यातना न होकर दमित राष्ट्र को आक्रांता राष्ट्र की दी गयी यातना थी, इसी प्रकार बंग-भंग की घटना भी थी, जिनका उत्कृष्ट प्रभाव सुभाष चन्द्र के बालमन को झेलना पड़ा।[82] शासक-जाति में यह धारणा घर कर जाती है कि शासित-जाति गुणों में अवर और सदैव शासनीय ही होती है। जब अंग्रेज भारत में आये तो उन्हें भी अनेक धर्म और विचारों की भूमि भारत असभ्यों का देश ही लगा था, सोचने लगे थे कि वे उसका शासन करके उसे सभ्य-संस्कृत बना रहे हैं। यह भावना अंग्रेज बच्चे-बच्चे में थी, जिसका अनुभव मिशन-स्कूल के छात्र-जीवन में सुभाषचन्द्र बोस को हुआ। ऐसे अपमान को सुभाषचन्द्र बोस के स्वाभिमानी मन को नहीं सहन हुआ।[83]

राष्ट्रीय किंवा मानवीय सहानुभूति के कारण ही आरम्भ से ही नेताजी में दीन-दलितों के प्रति सेवा का भाव उद्बुद्ध हो सका था।[84]

प्रथम विश्वयुद्ध की घोषणा तथा विश्वयुद्ध की गतिविधियों ने परतंत्र देशों की जनता में आत्म-निर्णय की भावना तथा स्वतंत्रता की माँग को पुष्ट किया। इसका अपवाद भारत भी नहीं था। भारत की अंग्रेज नौकरशाही का विचार था कि राजनीतिक सुधारकों की धारा फेंककर भारतीय जनता की उग्र भावना को शांत किया जा सकता है, किंतु इससे अधिक उसे दमन की नीति पर विश्वास था इसलिए बंगाल आदि अनेक प्रान्तों मं सहस्रों क्रांतिकारी युवकों को भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत कारावद्ध कर दिया, किंतु इससे क्रांतिकारी गतिविधियों को रोका नहीं जा सका, प्रत्युत उनमें और प्रचण्डता का आधान हो गया।[85]

सद्गुरु-मार्गण अभियान में राष्ट्र की पवित्र-धारा को दूषित करने वाले अनेक

कैसा।[67] सभी धर्म-ग्रंथों का सार एक ही है, ऐसी हिंदू धर्म की मान्यता है।[68] इस प्रकार गांधी ने कट्टरपंथी हिंदुओं को चिंतन की विशद् भूमि प्रदान की।

गांधी जी के अनेक प्रयत्नों के बावजूद देश का विभाजन हो ही गया। महामहिम भारत के संपूर्ण सद्गुणों से व्यापक महात्मा जी की ये पंक्तियाँ जब भी पाकिस्तान प्रेमियों के लिए भारत में स्थान का अवकाश छोड़ती थीं, साथ ही देशगत विविध धर्म और जाति वालों में भारत को अपनी भूमि मानने का घोषणा-पत्र भी थीं–

"ये जना अत्र संजाताः पोषिताः शिक्षितास्तथा
जन्मभूमिरियं तेषां सर्वेषां भारतावनिः।"[69]

15 अगस्त, 1947 ई. को यद्यपि भारत ने स्वराज्य-श्री के दर्शन किये, किंतु स्वतंत्रता का विजयोत्सव पंजाब और दिल्ली के हृदय-द्रावक नर-संहार[70] के चीत्कार में डूबकर रह गया। दासता की दृढ़ शृंखला को तोड़ने के प्रयास में अनेक राष्ट्र-वीरों ने साम्राज्यवादियों के हाथों सिर कटाये। पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होते-होते संकुचित विचारधारा वाले विधर्मियों से मरे-कटे, इसके बाद देश स्वाधीन हुआ।

राष्ट्र-पुरुषों की मस्तक-मणि जिस महात्मा का प्रभाव अंगीकार करके अंग्रेज उसका अनिष्ट करने की नहीं सोच सके, कट्टर मतवादी मुसलमानों में भी जिसके लिए करुणा देखी गयी उसे ही एक 'हिंदू' नाम धारी धर्मान्ध ने मार दिया। यह भारत के सांस्कृतिक इतिहास की एक क्रूर विडम्बना है। इस जघन्य अभारतीय कृत्य के मूलान्वेषण के प्रयास में हमारे सामने यह तथ्य खुलता है कि यह भारत की सदियों की दासता का ही दुर्विपाक है। सैकड़ों वर्ष पूर्व हम अपनी उदात्त राष्ट्रीय जीवनधारा से कट चुके थे। यहाँ तक आते-आते आर्य जाति की चिंतन की वह विशदपीठिका नहीं रह गयी थी, जो धर्म-जाति आदि से आगे मानवता को अंकगत करने की सामर्थ्य रखती थी।

महात्मा गांधी का जीवन एक अर्थ में बड़ा ही अद्भुत जीवन था, जिसमें एक साथ प्राचीनता और नवीनता का संगम था एक तरफ आस्तिकता जैसी परम्परित धारणा को वे अत्यावश्यक मानते थे[71], दूसरी तरफ धर्म की विकृतियों[72] के कटु आलोचक के रूप में धर्म को देश से ऊपर स्थान न देकर उसमें आवश्यक संशोधन भी चाहते थे।[73] आशय यह कि गांधी जी की दृष्टि में धर्म मनुष्य के लिए था न कि धर्म के लिए मनुष्य। यही कारण था कि वे **"अन्त्याजनां परित्राता दीनानां च सुहृन्मणिः"**[74] ही नहीं प्रत्युत मानव मात्र के प्रति उनका अद्वेष भाव था। वे आततायी अंग्रेजों से अपने राष्ट्र के हित के लिए छुटकारा चाहते थे, पर उनका अहित नहीं चाहते थे, वे कहते थे–

को लिखे गये पत्र से स्वाभिमान और राष्ट्र की स्वतंता के लिए उनकी उदात्त भावना स्पष्ट होती है।

"स्विस्भूमिगनं च तत्र वसनूं द्रव्यव्ययश्चापि मे,
कार्योऽयं खलु शासनेन महरुग्रह्यास्ते निबन्धोद्भवा।
भूयो भारतदर्शनं न न सहे निर्बन्धमालामिमां,
देहोऽयं पततु त्याजामि न कदा सत्वं यदंगीकृतम् ॥"[97]

युवकों को संबोधित करते हुए नेताजी जिस प्रकार की स्वतंत्रता की चर्चा करते हैं,[98] वह न केवल परकीय सत्ता की अधीनता का समाधान है, प्रत्युत राष्ट्रगत वास्तविक स्वाधीनता भी है—ऐसी स्वाधीनता जिसमें लिंग, जाति, धर्म जैसे किसी भी परम्परागत आभिजात्य के द्वारा शोषण को अवकाश नहीं होता, तो सर्वमान्य के सिद्धांत पर आधारित होती है। त्रिपुरा कांग्रेस में सुभाषचंद्र बोस की गांधी जी के विपक्ष में विजय[99] आपसी द्वंद्व के शमन के लिए स्वयं त्यागपत्र देने का महान् कार्य[100] उनकी छवि को गांधी जी से भी दीप्ततर बना देता है।

षष्ट सर्ग में जिन्ना और सावरकर से नेता जी के संवाद के माध्यम ने तत्काल भेदवासी मुसलमानों की मानविता को स्पष्ट किया है।[101]

"पेशावर से काबुल तक का मार्ग नेताजी के लिए प्रतिपद कंटकाकीर्ण था। किंतु सुभाष को ऐसे पथ का पान्थ उनकी अपने राष्ट्र की चिति ही बनाये हुए थी।"

"कियत्यहो भारतभूमि भक्तिस्त्यक्त्वा यदर्थ विषयोपभोगान्
अत्युच्चविद्या समलंकृतोऽसौ पद्भ्यां युवा याति वने सुभाषः।"[102]

ऐसे सुभाष किस स्वतंत्रता प्रेमी क्रांतिकारी के चित्त को झकझोर कर न रख देंगे। सुभाषचन्द्र बोस ने स्वेच्छा से राष्ट्र-सेवा का ऐसा दुर्गम मार्ग चुना था।[103]

जर्मनी के विरुद्ध युद्धरत सेना का तेजाती के आह्वान पर स्वयं को समर्पित कर देना उनके राष्ट्र-भाव का उपयुक्त परिस्थितियों में पुनरुज्जीवन का प्रमाण है।[104] नेताजी के बारे में अंग्रेज यह दुर्वाद फैला रहे थे कि चूँकि महायुद्ध में सुभाष हमारे शत्रु देशों (जर्मनी और जापान) के साथ हैं; अतः वे भारतद्रोही हैं[105] इस पर सुभाषचन्द्र बोस ने निर्भीकता से कहा था—

".....स्वदेश निष्ठा तु माचलैव।
किं वाचया मेऽधिकया चिरान्मन्निष्ठाप्रतीतिरेवदद्यात्।"[106]

राष्ट्रवाद संक्रामक होता है और दलवाद, वर्गवाद, जातिवाद आदि सभी वादों से उत्तीर्ण भी। 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में गांधी जी आदि बंदी बनाए गये तो जनता विद्रोही हो उठी।[107] भारत की क्रांति की आँच दक्षिण-पूर्व एशिया के भारतीयों ने भी अनुभव की।[108] भारतीय जिनमें से अधिकांश को 'आजाद हिंद फौज'

में रह रहे हैं। संस्कृत और मराठी भाषा के कवियों में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है।"

श्री सुभाषचरितम् की कथावस्तु 10 सर्गों में विभक्त है। सर्गशः वस्तुविन्यास इस प्रकार है–

1. बंगाल के चौबीस परगना जनपद के निवासी जानकीनाथ बोस और प्रभावती दम्पत्ति से उड़ीसा के कटक जिले में 23 जनवरी, 1897 को शिशु सुभाष का जन्म और बालक सुभाष के बालमन पर चाफेकर बंधुओं पर अत्याचार का, बंग-भंग का और विद्यालयीय अंग्रेजी दुर्व्यवहार का प्रभाव।
2. सुभाषचन्द्र बोस पर विवेकानन्द का प्रभाव, मैट्रिक परीक्षा पास करना और सद्गुरुमार्गण।
3. विश्वविद्यालय से आंग्ल-अध्यापक के उग्रविरोध में निष्कासित, पुनः प्रवेश और बी.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करना।
4. इंग्लैंड में आई.सी.एस. परीक्षा उत्तीर्ण करके भी देश सेवा के लिए राज-सेवा का त्याग।
5. सुभाषचन्द्र बोस का विदेश से वापस लौटकर देशबंधु चितरंजन दास के सान्निध्य में आना, छह मास का कारावास, स्वराज्य-दल में सम्मिलित होना, मॉडले कारावास और मुक्ति।
6. बंगाल की प्रान्तीय कमेटी के अध्यक्ष के रूप में, मद्रास कांग्रेस के मंत्री के रूप में, घूम-घूमकर नवजागरण का अभियान, कारावास, विदेश-प्रवास, फॉरवर्ड-ब्लॉक का संगठन, वीरसावरकर से बातचीत और घर में नजरबंद होना।
7. नेताजी का कलकत्ता से जर्मनी तक का साहसिक गुप्त अभियान।
8. 'आजाद हिंद फौज' की स्थापना, रासबिहारी बोस का दक्षिणपूर्व एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सैन्यसंगठन और नेता जी का जापान-गमन।
9. नेता जी का टोकियों से आकाशवाणी प्रसारण, सिंगापुर में सैन्य संगठन, अण्डमान-निकोबार पर अधिकार, आजादी हिंदी फौज के कार्यालय का रंगून से बैंकाक स्थान्तरण आदि...और
10. हिटलर का पतन, जापान का आत्म-समर्पण, बैंकाक में मंचूरिया होते हुए जापान जाने के लिए नेता जी का 16 अगस्त, 1945 को वायुयान पकड़ना और 23 अगस्त, 1945 को टोकियो रेडियो द्वारा 18 अगस्त, 1945 ई. को विमान दुर्घटना में नेता जी की मृत्यु की घोषणा।

संप्रति महाकाव्य की उपर्युक्त कथावस्तु अंतर्गत सुभाषचंद्र बोस के जीवन से संबंधित घटनाओं के आलोक में ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम के स्थलों का

काल तक कहना होगा–

'भूयो हि लभ्याअनुगाः सहस्रा नेता तु नेताजी समो न भूयः।'

3. भारतीयस्वातंत्र्योदय : (छह पर्व)

'भारतीयस्वातंत्र्योदयः' महाकाव्य के प्रणेता श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री हैं। आपने सुभाषचरितम् महाकाव्य के अतिरिक्त अन्य कई मौलिक संस्कृत ग्रंथों की रचना की भी है।

'भारतीयस्वातंत्र्योदयः' की वस्तु का कालिक विस्तार 1857 ई. से लेकर 1948 ई. तक है। इसमें छह पर्व हैं, जिनमें कुल 403 श्लोक हैं। पर्वों की विषयवस्तु उनके नामों से स्पष्ट है, जो इस प्रकार है–

1. क्रांतिकृत पर्व, 2. लोकमान्य पर्व, 3. गांधी पर्व, 4. सुभाष पर्व, 5. राष्ट्र सभा पर्व, 6. स्वातंत्र्योदय पर्व।

जिनमें से प्रथम पर्व में हुतात्म राष्ट्र-वीरों का समर्चन, पञ्चम में 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना से लेकर 1947 ई. तक के समय के बीच की प्रमुख घटनाओं को समेटा गया है। षष्ठ पर्व में स्वातंत्र्य-प्राप्ति और गांधी जी की हत्या का उल्लेख है।

महाकाव्यारम्भ से पूर्व गद्यात्मक आमुख के कवि ने स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में भारत परगधीन हुआ है, पुनः उसने कैसे स्वतंत्रता प्राप्त की।

काव्यारम्भ में कवि कहता है, परदास्य-दुख से व्यथित असंख्य तपस्वियों से सम्प्रार्थ्यमान सैकड़ों वर्षों से अस्तंगत स्वातंत्र्य सूर्य उदित हुआ।[123] कवि अगणित हुतात्माओं में से सबके नाम स्मरण में अपनी सहज असमर्थता स्वीकार करके 1857 ई. से लेकर स्वातंत्र्योदय तक राष्ट्र के काम आये वीरों में से सुविदितों का पुण्य स्मरण करते हुए उनके शौर्य और आततायियों के शौर्य और चीत्कार में से उदीयमान निमुक्त नवभारत की सुख व समृद्धि को ताजा बना देता है–

तत्कालीन राष्ट्र की जनता ने अपनी रुचि, स्तर और अवसर के अनुकूल अलग-अलग ढंग से स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी–

"केचिद्धिमदेर्गिगहवरान्तस्तप्वा व्युधः काष्ठसमं स्वदेहम्।
अज्ञातनामान उदात्तवृत्तशिन्नकीर्षतः शं निजबान्धवानाम् ॥
केचिन्मुदैवान्तकमालिलिंगुः संतर्प्य रक्तेन रिपौः स्वभूमिम्।
तस्या विमोक्षः परदास्यापाशान् मोक्षः स्वकोनन्विति मन्यमानाः ॥
प्रभा विवक्तृत्वबलाच्च केचित् तेजस्विलेखैर्जनतान्तरेषु।
स्वातंत्र्यतृष्णां चिरदास्लुप्तां प्रयेतिरे चेतयितुं त्वखण्डम् ॥
स्वदेश वस्तुव्रतमेकनिष्ठं स्वार्थं विहायामरणं गृहीत्वा।
आयासितं दास्यतमो निहन्तुं सामान्यलोकैरापि भूरिसंख्यैः ॥

अंतर्राष्ट्रीय तत्त्वों और प्रच्छन दुर्गुण विरागियों से मिलकर सुभाषचन्द्र बोस का मोह भंग[86] उनकी राष्ट्रीय मानसिकता की पुष्टि-प्रक्रिया का आवश्यक विपरिणाम था।

जैसा कि सुभाषचंद्र बोस ने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया है कि उन्हें मिस्टर 'ओएटनो' द्वारा छात्रों को धक्का देकर हटाने से इसलिए नहीं क्षोभ हुआ कि किसी अध्यापक द्वारा छात्रों के साथ ऐसा बर्ताव क्यों किया गया, प्रत्युत इसलिए हुआ कि आये दिन मिस्टर 'नोएटनो' जैसे इस प्रकार के चिंतकों—"...मेषाइव भारतीयाः केनाऽपिपादेन पथि प्रहार्याः। विनिर्मितास्ते प्रभुणा पराणां दास्यार्थमेवेति विभाति नूनम्"[87] द्वारा भारतीयों पर ऐसे अत्याचार होते रहे थे। यह गुरु का छात्र पर अनुशासन नहीं, वरन् एक दर्पान्ध साम्राज्यवादी का शासित-जाति पर दुःशासन था[88], जिसका प्रतिकार सुभाष जैसे प्रबुद्ध नौजवान के लिए सह्य कैसे होता? छात्रों के आक्रोश के इसी निहित कारण की ओर संकेत करते हुए 'मार्डनरिव्यू' पत्र में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी टिप्पणी की थी।[89] उनकी टिप्पणी से लगता है कि तत्कालीन जनता भी स्वतंत्रता के लिए कितनी आकुल हो उठी थी। समाचार-पत्र जनता का स्वर होता है, अपनी आकुलता में वह स्वर स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगा था।

कवि के अनुसार विदेश जाने के आरंभिक पितृ-प्रस्ताव पर ही सुभाष की असहमति थी। उनका मन्तव्य था कि स्वदेश-सेवा के मार्ग में राजसेवा में राजसेवा विघ्न है,[90] किंतु पिता के इस तर्क पर कि 'देशः सुसेव्य खलुशिक्षणेन'[91], सुभाष तैयार हो गये थे। सुभाष को पिता द्वारा समझाने के लिए प्रयुक्त यह तर्क—

"सुरासुराणां समरे पुराणे काले दिवोदेवगुरोः सुपुत्रः
संजीवनी दैत्यगुरोरवाप्तुं न किं कचः शत्रुकुलं जगाम।"[92]

आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भी यह सोचकर कि "राष्ट्रीय और आध्यात्मिक आकांक्षाओं की सिविल सर्विस की शर्तों में निहित अधीनता से कोई संगति नहीं हो सकती। सेवा स्वीकार न करना एक अभूतपूर्व राष्ट्र-हितार्थ त्याग था। सुभाषचन्द्र बोस के पूर्व अन्य किसी भारतीय ने देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर 'सिविल-सर्विस' जैसी दुर्लभ सेवा को स्वेच्छा से नहीं त्यागा था। पिता ने भी पुत्र के सुनिश्चय को देखकर शुभकामना के साथ स्वीकृति दे दी।"[93] यहाँ देश-सेवा के लिए त्याग की चरम-भूमि पर विद्यमान पिता और पुत्र में कौन स्तुत्यतर है, नहीं कहा जा सकता।[94]

देशबंधु चितरंजन दास ने राष्ट्र-भावोद्रेक में अपनी वकालत छोड़ दी ... सुभाषचन्द्र बोस जैसे अनेक युवकों पर गहरा प्रभाव पड़ा[96] मांडलेकारा की यातनाओं से सुभाषचन्द्र बोस को क्षयरोग हो गया। सरकार ने उन्हें बिना भारत लौटे सीधे स्विट्जरलैंड उपचार के लिए ले जाने की सोची। इस पर नेताजी द्वारा अपने बड़े भाई

"अधीत्योच्चां विद्यामपि पहिजौ मानधनदां
य आंग्लानां सेवां हतमतिजनोज्जागर कृते।
स्वराज्यप्राप्त्यै योऽगमयदखिलायुर्विगणयन्
निबंधं निंदा वा जयतु स चिरं 'केसरिकरः'॥"[135]

तिलक के देहावसान के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी का प्रवेश हुआ।[136] सत्याग्रह, विदेशी वस्तु-बहिष्कार और सविनय अवज्ञा-आंदोलन जैसे गांधी के अस्त्र तात्कालिक साधनहीन दुर्बल भारतीयों के अनुकूल थे, किंतु अनुग्रसत्याग्रहियों का शांत व्यवहार भी शासकों को चिढ़ाने वाला था। उनकी स्वराज्य की सीधी-सादी माँग भी अंग्रेजों को असह्य हो उठी थी और इसके लिए गांधी जी के अनुयायियों को क्या-क्या सहना पड़ा।[137] राष्ट्र के लिए हुतजीव राष्ट्रिकों के लिए कारा भी उस समय तीर्थ स्थल थी। कवि की यह उपमा कितनी उदात्त है—

"काराश्च सत्याग्रहिभिस्त्वशेषाः समाकुलास्तीर्थ इवार्थिवृन्दैः।"[138]

महात्मा का जीवन दीनों और दलितों को समर्पित था।[139] वे राष्ट्रिकों को स्वाधीन गांव और नगर प्रदान करने के लिए गांव और नगर से बाहर तापस की भाँति रहते थे।[140] ऐसे आजीवन मानवीय सद्भाव से समन्वित राष्ट्र-पुरोधा को राष्ट्र का 'महात्मा' संबोधन समुचित ही है।[141]

चतुर्थ सुभाष पर्व का आरम्भ मतभेद के कारण सुभाष के कांग्रेस से अलग होने के वर्णन के साथ होता है।[142] शिक्षोपरान्त सुभाषचन्द्र के कष्ट-संकुल राष्ट्रीय जीवन का श्रीगणेश होता है, अंदमन की यात्रा के साथ जहाँ से अस्वस्थता की चिंत्य दशा में मुक्ति दी जाती है।[143]

अद्भुत कौशल से भारत से निकलकर जर्मनी पहुँच जाना[144] ब्रिटिश शक्ति के बहुविध नियंत्रण के होते हुए भी सुरक्षित जापान चले जाना[145] और साधनविहीन अकेला होने पर भी जापान, जर्मनी, बर्मा (म्यांमार) आदि देशों में लाखों की संख्या में अनुयायी बना लेना नेता जी की तेजस्विता और साहस का अपूर्व निदर्शन है। वे धैर्य के मेरु थे।[146] यद्यपि वे अपनी तपश्चर्या से तत्काल भारतभूमि को मुक्त न करा पाये, किंतु उनके महान् अध्यवसाय से थोड़े ही समय बाद राष्ट्र को स्वातंत्र्य श्री प्राप्त हुई।[147]

नेता जी का जीवन आरम्भ से अंत तक महान् योद्धा और राष्ट्रभक्त का प्रेरक जीवन था, ऐसा जीवन, जिसके सामने कांग्रेस अधिवेशन में कभी गांधी जैसे ज्योतिर्मान् का भी प्रकाश धुँधला हो गया था, हिटलर जैसी हस्ती भी जिसके सम्मुख आदर भाव से प्रस्तुत होती थी, जिसकी बुद्धि और बल का भरोसा जापान, सिंगापुर आदि के सहस्रों क्रांतिवीर सैनिकों को हो चला था और विदेश-प्रवास पर भी रहते

में सम्मिलित होते समय यही ज्ञात नहीं था कि वे क्या करने जा रहे हैं, सिवा इसके कि अपने देश की स्वतंत्रता के लिए कुछ करने जा रहे हैं, जिनमें से अधिकांश ने भारत को देखा भी नहीं था,[109] ऐसे राष्ट्र-पुरुषों के लिए कोई क्रांतिदृष्टा कहेगा ही–

"धन्याः सुपुत्रा हि विवासनेऽपि हिताय ये मातृभुवो यतन्ते"[110]

नेताजी के जैसे राष्ट्रीय मूल्य के जीवन की रक्षा राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है। जर्मनी से जापान जाने के समय नेताजी के जीवन को बचाने के लिए ऐसे ही सैनिक ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी।[111] टोकियो पहुँचने पर नेताजी ने एक बार फिर तिलत के उद्घोष को दोहराते हुए "अस्तिस्वराज्ये मम जन्मसिद्धधिकार"[112] लोगों में चेतना पैदा कर दी। सिंगापुर में रासबिहारी बोस द्वारा संघटित देश के लिए मर मिटने वाले आतुर लोगों ने राष्ट्र-पुरुष नेताजी का समुचित सम्मान किया और उस पुरुष पुंगव ने अपने समान धमाओं का।[13] प्रवासी भारतीयों का राष्ट्र-प्रेम ऐसा उफन चुका था कि सोते-जागते उन्हें स्वतंत्र 'दिल्ली' और 'भारत के भावी प्रधानमंत्री' की ही कल्पना घेरे रहती थी।[114] राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने मुक्तहस्त द्रव्यदान किये। स्त्रियों ने अपने आभूषण तक दे डाले।[115] नेताजी ने झाँसी की रानी रेजीमेंट' के नाम से कैप्टन कु. लक्ष्मीस्वामी नाथन् के नेतृत्व में एक नारी-सेना भी बनायी,[116] जिसके सदस्यों ने अपने रक्त से हस्ताक्षरित शपथ पत्र नेता जी को समर्पित कर[117] शासन की स्वतंत्रता के लिए अपने समर्पण भाव का प्रमाण दिया। अपने जन्म-दिवस समारोह को मनाने का विरोध करते हुए नेता जी ने कहा कि पहले हमारा उद्देश्य अंगीकृत कार्य को पूरा करना है, फिर और कुछ।[118] उन्हें व्यक्ति-पूजा अस्वीकार्य थी।[119]

द्वितीय महासभा मानवता के लिए दारुण अभिशाप एवं[120] साम्राज्यवादी राष्ट्रों के मस्तक का कलंक थी और इसकी सूचक भी कि अंधराष्ट्र-भाव महानर्थकारी होता है। जापान के आत्मसमर्पण के बाद नेता जी द्वारा अपने सैनिकों का सम्बोधन ऐसे अनेक हुतात्माओं के संबोधन का प्रतिनिधि संबोंधन[121] था, जो भारत की स्वाधीनता का स्वप्न आँखों में लेकर राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ गये। नेता जी की बैंकाक से टोकियो के लिए प्रस्थान से पूर्व की विदाई बेला में 'आजाद हिंद फौज' के सैनिकों का अपने नेता के लिए करुणार्द्रभाव, आजादी के निर्मीयमाण इतिहास की अभूतपूर्व वेदना थी[122] जो स्वाधीन भारत के राष्ट्र को (जनता) को अनन्तकाल तक संदेश देती रहेगी।

इस प्रकार 'श्रीसुभाषचरितम्' महाकाव्य राष्ट्रीय आंदोलन के नायकों के चरित पर लिखे गये महाकाव्यों में एक प्रशस्त महाकाव्य है। महाकाव्य में चरित नायक के उसी गुण की काव्यविवृत्ति दी गयी है, जिसके लिए कवि के शब्दों में हमें चिरन्तर

प्रदेश में उच्छित हुआ।[135] सुख-दुःख के मिश्रित अनुभवों के इस क्षण को कवि इस प्रकार शब्दायित करता है—

"लोका जहर्षुः सकलास्तदानी स्वातंत्र्यलाभेन चिरेप्सितेन।
सुज्ञास्त्वखिन्दन्न मेधदानधनापहारादिक्घोरवृत्तैः॥
दिष्ट्यैवं प्रियभारते समुदितः स्वातंत्र्यभास्वांस्तु हा।
स ग्रस्तोदयआत्तेहिंदुरुदनै रक्तप्रवाहैस्तथा॥"[156]

कैसी विडम्बना है कि जिस बैर-भाव के निवारण के लिए भारत के कर्णधारों ने देश का विभाजन स्वीकार किया था[157] ...यही फिर झेलना पड़ा और स्वाधीन होने के थोड़े दिनों बाद ही पाकिस्तान ने अपने आक्रमण करने आरम्भ कर दिए[158] पंजाब और बंग-प्रदेश से देश के अन्य प्रांतों की ओर घर-द्वार छोड़कर भागते हिंदू शरणार्थियों की मातृ-भूमि का वियोग वैसे ही लग रहा था जैसे बच्चे के हाथ से किसी भय से माँ का आँचल छूट रहा हो।[159] कितनी स्वाभाविक और भावपूर्ण उपमा है।

षष्ठ सर्ग के अधिकांश में गांधी जी के पाकिस्तान के भाग में आये रुपयों को देने के हठ को, जो उनकी हत्या का कारण भी सिद्ध हुआ, लेकर कवि ने एक तर्कपूर्ण चर्चा की है, जिसमें यद्यपि महात्मा जी की हत्या को अनुचित माना है,[160] ...किंतु असंख्य हिंदुओं के अकारण हत्या कर देने वाले पाकिस्तान के मुसलमानों के दुष्कृत्यों का विस्मरण कर उलटे उनके उपकार के इस उपक्रम को भी कवि ने उचित नहीं ठहराया है[161] और नाथूराम को दिए गये न्यायालिक बयान को सबलोपन्यास भी कवि को उचित ही लगता है।[162] परंतु इसके बावजूद गांधी जी के अलोकसामान्य मंतव्यों को लोकसामान्य तर्कों से न तो उड़ाया जा सकता है और न ही उसकी सत्य-अहिंसा जैसी दिव्य मान्यता को अनद्यतन और अप्रयोज्यतया व्यर्थ सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि हमने गांधी जी द्वारा अपने जीवन में राष्ट्र के व्यापक संदर्भ में विनियुक्त होते देखा है। फिर यह तर्क कि विभाजन को गांधी जी नं नहीं रोका, मुसलमानों के अत्याचार को रोकने का यत्न नहीं किया[163] इत्यादि बड़े लचर तर्क हैं, जो पुष्ट ऐतिहासिक तथ्यों के आगे नहीं टिक सकते।...रही पाकिस्तान को नियत धनराशि देने की बात, माना कि वह युग की सहजनीति के अनुसार अदेय थी, किंतु क्या गांधी जी का देश को स्वाधीनता दिलाने का महाभियान युगानुकूल सरल मार्ग था? यदि नहीं तो जिस महात्मा के अनन्त त्यागों और कष्टों को हमने अपने स्वार्थ के लिए यह लिया, क्या उसी शृंखला का एक यह असाधारण कृत्य भी नहीं कहा जा सकता था, फिर जिस भारतीय संस्कृति और धर्म के नाम पर गर्व करते नहीं अघाते; क्या उसके उदात्त आदर्शों के प्रतिकूल यह कृत्य था ...नहीं। ऐसे महान् विचारों के प्रतिकारी विचार को गांधी जी सह सकते थे, उदार भारतीय संस्कृति के पास भी कदाचित् ऐसी जघन्य मान्यताओं के त्राण के लिए कोई अवकाश हो, किंतु ऐसे

सत्याग्रह क्लेश्यातानि केचिद् विषेहिरे स्वीकृतशान्तिमार्गः।
वाचः प्रहारान् लुगुडस्य चापि पियस्वदेशस्य कृते मुदैव ॥"[124]

सर्गान्त में कवि अपने असंख्य मृत्युञ्जय पूर्वजों के प्रति संपूर्ण नयी पीढ़ी की ओर से श्रद्धाविनत हो उठता है।[125]

लोकमान्य पर्व का आरम्भ कवि 1880 ई. कुछ सहयोगियों की सहायता से स्थापित तिलक द्वारा 'न्यू इंग्लिश स्कूल' और 1881 में आरम्भ 'केसरी पत्र' के स्मरण से करता है।[126] तिलक को विश्वास था कि मातृ-भूमि के उद्धार में शिक्षा का प्रथम स्थान है, इसलिए उन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना की और देश की तन्द्रा को दूर करने के लिए 'केसरी' और 'मराठा' जैसे पत्र निकाले। कुछ मुसलमान सांप्रदायिक बहकावे में आकर हिंदुओं को तंग करने लगे थे। सरकार भी मुसमानों का पक्ष लेती थी, इसके विरोध में तथा एकता और जन-जागरण के लिए 'गणपति पूजा' और 'शिवाजी-उत्सव' जैसे राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन तिलक ने किया।[127] पूणे में महामारी के प्रकोप के समय शासन के अत्याचार का तिलक ने निर्भीकता से विरोध किया।[128] तिलक ही ने सबसे पहले–'अस्ति स्वराज्ये मम जन्म सिद्धोऽधिकारः'[129] का महाघोष करके साम्राज्यवादियों को ललकार दी। 'अक्रोधेन जितं क्रोधम्' जैसे बुद्धोपदेश के स्थान पर लोकमान्य को 'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् जैसे गीतोपदेश पर विश्वास था। इसलिए उन्होंने कांग्रेसगत उग्र विचार वालों का एक अलग संगठन का आह्वान किया।[130] लोकमान्य को क्रूर शासन ने देश-निर्वासन का दण्ड दिया।[131] उनका अपराध था कि उन्हें अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अधिक देश से प्रेम था। राज-द्रोह के अभियोग की कठिन परीक्षा के समय और अविचलित तिलक ने, न्यायाधीश के यह पूछने पर कि दण्ड सुनने के पहले क्या वे कुछ कहना चाहते हैं, कहा था–

"मयापराद्धं मनागूलभेय जगत्पतेन्यायमहं विशंकम्।
विवासनादीश्वरउन्नतिं मे कार्यस्य नन्विछति गूढेहेतूः।"[132]

तिलक के ऐसे उद्‌गार उनके देश के लिए सब कुछ सहने के जीवन के परिचायक हैं। तिलक ने साम्राज्यवादियों के विरोध के लिए हिंदू और मुसलमानों के संगठन को दृढ़ करने का यत्न किया।[133] अंग्रेजी पत्रकार बैलेंटाइन चिरोल के ऊपर किंग्स वेंच डिवीजन, लंदन में जो अभियोग चलाया गया, उसमें अंग्रेजी सरकार ने जिस पक्षपात का आश्रय लिया वह न्याय के मस्तक का कलंक है। अभियोग में हार जाने पर भी 'राष्ट्रवाद के जनक' लोकमान्य के राष्ट्रीय व्यक्तित्व पर आँच नहीं आयी।[134] कवि की उस विभूति को समर्पित ये पंक्तियाँ कितनी मर्मस्पर्शी हैं–

पाकिस्तान-निर्माण, स्वतंत्रता-प्राप्ति, शरणार्थियों की समस्या छोटे राज्यों का भारत-संघ में विलय, कश्मीर-समस्या आदि।

8. भाषा-समस्या गांधी जी का अनशन, गांधी जी की हत्या, पंचशील आदि।
9. वाण्डुंग सम्मेलन, चीन से मैत्री, चीनियों का आक्रमण, भारत की जीत, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, पंत, राजाजी, मालवीय जी, आचार्य भावे, कृष्ण मेनन, राधाकृष्णन्, राजर्षि टण्डन और बाबू जयप्रकाश नारायण की चर्चा तथा कांग्रेसियों के पतन की ओर संकेत।
10. कामराज योजना, जवाहरलाल जी का स्वर्गवास, गुलजारी लाल नन्दा का प्रधानमंत्री होना, कामराज का संगठन कार्य, शास्त्री जी का प्रधानमंत्री होना, शास्त्री जी के महत्त्वपूर्ण कार्य और भारत-महत्त्वाख्यान।

'विशालभारतम्' महाकाव्य बीसवीं शताब्दी के कुछ ऐसे अंगुलिगण्य महाकाव्यों में से हैं, जिनके रचनाकारों के पास कथ्य के साथ कथन सामर्थ्य भी है। कवि की जैसी काव्य के प्रति वरेण्य धारण है, वह 'विशालभारतं' में प्रतिपद स्फुटित है। कवि राजाओं नहीं प्रत्युत सामान्यजन की कविता को विषय बनाने के पक्ष में है,[164] वह कहता है—

"उत्थानपातौ जनशातदुःखे राष्ट्रे विरोधो बहुरक्तपातः।
विचित्रवीर्य कविताकलापे नो चेत् कवीनां वितथः प्रयासः॥"[165]

'विशाल भारत्' के विषय में उसकी स्वीकारोक्ति है कि भारत स्वाधीनता एवं स्वतंत्र भारत का गौरवाख्यान ही इसमें कवि को अभीष्ट रहा है।[166]

राष्ट्रभाषा के लिए संतत् तपोनिरत राजर्षि पुरुषोत्तमदास ने वास्तव में हिरण्याक्षरूपी अंग्रेजों से शूकरावतार पुरुषोत्तम की भाँति हिंदी-पृथ्वी का उद्धार किया, इस पुण्य स्मृति से प्रथम सर्ग का आरम्भ होता है—

"अध्युष्य यं भारतराष्ट्र-भाषी पाशप्रबद्धा पुरुषोत्तमेन।
साहित्य सम्मेलन कोलकेल हिरणयनेत्रादुदहारि गौरात्॥"[167]

भारतीयों पर अंग्रेजी थोपने का लार्ड मैकाले का निहिताशय था कि इससे भारतीयों की स्वतंत्र राष्ट्रभाषा को मिटाया जा सकेगा, किंतु हुआ इसके विपरीत। नयी शिक्षा-दीक्षा से भारतीयों में विश्व की क्रांतियों और विश्व-सभ्यता के संदर्भ में अपनी संस्कृति की मूल्यवत्ता को परखने की दृष्टि आयी।[168]

जवाहरलाल नेहरू जब विदेश में पहली बार गये तो वहाँ के लोगों की राष्ट्र-भक्ति, परिश्रम और सत्यनिष्ठा देखकर[169] उन्हें एक व्यापक दृष्टि मिली तथा जिससे प्रेरित होकर वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े।

मनुष्य के द्वारा मनुष्य का तिरस्कार कितना दुःखद होता है। इसका बोध निम्न जातीय अपने बंधुओं का तिरस्कार करने वाले भारतीयों को तब हुआ जब वे

हुए जिसके नाम से ब्रिटिश साम्राज्य काँपता था।

भारतीय राष्ट्रीय क्रांति अपने से पूर्व घटित विश्व की अनेक क्रांतिकारियों से प्रभावित थी। रूस जैसे विशाल देश पर जापान जैसे छोटे देश की विजय ने हताश भारतीयों में नवोत्साह का संचार किया था।[148] उद्‌बुद्ध क्रांति को दमित करने के लिए 'रौलट एक्ट जैसे कानूनों का जागृत राष्ट्र ने संगीनों के नीचे भी विरोध किया।[149]

स्वाधीनता आंदोलन के आरम्भ में जो राष्ट्रीय चेतना हिंदू और मुसलमानों को ऐक्यबद्ध किये थी, कालांतर में कूटनीतिक अंग्रेजों ने उसे दुर्बल बना दिया। अधिकांश मुसलमानों और कुछ साम्प्रदायिक हिंदुओं का ध्यान देश से हटकर धर्म और जाति पर जा टिका। श्रद्धानन्द,[150] गणेशशंकर विद्यार्थी और गांधी जी जैसों की हत्याएँ इसके प्रमाण हैं।

'साइमन कमीशन' के विरोध में प्रदर्शन करते लाला लाजपतराय पर लाठी प्रहार किया गया, जिसके कारण कालान्तर में उनकी मृत्यु हो गयी। इस नृशंसतापूर्ण कार्य का दंश सारे राष्ट्र ने अनुभव किया और सरदार भगतसिंह ने लाला जी की हत्या के लिए उत्तरदायी साण्डर्स को एक मास के भीतर ही मार डाला।[151]

ब्रिटिश शासन ने विधि संसद् में हिंदू, मुसलमानों और अछूतों के लिए अलग-अलग प्रतिनिधित्व प्रदान कर कूट चाल चली, जिसके विरोध में गांधी जी ने अनशन प्रारम्भ किया।[152] हिंदू-मुसलमानों में जिस पृथक्ता के दुर्भाव का बीज अंग्रेजों ने बो दिया था, वह दोनों संप्रदायों के अंधानुगों द्वारा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किया जाता रहा। राष्ट्रीय मानसिकता के एकीभाव के लिए यह दुर्दिन था। अधिसंख्या मुसलमानों में यह कुत्सित आशंका घर कर गयी थी–

"प्राप्तेस्वराज्ये बहुसंख्यहिंदो ब्रंजेल्लघं मुस्लिमसंस्कृतिनः।
अतोऽन्तिमाय स्वहिताय सद्यः स्वबान्धवैराष्ट्रसभीज्झितव्या॥"[153]

अपनी समग्र सांस्कृतिक रिक्त के साथ पूर्वपुरुषों द्वारा अपनी आगे की पीढ़ी-अनुपीढ़ी को हस्तान्तरित अखण्ड भारत की वसुंधरा को खंडित होते देखकर और वह भी अनेक प्राणोत्सर्ग के बाद किस भारतीय को इस प्रकार मर्मान्तक अनुभूति न होगी–

"नाना तात्या तिलक पड़के गांधि नेताजि मुख्यै–
र्यस्यावाप्त्यै यतितममितेर्यावदायुः प्रवीरैः
तत्स्वातंत्र्यं समुदितमहो! भारतोऽन्ते तु भग्नो
नान्तं हा! यत्कटुफलतातिर्दुः सहाद्यापि यति॥"[154]

15 अगस्त, 1847 ई. को दिल्ली में ब्रिटिश राष्ट्र राष्ट्र ध्वज 'यूनियनजैक' के अवतरण के साथ ही भारत राष्ट्र का प्रतीक तिरंगा ध्वज स्वतंत्र भारत के नभः

द्वारा अर्जुन को बताये गये मार्ग का अभ्यास करते हुए अंग्रेजों को भारत से निकालने को सचेष्ट हैं।[185] नेहरू जी को आरम्भ में हम राष्ट्रोद्धार के लिए अधीर ऐसे उत्साही युवक के रूप में देखते हैं।[186] जिसे गांधी जी का सत्य और अहिंसा का मार्ग अनुपयुक्त लगता है।[187] फिर भी उनको महात्मा जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व और भारत की जनता की दुर्जेयता पर बड़ा भरोसा है–

"कोट्याग्निबह्निभिरता रिपुसप्तकोटीर्लेढुं क्षमावजनता करतर्जनीभिः।
तारकणेपतति रेलतले तवाक्षणों नूनं न यास्याति पुरोविवशांग्लगन्त्री ॥"[188]

तृतीय सर्ग में हम एक ओर जवाहरलाल के रूप में परम्परागत आत्मरक्षा के उपायों–युद्ध के माध्यम से देश की पराधीनता का निदान देखते हैं,[189] जिसके सामने महात्मा जी का शम-प्रधान निष्फलता और कापुरुषता का मार्ग लगता है,[190] दूसरी ओर गांधी जी ऐसे युग पुरुष के रूप में सामने आते हैं, जिसके सम्मुख युगों की युद्ध-विभीषिका और सांप्रतिक विश्व संकट है। उन्हें विश्वास हो चला है कि चलते घर की ज्वाला को अग्नि से नहीं शांत किया जा सकता है।[191] जवाहरलाल के सम्मुख महात्मा जी अयुद्धभाव के लोकमांगलिक प्रस्ताव को बड़ी कोमल भंगि से उपस्थित करते हुए करते हैं–

"आसर्गतः सुरनिशाचरयोर्विवादादद्यापिना परमतेविजीगीषुकाम्या।
तत्तात युक्तिरपरा ध्रियतां समाजे कोषेषु संविशतु कुत्सितयुद्धशब्दः ॥"[192]

ऐसे परामर्श के पीछे उनकी दृष्टि में भारत ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व है।[193] गांधी जी का यह शांति-संदेश कोई नया संदेश नहीं प्रत्युत उसके पीछे प्राचीन ऋषियों गौतम बुद्ध, अशोक और ईसा मसीह जैसे महापुरुषों की परम्परा है।[194] जीव-करुणा के दूत ईसा के अनुयायी अपने आदर्श पुरुष के सिद्धांतों की अवहेलना करके[195] अंधराष्ट्र भावना के वशीभूत जिस अशांति को जन रहे हैं, उससे महात्मा का हृदय व्यथित है–

"ईशायिकाः प्रभुपथाच्युतनग्नरूपाः स्वार्थात्मना विवृतसंवृतगोप्यभावाः।
राष्ट्रीयतामितमतिः क्षतविश्वगात्राः शंकंटका भुवनमर्मणि हाऽय जाताः ॥"[196]

इसी प्रकार महात्मा के अनुसार सम्राट अशोक की आत्मा भी अपने सिद्धांतों की हत्या से दुःखी है।[197] भारत की पराधीनता अहेतुक नहीं, प्रत्युत स्वार्थी भारतीय राजाओं द्वारा अपने ही बंधुजनों के वध का पाप है–

"आगांसि बंधुवधजानिपरं विलोक्यधात्राऽपहृत्यकनकैः कृतशृंखलाभिः।
मात्रा च भारतभुवा सह भारतीया गौरीभिरंध्रिषु बबन्धिर आत्मजाताः ॥"[198]

जवाहर लाल ने भारत माता के सुख के लिए अपनी माँ को पुत्र-वियोग का दुःख दिया और राष्ट्र को दासता के पाश से मुक्त करने के लिए स्वयं को कारार्पित किया।[199]

कूपमंडूक विचार का यदि उस (नाथूराम जैसी) आततायी की आत्मा सहन कर लेती है, तो उसके भारतीय होने में संदेह है।

4. विशालभारतम्

(प्रथमो भाग : जवाहरदिग्विजयम् 10 सर्ग)

पंडित श्यामवर्ण द्विवेदी का जनम मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में 9 जुलाई, 1916 को ग्राम-घोटवाँ, जनपद-गोरखपुर में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री वृन्दावन द्विवेदी तथा माता का नाम रामदुलारी था। 5 वर्ष की अवस्था में आपकी माता का देहावसान हो गया। आगे आपका पालन-पोषण आपकी सुशीला विमाता ने किया। आपके अध्ययन का आरम्भ पं. भास्करानन्द जी द्वारा हुआ। आपकी पत्नी का नाम सरस्वती देवी था। कविवर्य ने 5 दिसम्बर, 1975 ई. को शरीर त्याग किया।

आपने व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य और साहित्यरत्न की उपाधियाँ प्राप्त करके अनेक विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। आप 'श्रीगोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर' के प्राचार्य भी रहे। आपका आदर्श जीवन-अध्यापन और साहित्य-सृजन को समर्पित था। आप स्वतंत्र और राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति थे। आपने पाँच संस्कृत ग्रंथों की रचना की।

प्रस्तुत महाकाव्य के नाम से ही स्पष्ट होता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं स्वतंत्र भारत की व्यापक पृष्ठभूमि में कवि को महान् राष्ट्र का चित्र उभारना अभिप्रेत था, किंतु दुर्दैव से जिसका यह प्रथम चित्र ही उकेरा जा सका। तथापि महाकाव्य कथमपि अपूर्ण नहीं है। 10 सर्गों में निबद्ध प्रकृत महाकाव्य की कथावस्तु संक्षिप्ततः अधोलिखित है–

1. प्रयाग-वर्णन, जवाहरलाल नहेरू का जन्म और अध्ययन।
2. जवाहरलाल नेहरू की इंग्लैंड यात्रा, विवाह, इंग्लैंड में अध्ययन, भारत लौटकर वकालत करना और फिर वकालत छोड़कर गांधी जी के सन्निध्य में आना इत्यादि।
3. जवाहरलाल के सम्मुख गांधी जी द्वारा अहिंसा और सत्य के सिद्धांत की व्याख्या।
4. सत्याग्रह-संगठन, राष्ट्रीय-महासभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व और राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रस्ताव आदि।
5. जवाहरलाल का देशाटन करके ग्रामीण किसानों और मजदूरों की दशा से अवगत होना।
6. 'रौलट ऐक्ट' का विरोध, सत्याग्रह, 'जलियाँ वाला काण्ड' आदि।
7. द्वितीय विश्वयुद्ध, सुभाषचंद्र बोस, जनक्रांति, जयप्रकाश बाबू,

"हतो विसंज्ञ सह दिव्यायऽन्योनायाऽर्थितो रन्तुमनिन्द्यरूपः।
मा मा स्पृशाख्याय रणं व्रजामि वैद्यालये स्वं समवेक्ष्य विग्नः॥"[209]

राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए प्राणाहुति करते हुए भी सैनिक में अपने राष्ट्र के प्रतीक ध्वज के प्रति कितना सम्मान है कि गिरते हुए भी उसे वह नीचे नहीं होने देगा–

"उक्तो ध्वजं स्व नमयेतिवीरः साकंकरेणोन्नमयाञ्चकार।
भूमिं गतो दुःसहसैनिकस्त्रैरूर्ध्वच्छन्नवपुर्विसंज्ञः॥"[210]

सत्याग्रही क्रान्ति-वीर अंग्रेज सैनिकों के घोड़ों के नीचे आकर भारत की जयघोष के साथ पृथ्वी पर सदा के लिए सो गये।[211] आगे बढ़ते हुए अंग्रेज सैनिकों के डण्डों से क्षत-विक्षत इधर-उधर बिखर गये। भारतभूमि अपने प्रिय पुत्रों के ऐसे बलिदानों से व्यथित हो उठी।[212] यद्यपि स्थान-सथान पर अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिक अपने बन्धु भारतीय सत्याग्रहियों पर अस्त्रपात से विमुख हो गये तथापि अनेक स्थानों पर भाइयों ने ही भाइयों का रक्त, वेतन के स्वार्थवश बहाया,[213] ऐसी होती है.....परशवता की विडम्बना।

वीरों का सम्मान वीरोचित ही होना चाहिए। कुछ दिन पूर्व दिवंगत लोकमान्य तिलक को राष्ट्र के लिए हुतात्म वीरों ने रक्त की अंजलि में प्राण रूपी तिलों की श्रद्धांजलि दी।[214] उन वीरों ने मातृ-भूमि रूपी देवता के लिए तिरंगे झण्डे रूपी पात्र पर मुस्कराहट का भात, प्राणों के दीप के साथ रक्त का अर्घ्य, यश का दधि एवं मनरूप उड़द को रखकर अपने सिरों की श्रेष्ठ बलियाँ दीं।[215]

1919 ई. को जलियाँ वाला बाग का अत्याचार[216] ब्रिटिश साम्राज्यवादी उन्माद का चूड़ान्त निदर्शन था। सहस्रों निरस्त्र जनों पर अन्धाधुन्ध गोली वर्षा[217] सचीत्कार निरुपायजनों का एक-दूसरे पर शवशेष होकर गिरना[218], दुधमुँहे बच्चों को उछालकर भाले की नोक पर ले लेना,[219] स्त्रियों का स्तनच्छेदन[220] आदि कितने हृदय द्रावक दृश्य उस क्रूर शासन ने उपस्थित किये। जलियाँ वाला बाग काण्ड के लिए उत्तरदायी जनरल ओ-डायर को नृशंस ब्रिटिश शासन ने पुरस्कृत किया,[221] किन्तु ऐसे अत्याचार को सहन कर सकने का स्वभाव इस राष्ट्र का नहीं है। क्रान्तिवीर ऊधम सिंह ने उस पापात्मा को उसके ही देश इंग्लैण्ड जाकर मारा।[222] दरिद्रता और निरक्षरता से घनतर हुए पारतन्त्र्य अन्धकार को[223] नष्ट करने के लिए आन्दोलन गाँवों से श्रमिकों और किसानों से उठना चाहिए, जिसके लिए गाँधी जी ने नेहरू को सलाह दी।[224] अंग्रेजों के भारत में पाँव जमाने के तत्कालीन मुख्य कारण को कवि के शब्दों में पाठ करें–

"तमोऽन्तराले गहने निगूहन् गौरो मृगेन्द्रोऽवति संततंस्वम्।
तस्मिन्नु वा राष्ट्रीयशिक्षितार्याऽऽद्यूनान्धकारोदरसन्दरीषु॥"[225]

भी अंग्रेज जैसी श्रेष्ठमन्य जाति द्वारा अपमानित हुए।[170]

अपने चरित नायक के माध्यम से कवि राष्ट्रीय क्षति के लिए उत्तरदायी भारतीय समाज के अनेक दोषों को उजागर करता है जो भारत देश की स्वतंत्रता में बाधक थे। हमने ऊँच-नीच भेदों की कल्पना से दासता का पथ-प्रशस्त किया।

"शूद्र-निष्कृति-दोषस्य द्विजमिथ्याभिमानतः।
प्रायश्चित्तं च ते दास्यं भुञ्जतेऽद्य न हिन्दवः॥"[171]

छोटे-छोटे राजाओं ने आपसी बैर-भाव से अंग्रेजों के हाथ में स्वयं शासन सौंपने की गलती की।[172] देश पर संकट आने का कारण भारतीय वीरों की विलासिता भी रही।[173] इस प्रकार राष्ट्रीय संकट के कई कारण थे–

"भेद वीजैर्घृणाखाद्यैः स्वार्थपैर्लोभ-भूमिजैः।
शणैर्जातिजनैर्युक्त्वा वरितं दास्यबंधनम्॥"[174]

नेहरूजी के सामने उपस्थित राष्ट्रीय संकट के कई कारण थे–

"मोक्षधर्मौ स्वकामाभ्यां मुख्यौ ग्राह्यौ च ये विदुः।
तेऽर्थकामपरा आर्या हा फलं किं भविष्यति॥"[175]

अध्ययनकाल में जवाहरलाल नेहरू, को, विदेश में स्थान-स्थान पर शासक जाति द्वारा अपमान ने उसके प्रति कटु बना दिया,[176] उन्हें विश्व सभ्यता के इतिहास में भारत के स्वर्णिम अतीत और जीवंत वर्तमान[177] ने दासता के जीवन से मुक्ति की ऊर्जा प्रदान की।[178] उन्होंने अपने राष्ट्र की स्वाधीनता प्राणों के मूल्य से लेने का संकल्प किया।[179] चेतनाहीन भारतीयों को शिक्षा के आलोक में विदित हुआ–

"अस्मात् पुराणं राष्ट्रं न लोक किमपि वर्तते।"[180]

इस ज्वलन्त तथ्य पर से परदा उठा–

"लुप्तास्तेऽद्यजातीया भारताद्धर्ममोचनात्।
भारतं जीवितं चास्ति तपोधर्मबलादहो॥"[181]
"मिश्रयूनानरोमाणो नष्टा वैभवशालिनः।
मूलं वैदिकसंतानो भारतं चाद्य जीवति॥"[182]

और हम सबमें चेतना जगी–

"अतो विशालं हिन्दं तं वयं सर्वे च हिन्दवः।
सर्वदा पातुमर्हामो वित्तैश्चितैस्तथाऽसुभिः॥"[183]

नेहरू जी द्वारा साक्षात्कृत गांधी जी का शब्द चित्र लेते हुए कवि कहता है कि वे तपोमय, इच्छारहित, धीरे, निर्भय, आत्म-तुष्ट, निरिभिमान, अत्यल्प वस्त्रों से युक्त दीन-भारत राष्ट्र की साक्षात्मूर्ति से लगते थे,[184] ऐसे लगते थे मानों अपनी संतानों की विपत्ति से उद्विग्न भारत ने ही संन्यास ले लिया है और गीता में कृष्ण

5. श्रीनेहरूचरितम् : (10 सर्ग)

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा विरचित 18 सर्गों और 707 पद्यों में निबद्ध यह एक महाकाव्य है। कवि की यह सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसकी रचना दिनांक 23/8/1968 ई. दिनांक 14/11/1968 ई. दिनांक 14/11/1968 ई. के बीच की है। इसका प्रथम प्रकाशन दिसम्बर, 1969 में किया गया है।[242] पुनः 1975 में भी इसका प्रकाशन हुआ।

इस महाकाव्य में स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया है फलतः स्वतंत्रता प्राप्ति की परिस्थितियों और घटनाओं का भी पदे-पदे वर्णन मिलता है। महाकाव्य के प्रथम सात सर्गों में नेहरूजी के सम्पूर्ण वंशवृक्ष का विस्तार से वर्णन है। पुनः उनका जन्म, चूडाकर्म आदि विविध संस्कार तथा प्रारम्भिक शिक्षार्जन के उपरान्त वैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड जाना (1-7 सर्ग)। लन्दन से शिक्षा पूरी करके वापस आने के बाद अंग्रेजों के अत्याचार एवं देश की दुर्दशा से अवगत होना। पण्डित मोतीलाल नेहरू भारत की दुर्दशा के विषय में संकेत करते हुए कहते हैं[243]—बेटा! भारत देश इस समय अंग्रेजों द्वारा आक्रान्त है, सब लोग यहाँ प्रतिदिन दासों की भाँति अत्यधिक पीड़ा प्राप्त करते हैं—

वत्साधुना भारतदेश एष, गौराङ्ग-शास्ति प्रतिर्षितोऽस्ति।
सर्वे जनाः प्रत्यहमत्र पीड़ां, विन्दन्ति दासा इव निर्विशेषम्॥ (8/15)

लोकव्यवहार में स्वातंत्र्य का लेश भी नहीं है और न यहाँ के विचार ही परिष्कृत रह गये हैं। पिंजड़े में बन्द सिंहों की भाँति बड़े-बड़े विज्ञ भी क्लेश परम्परा को ढो रहे हैं।

स्वातन्त्र्यलेशोऽपि न लोक-कृत्ये। विज्ञा अपि क्लेश-ततिं वहन्ति॥ (8/16)

यहाँ के लोग नित्य ही कराघात (टैक्स के बोझ) का सामना करते हुए, बिना सम्मान के अपने आक्रोश को दबा जाते हैं, और बुद्धिमान होने पर भी सदा व्यथित रहते हैं तथा अपने मन में जरा भी शान्ति नहीं पाते हैं (16)। राजकीय पदों पर नियुक्त व्यक्ति नाना प्रकार के अत्यन्त निन्दनीय विधानों (नियमों से) से नित्य यहाँ के धन को बटोरकर अपने धनागारों में डालते रहते हैं (17)। बेटे—मैं तुमसे यहाँ की दुर्दशा का क्या बखान करूँ? इसी चिन्ता में मेरा चित्त डूबा रहता है—

कां दुर्दशां ते कथयामि पुत्र। चेतो मदीय व्यथितं चिराय।
को वा विपत्तिं परिहर्तुमीश-श्चिन्ताञ्चतं चिन्तमहो मदीय मदीयम्॥ (8/18)

अंग्रेज शासक कूटनीति का प्रयोग करके यहाँ एक दूसरे को लड़ा देते हैं और जैसे भी सम्भव हो उसी उपाय से अपनी कार्यसिद्धि भी कर लेते हैं। इनके प्रभाव

जवाहरलाल की धर्म की जातीयता की भावना से निरपेक्षता का कारण एक तो नयी शिक्षा-दीक्षा से उनमें तुच्छ जातीय और अन्ध धार्मिक ममत्व का नष्ट हो जाना रहा दूसरे गाँधी जी से सर्वसाम्य की दृष्टि मिल जाना। इसलिए जवाहरलाल जड़ धार्मिकों की समझ के परे थे।[200]

चतुर्थ सर्ग में कवि ने कई छन्दों में राष्ट्र-ध्वज की प्रेरकता का स्मरण किया है,[201] जिसे राष्ट्र का प्रतीक मानकर क्रान्तिवीर राष्ट्र को अपनी श्रद्धा समर्पित करते आये हैं। भारत भूमि के स्पन्दित हृदय-सा त्रिवर्ण ध्वज, जो अपनी रक्षा के लिए सदैव राष्ट्रिकों को प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा देता है।[202] ब्रिटिश यूनियन जैक को ही सर्वस्व समझने वाले अंग्रेजों पर कवि का यह कथन अवश्य सत्य सिद्ध हुआ होगा—

"राष्ट्रध्वज तं गगने त्रिवर्णमुद्वीक्ष्य वायुस्फुरंदचलान्तम्।
गौराः प्रतीयुः क्रकचं चलन्तं प्रकम्पितांगाः हृद्रुर्विदारम।।"[203]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिम तक देश के प्रत्येक भाग के प्रतिनिधियों ने भाग लिया,[204] यह थी सम्पूर्ण राष्ट्र की जनजागृति तथा स्वाधीनता संघर्ष की लहर।

महात्मा गाँधी के मुख से राष्ट्रभाषा के महत्व का आख्यान कवि ने विस्तरेण किया है।[205] भाषा का यह महत्व या तो फिर लार्ड मैकाले को अवगत हुआ था या फिर गाँधी जैसे कुछ थोड़े से राष्ट्रीय नेताओं को । भाषा का बल महान बल है, इसी शस्त्र एवं शक्ति के द्वारा अपने देश की रक्षा-सुरक्षा की जा सकती है—

"भाषाबलं शस्त्रबलान्महौजः स्वराज्य लाभाय च रक्षितुं तत्।
शस्त्रं शरीरं वशमाकरोति मनोवनं हस्तयते च भाषा॥"[206]

सत्य और अहिंसा के वैदिक युग से भारत में अनेक प्रयोग होते आये हैं, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए जितना अनूठा प्रयोग गाँधी जी ने किया पहले वैसा प्रयोग कदाचित् ही हुआ हो। अहो, सत्याग्रह का सिद्धान्त जिसके अनुसार—

"यस्मिन्नरीणां तनवो न वध्या न चापशब्दो रूषया प्रयोज्यः।
युक्त्या धिया शत्रुगले मिलित्वा तच्चित्तवृत्तिः परिवर्तनीयाः॥
हन्यादरिः श्रन्ततमोऽस्तु हत्वा मृता भवेयं मृतवन्नु वास्याम्।
हीरणः प्रसन्नोऽरूषया यदा मे सत्याग्रहीत्थं प्रभवामि पक्वः॥"[207]

सत्याग्रही अपने ही नहीं, प्रत्युत एक समूचे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए, अगली पीढ़ी के भविष्य के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ाये हुए थे।[208] स्वाधीनता के लिए लड़ता हुआ कोई सैनिक आहत-विसंज्ञ होकर चिकित्सालय में पहुँचने पर चेतना प्राप्त करता है, इस सीधी-सी बात को कवि जिस आलंकारिक और प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है, उससे मुमूर्ष राष्ट्रीय चिति उज्जीवित-सी हो उठती है—

देशोद्धार के प्रति कृतसंकल्प हो जाते हैं (सर्ग 9)। किन्तु इसी बीच नेहरूजी का विवाह अत्यन्त धूमधाम एवं साज-सज्जा के साथ कमलाजी के साथ सम्पन्न हुआ (10, 11 एवं 12 सर्ग)। आनन्द भवन में परम प्रसन्नता का अनुभव करते हुए तथा समस्त लौकिक सुखों का उपभोग करते हुए वे दम्पत्ति समय तक अभिन्न हृदय होकर निवास करते रहे। आगे चलकर वे राष्ट्र के चाचा के नाम से प्रसिद्ध हुए–

अग्रे भविष्यति स राष्ट्रपतिव्य नाम्ना।
विख्यातकीर्तिरवनीतलवन्दनीयः॥ (13/14)

मर्यादानुसार गृहस्थ धर्म का अनुभव करके विशुद्ध हृदय से अपने मन की बात उन्होंने अपनी सहधर्मिणी से कही–सुन्दरी! क्या तुम मातृभूमि के सनताप से तप्त मन वाले हम दोनों के भीतर स्थित अपमान दुःख को जानती हो। हमारे देश में मौज उड़ाने वाले अंग्रेज लोग, बड़े से बड़े व्यक्तियों को भी जो कि उनके दुर्व्यवहार से खिन्न हैं, मच्छर, खटमल और कीड़ों के समान जानकर नित्य पीड़ित, धिक्कृत एवं अपमानित करते रहते हैं। दास बनाये गये लोगों को भी पीड़ित करते हैं और यहाँ धन को बलपूर्वक हड़प कर ये अपने खजानों में डाल देते हैं। इसलिए मैं मातृभूमि के कष्ट निवारण के लिए कृतप्रतिज्ञ हूँ और अपनी शक्ति के अनुसार स्वदेश की रक्षा करूँगा–

अतोस्मि कृतसङ्कल्पो मातृतानिवारणे।
यथाशक्ति करष्यामि स्वदेश-परिरक्षणम्॥ (13/18)

इस कार्य में तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिए। पहले मैं गाँधी–इस नाम से प्रसिद्ध परम गुरु का दर्शन करूँगा, क्योंकि वे ही स्वतंत्रता संग्राम के कर्णधार है–ऐसा पिताजी ने कहा है। मधुरभाषिणी कमला ने कहा–"प्रियतम मैं प्राण देकर भी अपका अनुगमन करूँगी।" तदनन्तर सबकी अनुमति से लखनऊ में होने वाले कांग्रेस के अधिवेश में वे भी सहर्ष भाग लेने के लिए गये।

ततः सर्वानुमत्यैव लक्ष्मणपुर-भाविनि।
सहर्षमगत्साऽपि कांग्रेसस्याधिवेशन॥ (13/23)

वहाँ पहुँचकर मनोभिराम गाँधीजी को देखकर श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में प्रणाम करके धीरे से अपने मनोभाव को उनसे कहा। गाँधीजी ने उन्हें आत्मजित, क्रियाओं में कुशल एवं विधि-विद्या विशारद जानकर उपदेश देते हुए कहा कि–अंग्रेजों को सत्य, अहिंसा, शान्ति और परिश्रम से ही जीता जा सकता है। पुनः गाँधीजी के पद चिह्नों पर चलते हुए स्वतंत्रता संग्राम में संघर्षरत हो गए। उन्होंने नित्य नये-नये भाषणों को जनता के मन में नई आशाएँ बंधाईं और निर्भीकता का उपदेश देते हुए अपने लोगों को दृढ़त्तर बनाया। जैसे-जैसे ये अंग्रेजों की नीति को ध्वस्त करने के

जवाहरलाल नेहरू ने देश का भ्रमण करके देशवासियों की स्थिति से परिचय स्थापित करना चाहा। इस अभियान में उन्होंने निर्धनता का साम्राज्य प्रसृत पाया।[226] थोड़े से पारिश्रमिक पर भी कार्य करने को विवश,[227] अपने शरीर की ओर से निरपेक्ष, कंकालशेष भूमि-पुत्रों को देखकर नेहरू जी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने देखा कि बड़े परिवार का पोषण करता हुआ, वह जीवन की भोजन-वस्त्र जैसी आवश्यक वस्तुओं के लिए भी तरस रहा है।[228] जर्जर गृह-स्थिति वाले कृषक और कर्मकार अपने कृष और भूखे बच्चों को सूखी मोटी-रोटी के टुकड़ों से सन्तोष दे रहे हैं।[229]

धूप[230], वर्षा[231] और ठण्डक[232] के दुःसह कष्टों को झेलकर[233] भूस्वामियों के लिए धनार्जल[234] और उस पर भी ऋणग्रस्तता का असमाप्य अभिशाप परतन्त्र भारत के किसानों और मजदूरों की नियति थी।

भूमिपुत्र कृषक अपना पसीना बहाकर धान्य उत्पन्न करते हैं, किन्तु उन्हें स्वयं भोजन दुर्लभ होता है।[235] पूस मास में किसान के बच्चे बिना खाये सो गये हैं। प्रातः उठकर नंगे जड़ाते हुओं को नीरस कोदों का बासी भात मिला वह भी भर पेट नहीं।[236] एक-दो के नहीं किसानों के साथ यह सत्य जुड़ा है कि दीपोत्सव की रात को निर्धनजन तेल के अभाव में दीपक नहीं जला सकते।[237] माघ की भीषण ठण्ड में गरीब अपनी सूखी हड्डियाँ ही भूख की आग में जलाकर तापते हैं –

"तपसि तेपुरिमेऽति बुभुक्षिता ज्वलिपिचण्डहुताशनदीपितैं।
विगतरक्तसास्थि समिन्धनैः वदन बाष्प निरीक्षणलक्षितैः॥"[238]

भारत की आत्मा जहाँ बसती है, ऐसे गाँव क्षेत्रों में सामन्तशाही के ऐसे शोषण और दुर्वार्य निर्धनता को देखकर जवाहरलाल को राष्ट्र की वास्तविक दुर्दशा का ज्ञान हुआ।[239] स्वराज्य के प्रहरियों ने श्रमिकों और किसानों का आह्वान किया।[240] जनता का मोह-भंग हुआ[241] और पहली बार जनसामान्य का ध्यान किसी देव-प्रतिमा या शसकों की छवि से हटकर भारत-माता की स्वाधीनता की ओर गया।[242]

अन्ततः देश के क्रान्तिकारियों एवं स्वाधीनता संग्राम सेनानियों के असीम बलिदान के फलस्वरूप भारत देश स्वतन्त्र हुआ। किन्तु भारत की स्वतन्त्रता के समय मुष्टिमेय राजनेताओं ने साधारणजनों की धर्म-भीरुता का सहारा लेकर पाकिस्तान के रूप में अलग राष्ट्र बना लिया, अन्यथा एक ही राष्ट्र के निवासियों में से कुछ का अलग होकर राष्ट्र बनाने का कोई औचित्य नहीं था। शताब्दियों से बसने के कारण भारतीय मुसलमानों की भी मातृभूमि थी। जैसी धार्मिक राष्ट्रीयता के चलते भारत का विभाजन हुआ, वह आज की राष्ट्रीयता के नितान्त प्रतिकूल और अमानवीय है, जिसके दुष्परिणामों का अनुमान विभाजन के समय के कष्टाकुल और हृदयद्रावक स्थानान्तरण से लगाया जा सकता है।

का आन्दोलन चलाया, इसी से उन्हें पुनः पिंजड़े में शेर की भाँति जेल में बन्दकर दिया गया—

लवणस्य विधानञ्च बभञ्जुनीतिमञ्जुलम्।
कारागारप्रवेशाय सन्नद्धा जनताऽभवत्॥ (13/48)
कर्षकान्दोलनं चक्रे वीरधुर्यो जवाहरः।
अतएव पुनर्बद्ध पञ्जरे केसरी यथा॥ (13/49)

"आप प्रयाग से बाहर नहीं जा सकते"—इस सरकारी आदेश का उल्लंघन उन्होंने कलकत्ता जाते हुए किया तो पुनः कारावास में भेज दिया गया। उन्होंने क्रमशः अनेक ग्रन्थरत्न लिखे तथा अनेक बार कांग्रेस की अध्यक्षता की—

"प्रयागान्नैव गन्तव्य" मित्यादेशस्य खण्डनम्।
कलिकतां गतो कार्षीत्पुनः कारागृहंययौ॥ (13/48)
क्रमशो ग्रन्थ-रत्नानि लिखितानि बहून्यपि।
कांग्रेस स्याधिपत्यं च बहुशः कृतवानसौ॥ (13/62)

अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचार से त्रस्त नेहरूजी को कोई युक्ति ही नहीं समझ में आ रही थी कि इन्हें किस प्रकार देश से भगाया जाय। अन्ततः इस सन्दर्भ में दूसरे देशों के साथ कल्याणकारिणी वार्ता करने के लिए आपके मन में यात्रा के कार्यक्रम का प्रबल संकल्प उत्पन्न हुआ। ऐसा विचार करके वे चीन, जापान, रूस और जर्मन पहुँचकर वहाँ के नेताओं से मिले। वहाँ कतिपय प्रमुख नीतिकुशल महापुरुषों ने कहा—आपके सामान्य प्रयत्नों से अभी स्वतन्त्रता की प्राप्ति सम्भव नहीं है, यह हमारी निश्चित धारणा है। कुछ एक ने चमत्कारपूर्ण वचनों से कहा—बिना शस्त्र के आपकी अभीष्ट सिद्धि सुलभ नहीं है। (14/25-29)।

किन्तु भारत के तत्त्व को जानने वाले नेहरूजी को इन मतों से सन्तुष्टि नहीं मिली। विवेकशील उन्होंने शान्ति को अपनी कार्यसाधिका के रूप में माना और समस्त लोगों के विचार यहाँ के जननायकों से गूढ़रहस्य सहित चतुरतापूर्वक बता दिए। इस प्रकार युद्ध कार्य के चलने पर भी जब लाभ नहीं हो सका तो उन्होंने निश्चय करके एक प्रस्ताव रखकर घोषणा की—अंग्रेजो भारत को शीघ्र छोड़ दो—

एवं क्रमेण चलितेऽपि च युद्धकार्ये लाभों यदा ने भवतीति विनिश्चयोऽभूत्।
प्रस्तावमेकमुपधाय चकार घोषं-देशं परित्यजत सत्वमंगरेजाः॥ (14/31)

इस प्रस्ताव को जानकर अंग्रेजों का सिंहासन डगमगाया और उन्होंने सन्धि करने का विचार किया। स्वभावतः धीरे होने पर भी अधीरता से वायसराय ने सन्धि करने के लिए उन्हें ही बुलाया। उनके शान्तिप्रिय तथा मधुर वचनों से अंग्रेज शासकों का प्रमुख बहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार स्वातन्त्र्य युद्ध शान्त हुआ और अंग्रेजों का

से आज सारे देश में दरिद्रता का राज्य अबा ा गति से फैल रहा है। अन्न के बिना बच्चे भी बड़ी संख्या में प्राणों को छोड़ रहे हैं। दुराचारों की कोई सीमा नहीं है और अन्याय वृद्धि का भी कोई अन्त नहीं है। जो नाना प्रकार की यातनाओं का सामना करना पड़ता है। हमारे नेतागण जेलों में नान प्रकार का तिरस्कार पाते हैं और यहाँ निन्दित कर्म करने के लिए नित्य कोड़ों क मार सहते हैं (19/26)–

अस्माकमेते किल नेतृमुख्या, नानाविधां न्यस्कृतिमाश्रयन्ते।
निन्द्यानि कार्याणि विधातुमत्र, नित्य कशाघातमहो! सहन्ते॥ (8/26)

इस प्रकार के निन्दित कर्मों का अन्त करने के लिए तुम तैयार हो जाओ। एतदर्थ भारतीय कांग्रेस सभा के सदस्य होकर तुम इस देश को स्वतन्त्र करो–

देशीय कांग्रेस-सभा सदस्यो, भूत्वा स्वतन्त्रं कुरू देशमेनम्॥ (8/29)

ऐसा करने पर देश की दरिद्रता का अन्त करने के लिए निश्चय करके 'गाँधी' इस नाम से प्रसिद्ध महान धैर्यशालियों में अग्रगण्य, सच्चे गुरु की शरण में जाओ। वे सामान्य महात्मा बड़े तत्वदर्शी हैं और अंग्रेजों की नीति को असफल बनाने के लिए कटिबद्ध हैं। सत्य से तथा अत्यधिक परिश्रम से हिंसा के बिना प्रयोग के भी सफलता मिल सकती है। उन महात्मा गाँधी ने आज सफलता के हेतु इस अहिंसा रूप उपाय को देख लिया है और यही समझा है। तुम भी इसे समझ लो। राष्ट्र की सेवा का व्रत असि धारा पर चलने के समान है। यह अच्छी तरह समझ लो। हम लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करो यही मेरी बहुत बड़ी सेवा होगी। इस समय बांकीपुर में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला है। उसमें सम्मिलित होकर तुम्हें उन महात्मा गाँधी के गुरु रूप में दर्शन करना चाहिए। वहाँ के कार्य को समझने के लिए समय मुझे शुभ प्रतीत होता है। इससे पहले ही अनेक देशरत्नों ने स्वतंत्रता संग्राम का मार्ग प्रशस्त कर रखा है, उसमें तुम अपनी शक्ति से गति लाकर लोक सेवा में जुट जाओ (8/30-38)।

मार्गः प्रशस्तो विहितोस्त्यनेकै-र्देशस्य रत्नैरथ पूर्वमेव।
तत्राधुनां त्वं गतिमात्मशक्त्या, सम्पाद्य सेवाभिरतो भवेति॥ (8/38)

पिता की वाणी सुनकर देश सेवा का व्रत अपने मन में धारण करके उन्होंने कर्त्तव्य कर्म की पूर्ति के लिए शान्तिपूर्वक विचार को स्थिर किया तथा पिता की आज्ञा से बांकीपुर जाकर तथा वहाँ का कार्य देखकर संस्था की सदस्यता स्वीकार की। कार्यप्रणाली जानने के बाद प्रवीण होकर उन्होंने अनेक सभाओं में बहुत से समयोपयोगी भाषण दिए। इस प्रकार क्रमशः कार्य की कुशलता से उनकी प्रसिद्धि फैल गयी और शासन के प्रति उनका रोष भी प्रतिदिन बढ़ता गया (8/39-45)।

पुनः अंग्रेजों के असह्य दुराचार एवं अन्याय से मनसा पीड़ित होकर नेहरूजी

9. वही, 3/2
10. वही, 3/10-17
11.वही, 4/2, 14
12. वही, 4/13
13. वही, 4/16, 17
14. वही, 4/17
15. वही, 4/10-11
16. वही, 1/11, 12
17. वही, 15/15, 30
18. वही, 7/3
19. वही, 5/7
20. वही, 8/1
21. वही, 8/2, 3
22. वही, 8/5, 7
23. वही, 8/13-15, 20
24. वही, 8/17
25. वही, 9/22
26. वही, 9/15, 17
27. वही, 9/18, 19
28. वही, 10/25
29. वही, 10/24
30. वही, 11/24, 31
31. वही, 12/8, 11
32. वही, 12/15
33. वही, 13/10
34. वही, 12/ 24
35. वही, 13/12
36. वही, 13/15
37. वही, 13/17
38. वही, 13/19
39. वही, 13/27-28
40. वही, 13/30
41. वही, 13/31
42.वही, 14/1-7

लिए अग्रसर होते गए वैसे ही वैसे वे भी कठोर होते चले गए और हजारों लोगों को पकड़कर जेलों में बन्द करने आदि के विभिन्न कष्टों ने भयाक्रान्त कर दिया (19/24-28)।

इस प्रकार कहीं राजकीय समाचारों में गतिरोध कहीं साइमन कमीशन का विरोध (वायकाट) और वहीं उग्रतम (होमरूल) को भङ्ग करने के लिए उन्होंने गतिविधियाँ कीं–

क्वचित्समाचारगतेर्निरोध, क्वचिच्च साइमन संविरोधम्।
कदाचिदत्युग्रतमस्य होम-रुलस्य भङ्गाय गतिं बबन्ध॥ (13/29)

अनेक कष्टों से पीड़ित किए जाने पर भी ये लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए। कुछ समय उपरान्त कमला का दूसरा रूप धारण करके इन्दिरा उत्पन्न हुई। पति के कारावासादि क्लेशों से दुःखित इन्दिरा की पतिव्रता मां विकट रोग रूपी ग्राह से ग्रस्त हो गयी। देश में उनकी चिकित्सा सुलभ नहीं थी इसलिए उन्हें देखने वह भी गये किन्तु विधि का विधान तो कुछ और ही था। विदेशी वस्त्रों की होली, प्रिंसवेल्स का बहिष्कार एवं शासक विरोधी भाषण करके वे कारागार में चले गए (13/30-35)–

दाहं विदेशवस्त्राणां प्रिंसिवेल्स बहिष्कृतिम्।
भाषणनि विरुद्धानि कृत्वा कारागृहं ययौ॥ (13/35)

मारपीट, बहुत से अपमानजनक कार्यों एवं कष्टदायक कटुवचनों के प्रयुक्त किए जाने पर भी, ठोकर मारे जाने पर भी, अत्यधिक अपमानित किए जाने पर भी वे दृढ़निश्चयी कभी भी अपने लक्ष्य से नहीं डिगे। गाँधीजी के द्वारा विचार दिये जाने पर उन बीरवर ने अंग्रेजों से शान्तिपूर्ण उपायों से युद्ध करने के लिए चित्त को दृढ़ किया और देश के युवक-युवतियों को सत्याग्रह के लिए निरन्तर आह्वान किया। वे समस्त वीर जयघोष करते हुए, दृढ़ निश्चय से शीघ्र चल पड़े। शस्त्रों के प्रहार से घायल उन्होंने गोलियों की बौछार को भी छाती पर झेला। उस युद्ध में असंख्य वीर वीरोचित गति को प्राप्त हुए। गाँवों और नगरों से एकत्रित हजारों लोगों को अंग्रेजों ने कारागारों में ठूँस दिया। इस प्रकार के महान् संघर्ष के न होने पर भी उन्हें स्वराज्य फल प्राप्ति में सफलता नहीं मिली, किन्तु क्रोध से भरे हुए अंग्रेजों ने अपनी कपटपूर्ण नीति को बिल्कुल नहीं छोड़ा। तदनन्तर लाहौर में जाकर कांग्रेस अध्यक्ष के आसन से पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति हमारा लक्ष्य है– यह घोषणा उन्होंने की–

ततो लवपुरं गत्वा कांग्रेसाध्यक्ष पीठतः।
'पूर्णस्वतन्त्रताप्राप्तिर्लक्ष्यं इत्यघोषत् (13/45)

पुनः दूषित "नमक कानून" को लोगों को तोड़ा और इस प्रसंग में जनता कारागार में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो गई। वीराग्रणी जवाहरलाल ने किसानों

77. वही, 12/15
78. वही, 2/13
79. वही, 2/15
80. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'श्रीसुभाषचरितम्' (सुभाषचरित-प्रयोजन), 8 छन्द
81. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'श्रीसुभाषचरितम्', 1/19
82. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'श्रीसुभाषचरितम्', 1/42-44
83. वही, 1/45-51
84. वही, 2/12-17 और 38-40
85. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'श्रीसुभाषचरितम्', 2/33-35
86. वही, 2/60-67
87. वही, 3/28
88. वही, 3/41-44
89. वही, 3/63-69
90. वही, 4/3
91. वही, 4/5
92. वही, 4/12
93. वही, 4/41
94. वही, 4/41
95. वही, 5/10
96. वही, 5/10
97. वही, 5/32
98. वही, 6/7
99. वही, 6/36
100. वही, 6/40
101. वही, 6/44-47
102. वही, 7/46
103. वही, 7/47-49
104. वही, 8/1-9
105. वही, 8/12
106. वही, 8/13
107. वही, 8/16-19
108. वही, 8/20-21
109. वही,
110. वही, 8/50.

शासन भी शान्त हो गया, सुरुचिसम्पन्न श्री लार्ड माउण्टबेटन सफलता कराने वाले हुए–

युद्धं शान्तं बभूवेत्थं शान्तं गौराङ्ग शासनम् ।
श्रीलः "श्रीलार्डमाउण्टबेटन" सिद्धिदो ऽभवत्॥(14/34)

देश स्वतन्त्र हो गया किन्तु उसका विभाजन भी हो गया। कोई उपाय ही नहीं है–यह सोचकर देशनायक भी इस ओर से उदासीन हो गए (14/35)। थोड़े ही समय में संविधान का निर्माण भी हो गया और सर्वसम्मति से श्री राजेन्द्र प्रसाद जी राष्ट्रपति बने (14/36) तथा प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू बनए गए–

आद्यः प्रधानमंत्री च श्री जवाहरनेहरूः
तपस्या पूतिरितस्य तथान्येषां तपस्विनाम्॥ (14/37)

स्वराज्य मिलने पर भी शान्ति का लाभ विधाता ने मस्तक पर नहीं लिखा था। इसी से पाकिस्तान में महामद यवनों ने अपने से अतिरिक्त हिन्दुओं का बेरोक-टोक हत्याकाण्ड प्रारम्भ कर दिया (15/1)। जैसे-तैसे विरोध शुद्धि का प्रयत्न किया गया फिर भी साम्प्रदायिक रोषाग्नि दबी नहीं। दुर्दैव का प्रकोप शान्त नहीं हुआ, दुर्भाग्य लीला निरन्तर अट्टहास कर रही थी, इतने में ही शान्तिप्रिय, सबके लिए शान्ति का उपदेश देने वाले महात्मा गाँधी का भी कथावशेष कर दिया गया–

दैव-प्रकोपो न शमं प्रपेदे, दौर्भाग्यलीला नितरां जहास ।
शान्तिप्रियः सर्वहितापदेष्टा–कथावशेषं गमितो महात्मा॥ (15/15)

अंग्रेजों के शासन से मुक्त भारत श्री सम्पन्न हो तथा यहाँ सभी सुखी हो और सभी निर्भय होकर घूमें–

गौराङ्ग शासनान्मुक्तं भारतं भा-रतं भवेत् ।
सर्वेऽत्र सन्तु निर्भया विचरन्त्विह॥ (16/1)

संदर्भ सूची

1. पण्डिता क्षमाराव, 'स्वराज्य विजयः,' 1/6-7
2. वही, 1/11-40
3. वही, 1/14-30
4. वही, 1/9-10.
5. वही, 1/14-15
6. वही, 1/28
7. वही, 1/16
8. वही, 1/17

145. वही, 4/11
146. वही, 4/18
147. वही, 4/29
148. वही, 5/17
149. वही, 5/32-33
150. वही, 5/63-64
151. वही, 5/67 टिप्पणी : श्लोक
152. वही, 5/24-126
153. वही, 5/189
154. वही, 5/202
155. वही, 6/13
156. वही, 6/14-15
157. वही, 5/184
158. वही, 6/15
159. वही, 6/16
160. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'भारतीय स्वातन्त्र्योदयः', 6/40
161. वही, 6/27,29
162. वही, 6/46-47, 50-52,54 इत्यादयः
163. वही, 6/46-48
164. पं. श्यामवर्ण द्विवेदी, 'विशालभारतम्' (जवाहरदिग्विजयम्), पृष्ठ 1.
165. वही, पृष्ठ 2
166. वही, पृष्ठ 6
167. वही, 1/13
168. वही, 1/54
169. वही, पृष्ठ 6
170. वही, 2/51
171. वही, 2/54-55
172. वही, 2/55-57, 61, 63
173. वही, 2/53
174. वही, 2/59
175. वही, 2/105-108
176. वही, 2/86-101
177. वही, 2/64-85
178. वही, 2/102-103

43. वही, 4/37, 38
44. वही, 14/39
45. वही, 14/10-41
46. वही, 17/12-14
47. वही, 17/18
48. वही, 17/20
49. वही, 17/15
50. वही, 17/29, 30
51. वही, 17/34.
52. वही 18/28
53. वही, 4/37, 38
54. वही, 18/23
55. वही, 19/2, 11
56. वही, 21/2-6, 13
57. वही, 28/6-17
58. वही, 28/18
59. वही, 30/7, 11
60. वही, 30/13, 14
61. वही, 36/25
62. वही, 36/25, 26
63. वही, 37/46
64. वही, 37/50, 51
65. वही, 40/52, 56 इत्यादि
66. वही, 40/16, 25, 64
67. वही, 41/39-40
68. वही, 41/35
69. वही, 45/26
70. वही, 48/31, 51 और नवचत्वारिंशोध्या ः
71. वही, 4/37, 38
72. वही, 4/37, 38
73. वही, 21/15
74. वही, 20/34
75. वही, 15/23
76. वही, 21/11

213. वही, 5/32
214. वही, 5/33
215. वही, 5/40
216. वही, 5/41
217. वही, 5/42
218. वही, 5/48
219. वही, 5/55
220. वही, 5/56
221. वही, 5/84
222. वही, 5/86
223. वही, 5/85
224. वही, 6/22-23
225. वही, 6/23
226. वही, 6/26
227. वही, 6/25
228. वही, 6/47
229. वही, 6/53
230. वही, 6/64
231. वही, 6/75
232. वही, 6/30, 41
233. वही, 6/69
234. वही, 6/70
235. वही, 6/65
236. वही, 6/71
237. वही, 6/80
238.वही, 6/81-84
239. वही, 6/86-87
240. वही, 6/95-99
241. वही, 7/58
242. प्राक्कथन, अस्य प्रारम्भः 23/8/68 दिनाङ्के पूर्तिश्च 14/11/68 दिनाङ्के श्रीमतां नेहरूमहाभागानां जन्मतिथावभूत परमधावधि न प्रकाशितमित्यत्रापि भगवदिच्छेव प्रधानं निदानमिति मन्ये। अस्तु 14.11.1969 तारिकायामस्यमुद्रणं प्रारब्धम्। 243. 8/15-38

111. वही, 8/39-43
112. वही, 9/5
113. वही, 9/16
114. वही, 9/11
115. वही, 9/28-31
116. वही, 9/33
117. वही, 9/52
118. वही, 9/59
119. वही, 9/59
120. वही, 10/9-16, 24-27
121. वही, 10/22-36
122. वही, 10/43-53
123. श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, 'भारतीः स्वातन्त्र्योदयः' 1/1.
124. वही, 1/2-6
125. वही, 1/46
126. वही, 3/1-2
127. वही, 2/4-17
128. वही, 2/12-13
129. वही, 2/16
130. वही, 2/21-22
131. वही, 2/23-30
132. वही, 2/28
133. वही, 2/38
134. वही, 2/39-41
135. वही, 2/43
136. वही, 3/1
137. वही, 3/11-12
138. वही, 3/14
139. वही, 3/20,22
140. वही, 3/19
141. वही, 3.27
142. वही, 4/1
143. वही, 4/2
144. वही, 4/2-3

नामाक्रमणोपक्रमस्यसिंहावलोकनं' नाम चतुर्थ सर्ग में सिकन्दर से लेकर गुलाम, तुगलक तथा मुगल शासकों के आक्रमण का संक्षिप्त परिचय करते हुए महाराणाप्रताप, शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, छत्रशाल आदि के महत्वपूर्ण योगदान का भी वर्णन किया गया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन

"स्वतन्त्रतान्दोलनस्य वर्णनात्मकः" नामक पञ्चम सर्ग से ही स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित प्रमुख विभूतियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इस सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों में स्वतन्त्रता संग्राम के कारणों का उल्लेख किया गया है। दुर्भिक्ष, शासकों की अवहेलना, मूल्यवृद्धि, करवृद्धि तथा प्लेगादि संक्रामक रोगों से भारतवर्ष में दरिद्रता का नग्न नृत्य हो रहा था। इसमें गोरे शासकों का अत्याचार, भारतीयों के प्रति अन्याय, इन्हें कारावास में डालना, कठोर दण्ड देना, हिन्दू-मुसलमानों में एक को खुश करके तथा दूसरे को अप्रसन्न करके भेद-नीति द्वारा दोनों में कटुता पैदा करना आदि ने भारत देश को जर्जर बना दिया–

कदाचिदेते तु समीरयन्तः हिन्दून् कदाचिच्चमुहम्मदीयान्।
परस्परं द्वेषाधिया सदा वै तन्वन्त आसन् तुमुलं कुयुद्धम ॥ (5/13)
कदाचिदेकं परितोषयन्तः प्ररोषयन्तश्च कदाचिदन्यम्।
द्वेषा विभज्यैव सदा स्वकार्यं नयप्रयोगं परिसाधयन्तः ॥ (5/4)

इस प्रकार अपनी भेदनीति एवं कूटनीति के द्वारा अंग्रेजों ने भारतवर्ष में धीरे-धीरे अपना पैर जमाना शुरू कर दिया, किन्तु अंग्रेज शासकों ने जहाँ-जहाँ अपना प्रशासन स्थिर करने की इच्छा की वहीं विद्रोह की आग भड़की। धीरे-धीरे अंग्रेजों के विरुद्ध सर्वत्र राजा, प्रजा, धनी, गरीब, वृद्ध, युवक एवं आबाल-वनिता आदि युद्धोन्मुख हो चुके थे। इसी के फलस्वरूप 1857 का विद्रोह हुआ। मंगल पाण्डेय नामक भारतीय सैनिक ने विरोध का नेतृत्व किया तथा गाय और सूअर की चर्बीयुक्त कार्तूस को मुख में लगाने ने इन्कार कर दिया। सेना में भर्ती सभी हिन्दू-मुस्लिम भारतीय सैनिकों ने मंगल पाण्डेय के नेतृत्व में विरोध का प्रदर्शन करते हुए अंग्रेजों से घमासान युद्ध करते हुए सेना का परित्याग कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में संलग्न हो गए–

अश्वेषुसिद्धीन्दुमिते सनाब्दे, क्रान्तिं महाघोरतरां विधातुम्।
पाण्डेङ्कितो मङ्गलनामधेयः सैन्यस्य नेतृत्वधुरं बभार ॥(5/27)
कार्त्तूससंज्ञ च प्रसाधनं यत् गोशूकरोत्पन्नकुमेदसा तत्।
विलिप्यदत्तानि च सैनिकेभ्यः मर्माहतान् तान् सुभटान् विधातुम् ॥(5/28)
हिन्दूजनेभ्यस्तु गवां हि भेदः मुस्लिमजनेभ्यस्तदु शूकराणाम्।
मुखने वा कर्त्तयितुं तदीदृशं महाननर्थश्च महच्च पातकम् ॥(5/29)

179. वही, 2/87
180. वही, 2/95
181. वही, 1/101
182. वही, 2/102
183. वही, 3/2-3
184. वही, 3/4
185. वही, 3/20, 24-25, 28-29
186. वही, 3/18-10, 23
187. वही, 3/22
188. वही, 3/26
189. वही, 3/21
190. वही, 3/50
191. वही, 3/32
192. वही, 3/51
193. वही, 3/33-34
194. वही, 3/45
195. वही, 3/46
196. वही, 3/48
197. वही, 3/49
198. वही, 4/3
199. वही, 4/8
200. वही, 4/15-20
201. वही, 4/18
202. वही, 4/15
203. वही, 4/25-34
204. वही, 4/37-50
205. वही, 4/39
206. वही, 4/54-55.
207. वही, 5/15-17, 21-23
208. वही, 4/22
209. वही, 5/23
210. वही, 5/27
211.वही, 5/28-29
212. वही, 5/30

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने वैधव्यदोष तथा सती-प्रथा का विनाश करके बहुत प्रकार से सामाजिक सुधार किया दीनबन्धु मुधसूदन ने प्रजा में प्रेरणा का संचार किया। बंकिमचन्द चटर्जी ने अपने उपन्यास के द्वारा जनान्दोलन किया–

ईश्वरन्द्रकश्चासौ विद्यासागरसंज्ञितः।
सामाजिकान्सुधारास्तान् बहुशः कृतवान् बुधः ॥ (6/30)
वैधव्यादोषविध्वंसी राजहंसस्तनूभृताम्।
वृथा येन कृता नूनं पृथुना सा सती प्रथा ॥ (6/31)
दीनबन्धुस्ततो धीरोसुमधुरो मधुसूदनः।
प्रजासु प्रेरणा तीव्रामकरोत् शक्तिदायिनीम् ॥(6/32)
चन्द्रान्तो बङ्किमो नाम-सदुपन्यास पण्डितः।
फ्रांसदेशे यथा क्रान्तौ, बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ (6/33)

राजा राममोहन राय ने लोगों में धार्मिक जागृति के लिए 'ब्रह्म समाज' नामक पवित्र संस्था की स्थापना की जिसके द्वारा समस्त भेदभाव को भुलाकर पारस्परिक सद्भावना, वेद एवं शास्त्र की पूर्ण प्रतिष्ठा, अपनी मातृभूमि के प्रति स्वर्ग से भी बढ़कर प्रेम करना, वर्ण-व्यवस्था एवं सामाजिक नीतियों के द्वारा भारतीय सभ्यता एवं पूर्ण प्रतिस्थापना की।

राजाभिधो मोहनराय एष, रामदिको देवसमानसारः।
तां धार्मिकीं जागृतिमाततान, परोपकारव्रतमादधानः ॥ (6/41)

रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ भी सहर्ष ब्रह्म समाज को अंगीकार किया केशवचन्द्र सेन के प्रयास से 'प्रार्थना समाज' की स्थापना हुई। रानाडे, रामकृष्ण, भण्डारकर आदि विभूतियों ने इस समाज की उन्नति के साथ-साथ शिक्षा का प्रचार-प्रसार एवं समाज में विविध प्रकार से सुधार किया (6/46-51)–

विलोक्यभावानमिवप्रभावान्, देवेन्द्रनाथोऽपि महामनीषी।
समागतः ब्रह्मसमाजचक्रे-हर्षप्रकर्षेण तदङ्गभूतः ॥ (6/46)
रवीन्द्रनाथस्य पिता महर्षिः, देवेन्द्रनाथो द्विजठाकुरो यः।
सेवां विधायैव च येन सम्यक्, लब्धा तथा सर्वजनप्रतिष्ठा ॥ (6/47)
ततो महान् केशवचन्द्रसेनः, नवाभया भासितबुद्धिसत्वः।
तं क्रैस्तशिक्षापरिरञ्जितात्मा, संस्थापयामास नवं समाजम् ॥ (6/48)
रवीन्द्रनाथोऽपि महाकवीन्द्रो, अवनीन्द्रनाथश्च स चित्रकारः।
ब्रह्मोसमाजस्य फलस्वरूपौ, द्वावप्यतीव प्रभविष्णुरूपौ ॥ (6/49)
एषां प्रभावेण समस्तदेशे, विशेषतो मोहमयीप्रदेशे।
सा जागृतिः कापि बभावनन्या, सत् प्रार्थनारूपमहासमाजे ॥ (6/50)

5

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित स्वाधीनता संग्राम

1. स्वराज्यविजयम्

20 सर्गों और 914 श्लोकों में गुम्फित इस महाकाव्य के कर्ता महाकवि द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्तण्ड हैं जो वृन्दावन गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति से सेवानिवृत्ति के बाद 31 आनन्दपुरी, मेरठ में रहते थे। इस महाकाव्य की सर्जना 1955 ई. के लगभग हो चुकी थी। दुर्भाग्यवश कवि के जीवनकाल में इसका प्रकाशन नहीं हो पाया, किन्तु उनके मृत्योपरान्त इसका प्रकाशन 1971 ई. में मेरठ से हुआ। प्रस्तुत महाकाव्य भारतीय पुनर्जागरण काल से स्वराज्य प्राप्ति तक के समस्त इतिवृत्त को मनोहारी शैली में समेटे हुए है। विगत शताब्दी से लेकर इस शताब्दी के मध्य तक इस महान देश में जो विराट विभूतियाँ उत्पन्न हुईं और जो ऐतिहासिक महत्व की घटनाएँ हुईं उन सबका भारतीय स्वाधीनता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में महाकवि ने सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट वर्णन इस काव्य में किया है। वस्तुतः कवि का जीवनकाल इन ऐतिहासिक घटनाओं के मध्य रहा है, अतः केवल भारतीय स्वाधीनता संग्राम का वृत्तान्त ही नहीं वृत्तान्त ही समीक्षा भी इस काव्य में है।

इस महाकाव्य के प्रास्ताविक नामक प्रथम सर्ग में कवि ने महाकाव्य का परिचयात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'भारतवर्ष वर्णनाख्यो' नामक द्वितीय सर्ग में भारतभूमि का सजीव चित्रण किया गया है, इसकी प्राकृतिक सुषमा, धन-धान्य की समृद्धि, सभ्यता, संस्कृति की रमणीयता और व्यापकता को प्रकट किया गया है। यहाँ के तपोवनों, आश्रमों और गुरुकुलों की लोकप्रियता, विविध विधाओं तथा संस्कृत भाषा की जीवन्तता और सर्वजनग्राह्यता पर प्रकाश डाला गया है। 'अथ भारतस्याधोगतिवर्णनात्मक' नामक तृतीय सर्ग के अन्तर्गत भारत देश की अधोगति अर्थात् प्रत्येक दिशा में होने वाले ह्रास की ओर संकेत किया गया है। 'अर्थ वैदेशिका

आचार्यो यः सम्मतो राष्ट्रसृष्टेः दिष्टया बंङ्ग भूषयामास धीरः ॥ (7/10)
देशस्येमां दुर्दशां संविलोक्य, खिन्नो जातो भूयसा संविषण्णः।
शिक्षादीक्षां दातुमुत्कः प्रकामं, कार्य चक्रे भूयसा तिप्रशस्तम् ॥ (7/11)
बन्धेच्छेदं कर्त्तुतकामैर्जनन्याः, मान्यैरेतैः किंन्न किं वाह्यकारि।
दत्त सर्व जीवपनं राष्ट्रहेतोः, स्वातन्त्र्यस्यह्यग्रदूतस्वरूपैः ॥ (7/12)
अन्यो हंसोपाधिको रामकृष्णः, त्यागीं योगी बङ्गभूमेः सुरत्नम्।
तेने भूम्ना संस्कृति भारतीया—मत्यर्थ तां बद्धमूला चकार ॥ (7/15)
यस्यात्मीयः सूनुकल्पः सुशिष्यः, आनन्दांतः श्रीविवेकादिकश्च।
वेदान्तस्याकारि येन प्रचारः, धर्म्मोद्धारो राष्ट्रिया चेतनां च ॥ (7/16)

कांग्रेस की स्थापना

सम्पूर्ण देश में एक ओर प्रजा दुर्भिक्ष के कारण कष्ट सह रही थी, दूसरी ओर अंग्रेजों के अत्याचार, जुल्म, उत्पीड़न एवं दास्य व्यवहार से भी निरन्तर कष्ट पा रही थी। प्रायः सभी भारतीयों को हीन दृष्टि से देखा जाता था, उनको अधिकार नहीं दिया जाता था तथा बदले में उन पर कोड़े बरसाना, गालियाँ देना, छोटी-छोटी बातों के लिए कारागार में डालना आदि विविध यातानाएं अंग्रेजों द्वारा दी जाती थीं। अपने ही देश में अंग्रेजों के कपटपूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार के कारण पराये बनकर जीना भारतीयों की नियति बन गयी थी। शूरवीर तथा बुद्धिमान भी अपने ही देश में गुलामों की तरह जीवन-यापन करते थे। इन्हीं कारणों के फल-स्वरूप तथा स्वतन्त्रया प्राप्ति के लिए राष्ट्र-नायकों ने कांग्रेस की स्थापना की (7/24-37)—

प्रायः सर्वे भारतीया जवास्तु, आलोक्यन्ते हीनदृष्टया च गौरैः।
सम्पर्कोऽपि क्षोभदो भारतीयैः, सांक सत्यं कुत्सितैर्दासरूपैः ॥ (7/29)
एतादृक् तत्कूटकापट्यपूर्ण, दुर्व्यवहारं वीक्ष्य गौरेश्वराणाम्।
शूरा वीरा बुद्धिमन्तोपि सन्त, स्वीये देशे दास्यमेते भजन्ते ॥ (7/35)
एतादृग्भ्यो नूनमुच्चावचेभ्यः, दुःखीभूय ह्यन्ततो राष्ट्रसंसत्।
कांग्रेसाख्या स्थापिता नेतृमुख्यैः, स्वातन्त्र्या प्तिर्ध्येयमस्या व्यघोषि ॥(7/37)

स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु भारतीयों के द्वारा कांग्रेस स्थापना के साथ आन्दोलन तीव्र कर दिया गया जिसको रोकने के लिए लार्ड लान्सडाउन इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट लाया—

दृष्ट्वैतदान्दोलनं बह्विकल्पं, खर्वीकर्त्तुं तन्तु गर्वं सभायाः।
ऐक्ट चैकं इण्डिया कौन्सिलाख्यं, लार्डो नैषीत् लॉन्सडोनः प्रकाशम् ॥(7/38)

अंग्रेजों की इस कपटपूर्ण नीति के कारण क्रान्ति और उग्रतर होती गयी तथा उसका प्रसार सम्पूर्ण देश में काश्मीर से कन्याकुमारी तक हो गया। इतिहास प्रसिद्ध

आज्ञामिमावातुनिशम्यघोरामुत्तेजितो सौभृशमार्यवर्यः।
धर्मप्रणाशञ्च विलोक्य तेषामुत्तेजनाया परिथिर्नचासीत्।।(5/30)

बंगाल में स्वतन्त्रता आन्दोलन के नायक एवं समाज सुधारक आन्दोलन

"बंगभूमेरुत्क्रान्ति वर्णनात्मक" नामक छठवें सर्ग के अन्तर्गत बंगाल प्रान्त के उन महामनीषियों का उल्लेख है जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में तन-मन सब कुछ समर्पित कर दिया। अंग्रेजी शासकों ने बंगाल प्रान्त में शिक्षा-दीक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति के सभी अंगों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव छोड़ दिया। मैकाले ने छद्म नीति के द्वारा अंग्रेजी को राज्य भाषा घोषित कर दिया–

मैकालेसदृशैः गौरेश्छलच्छद्मविभूषितैः।
आङ्गलभाषा हि राज्यस्य भाषात्वेन विघोषिताः॥ (6/3)

इसके फलस्वरूप भारतीयों को ऊँचे पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था, साथ ही उन्हें क्लर्क, किङ्कर दास नौकर तथा कुली आदि शब्दों द्वारा अपमानित किया जाता था। धीरे-धीरे भारतीयों में हीन भावना भर गयी तथा उनका मनोमस्तिष्क अंग्रेजी सभ्यता में रंग गया। इसी समय राजा राममोहन राय नामक कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति का जन्म हुआ जिसने लोगों के मन में अंग्रेजी शासन एवं संस्कृति के विरुद्ध घृणा का भाव भर दिया तथा भारतीय सभ्यता का संचार किया–

प्रान्ते शान्तमना एकः राममोहननायकः।
राजाभिधः समुत्पन्नो व्युत्पन्नश्चकुशाग्रधीः॥ (6/8)
रक्षार्थं भारतीयायाः सभ्यतायाश्च संस्कृतेः।
धर्मस्य रक्षणार्थञ्चोदितो यं राममोहनः॥ (6/17)

स्फुट वक्ता कृष्णदास, पत्रकार श्री हरिश्चन्द्र मुखर्जी, बुद्धिप्रवर केशवचन्द्रसेन, स्वामी राम कृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य वीतरागी योगी स्वामी विवेकानन्द आदि ने भारतीय सभ्यता संस्कृति एवं धर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा भारतीयों में जनजागरण किया–

कृष्णोदासः स पालश्च प्रवक्ता जनताग्रणीः।
मुखर्जी श्री हरिश्चन्द्रः पत्रकारः कुशाग्रधीः॥ (6/24)
ससेन केशवनन्द्रः स्वाभिमानी बुद्धाग्रणीः।
परमहंसो नृहंसो रामकृष्णाभिधोमुनिः॥ (6/25)
वीतरागश्च योगी यो विवेकानन्दसुव्रतो।
तस्य शिष्यः प्रशस्यो यो धर्मदीपप्रदीपकः॥ (6/26)
पुरातनार्यलोकानां रीतिनीतिपरम्पराम्।
पुनः संस्मारयामास, मूलतः स तु विस्मृताम्॥ (6/29)

स्वतन्त्रता रूपी तपस्या की साधना करने के लिए सभी लोग तन-मन-धन से सुसज्जित होकर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े। किस प्रकार से स्वराज्य की प्राप्ति हो सभी लोग मृत्यु की कीमत पर चाहने लगे। यदि स्वतन्त्रता नहीं तो जीवन से क्या लाभ, दासता से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है–

भवेत्स्वराज्यं किमु वास्तु मृत्युः कल्पस्तृतीयो नहि नोऽस्ति सत्यम्।
किं जीवनंतद् यदि न स्वतन्त्रं दास्यात्तु मन्ये मरणं गरीयः॥ (8/22)

इस प्रकार के विचार वाले भारतीयों को देखकर अंग्रेजों के हृदय भय से काँपने लगे थे। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत राष्ट्रभक्तों ने हाथ में तिरंगा झण्डा लेकर समस्त राष्ट्र की जयघोष करते हुए निकल पड़े। अंग्रेजों के दण्ड प्रहार से तथा गोलियों की वर्षा से अनेकों नर-नारी घायल हो गये, कई मर गये, बहुतों को जेल में बन्द कर दिया गया, किन्तु राष्ट्र के प्रति श्रद्धान्वित भारतीय अपने साध्य से विरत नहीं हुए। वे कृतसंकल्प थे कि–

क्रान्तिर्न शान्ति र्ह्यधुना विधेया, प्राणार्पणेनापि निजार्थसिद्धिः।
सिद्धो न यावद्यवतीह साध्यं तावन्न कार्यद्विरमन्ति धीराः॥ (8/28)
न केवलं भारतवर्षमेव, भवेत्स्वतन्त्रं किल नो विचारः।
अन्येऽपि सर्वे खलु दास्यबद्धाः, देशाः स्वतन्त्राः प्रमुदा भवेयुः॥ (8/29)
स्वतन्त्रतायाः खलु देवताया, यावद्घटः शोणितपूरितो न।
स्वराज्यसिद्धिर्नितरां दुरापा, भवेदिदञ्चापि न नग्नसत्यम्॥ (8/30)
स्वतन्त्रतायास्तु यदस्ति मूल्य, सर्वङ्कषं तद्बलिदानमेव।
तदर्थमेतत्सकलैजनौघैः, सर्वस्वदानैर्यतितव्यमेव॥ (8/3)

अंग्रेजों के इस अत्याचार के बाद भी आन्दोलन उत्तरोत्तर उग्रतर ही होता रहा। गाँधी और नेहरू के जयघोष के साथ मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए लोग सम्पूर्ण देश में क्रान्ति का संचालन करते रहे–

जयोऽस्तु गान्धेस्तु महात्मनो वै, जवाहरस्यापि जयोऽस्तु शश्वत्।
क्रान्तिस्तथानश्चिरजीविनीस्यात स्वमातृभूमेर्विजयोऽस्तु नित्यम्॥ (8/34)

झाँसीराज्यस्य विलीनीकरणोद्योगध्वंसः

नवम् सर्ग के अन्तर्गत अंग्रजों द्वारा झाँसी राज्य को अंग्रेजी शासन में विलय करने की दुर्नीति एवं झाँसी राज्य के विरोध के फलस्वरूप महासंग्राम का बहुत ही रोमाञ्चक वृत्तान्त है। इस सन्दर्भ में अंग्रेजों ने काफी प्रयास किया। झाँसी रानी को वैध सत्ताधिकारिणी पद से च्युत् कर जब अंग्रेजों ने झाँसी में अपना शासन चलाना शुरू किया तो धीरे-धीरे सर्वत्र विद्रोह की आग भड़क उठी। फलस्वरूप लक्ष्मण नामक एक वीर सिपाही ने घर-घर में विद्रोह की अग्नि फैला दी–

रानाडेनामा च स रामकृष्णः, भण्डारकरो भव्यविभूतिजिष्णुः।
सोऽयं समाजस्य समुन्नतिं प्रति, दत्तावधानः प्रबभूव नेता।
शिक्षा प्रचार च तथा सुधारं, नानाविधं चारुतर चकार॥ (6/51)

बंगाल प्रान्त के ही अरविन्द घोष ने बंगभंग आन्दोलन में लोगों में चेतना जागृत करके स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार पर बल दिया। प्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक पद पर न रहते हुए भी राष्ट्रीय चेतना हेतु भाषण लेखक एवं उद्‌बोधन करते थे। इसी प्रकार अपने विविध क्रिया-कलापों से वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपना सम्पूर्ण योगदान देते रहे (53-60)–

बङ्प्रदेशस्य च कान्तकानने, जनारबिन्दस्त्वरबिन्दघोषः।
विकासमासाद्य स कोऽपिदिव्यं, ततान राष्ट्रे नृपनीतितत्वम्॥ (6/53)
यो बङ्गभङ्गस्य महाप्रसंगे, तरङ्गयामास जनान् प्रभूतान्।
स्वदेशवस्त्रव्यवहारमेव, कुर्वन्तु सर्वे न विदेशजातम्॥ (6/54)
साक्षान्न यो यद्यपि राजनीतौ, पदं न्यधत्तार्यविचारशीलः।
तथाऽपि तां राष्ट्रीयचारुचेतना, सदा तनोद्‌भाषणलेखागुम्फैः॥ (6/55)
स बङ्गप्रदेशस्य ललामभूता, विभूतिरेवास्ति च भारतस्य।
स्वराज्यसंग्राममहाप्रयोगे, सम्पूर्णयोगं प्रददौ महात्मा॥ (6/60)

अथ राष्ट्रियान्दोलनस्य पृष्ठभूमि

सप्तम सर्ग के अन्तर्गत कवि ने स्वतन्त्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार बताते हुए इसके लिए प्राणोत्सर्ग की सीमा तक संघर्षरत रहने को कहता है। इसके विपरीत दासता को अत्यन्त घृणास्पद कहा है–

स्वतन्त्र्यं नो जन्मसिद्धोऽधिकारः न स्याद्‌दास्यं गौरवाय प्रजानाम्।
चाणक्यस्य ह्युक्तिरेषा नितान्तं, सत्या तथ्या पथ्य भक्ता चकास्ति॥ (7/3)
स्वातन्त्र्ये तत्प्रेम दास्ये घृणा च, न स्यात्तीव्रा सर्वसाधारणेषु।
तच्चैक्यं वा स्यान्न राष्ट्रे ह्यभेद्यं, तावन्नस्यात्सत्स्वराज्यस्य सिद्धिः॥(7/8)

यही कारण है कि जब भारत देश अंग्रेजों की दासता के बन्धन में जकड़ा था तो हमारे देश के राष्ट्रनायकों ने अपना सर्वस्व लुटाकर देश की आजादी के लिए संघर्ष किया। महात्मा गाँधी तो देश की दुर्दशा को देखकर खिन्न हो गए तथा अपना सर्वस्व त्यागकर माँ को बन्धनों से मुक्त कराने के लिए स्वतन्त्रता के अग्रदूत के रूप में राष्ट्र के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने भी राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करते हुए स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपना अपूरणीय योगदान दिया (7/10-16)–

कालेऽस्मिन् वा देवदूत स्वरूपः, राजोपाध्यालंकृतो मोहनोऽसौ।

पुनः सुसज्जित सेना के द्वारा शत्रु पर आक्रमण करेंगे तथा अपने खोए हुए राज्य को वापस प्राप्त कर लेंगे–

राष्ट्रभक्तिभृतः सत्यं, विजिगीषा समन्विताः।
अध्रुवं जीवनं मत्वा ध्रुवाश्चैव सुकीर्तयः ॥ (9/38)
सज्जीभूय पुनर्नूनं माक्रमिष्यन्तिशत्रवः।
भूयोऽपि प्राज्यराज्यन्नो हरिष्यन्तीत्यशंसयम् ॥ (9/39)

सभी वीर सैनिकों ने एक स्वर से कहा कि निश्चय ही हम सभी विजय प्राप्त करेंगे। फिर क्या था, झाँसी की रानी की जय-जयकार से सम्पूर्ण आकाशमण्डल गूँजने लगा। (9/40, 41)।

झाँसीश्वरीस्वर्गारोहणम्

महारानी झाँसी के पूर्व निर्दिष्ट आदेश के अनुसार सम्पूर्ण वीर सैनिकों ने अंग्रेजों की विशाल सेना पर आक्रमण कर दिया पुनः, अश्व, गज, रथ और पैदल सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। समरोन्मुख वीरांगना लक्ष्मीबाई अश्वारूढ़ साक्षात रणचण्डी दुर्गा सी प्रतीत हो रही थी। जिस-जिस दिशा में वह मुड़ पड़ती थी शत्रुओं का सफाया कर देती थी। महायुद्ध चल रहा था कि किसी देशद्रोही के कारण महारानी की सेना अंग्रेजों द्वारा घेर ली गयी। अंग्रेजों ने आक्रमण कर दुर्ग को चारों तरफ से घेर लिया। ज्यों ही एक अंग्रेजी सैनिक दुर्ग में घुसना चाहा कि दुर्गरक्षक ने तत्काल तलवार से उसका सिर काट लिया। पुनः पुरुषवेषधारी वीरांगना ने अपनी वीरता से शत्रुओं का सफाया करती हुई बाहर निकली तथा कालपी की ओर प्रस्थान कर दिया–

स्वहयं कषया प्रेर्य, सैन्यव्यूराद्बहिर्गता।
विद्युद्वेगेन सा तन्वी प्रस्थिता कालपी प्रति ॥ (10/18)
तत्र तात्यामहाभागैः सा शिरसा समादृता।
श्रद्धया च ततो दत्तः सहयोगी महत्तरः ॥ (10/19)

तांत्या टोपे ने महारानी का समादर करते हुए श्रद्धापूर्वक महान् सहयोग दिया। अंग्रेजी सेना के साथ महायुद्ध शुरू हुआ तथा सेनाध्यक्ष ह्यूरोज के नेतृत्व की दूसरी सेना आ गयी। उसने सोचा कि येन-केन-प्रकारेण लक्ष्मीबाई को यदि बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया जाये तो भारत में हमारी स्थिति सुदृढ़ हो जाएगी–

सेनाध्यक्षः स ह्यूरोजस्तदासम्यग् व्यचारयत्।
येन केन प्रकारेण राश्री कार्या करङ्गताः ॥ (10/21)
यावना सा पुना राज्ञी अस्मद्बन्दीगृहे स्थिता।
तावत्तु भारतेऽस्माकं स्थितिरेवास्त्यसम्भवा ॥ (10/22)

सेनाध्यक्ष के इस विचार एवं आदेश को जानकर गोरे सैनिकों ने घनघोर युद्ध

फ्रांस की क्रान्ति, रूप की क्रान्ति तथा इटली देश में मेजिनी गैरीबाल्डी आदि क्रान्तियों से प्रेरणा लेते हुए भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु क्रान्ति को उग्रतर कर दिया (7/38-44)–

स्वातन्त्र्ययार्था भारतेपि प्रयत्नातु क्रान्तिः कार्या दूषणां भीषणा च।
हिंसाहीना सत्यपूर्णा प्रकामम्, कामं साध्यं साधनीयं नितान्तम् ॥ (7/44)

जिस समय देश में चेतना जागृत हो रही थी तथा आन्दोलन की अग्नि सबके हृदय में धधक रही थी उसी समय ह्यूम महोदय ने 'यूनियन' नामक संस्था की स्थापना की–

यदास्मिन् देशे नः प्रसृतिरभितो जागृतिततिः।
प्रदीप्ता सर्वत्र प्रकृतिहृदि दावानल इव ॥
तदाह्यूमो नामा यूनियनइतिख्यातसदसः।
प्रसंस्थाप्यैतिह्ये सुभृषामतनोत्स्वोज्जवलयशः ॥ (7/45)

क्रान्तेस्तुमुलान्दोलनम्

अष्टम सर्ग के अन्तर्गत अंग्रेजों के अत्याचारों भारतीयों की संघर्ष क्षमता तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रति अनन्य निष्ठा एवं प्राणोत्सर्ग का उल्लेख है। स्वतन्त्रता आन्दोलन की उग्रता को देखकर अंग्रेज शासक का हैरान होकर लोगों को जेल में कठोर यातना देना, धनी लोगों को लूटना, जंगली लोगों के समान निरंकुशता प्रकट करना, स्त्री, वृद्ध तथा बच्चों जैसे सुकुमार लोगों पर नृशंसतापूर्वक कोड़े बरसाना, अंग-भंग कर देना तथा प्रचण्ड से प्रचण्ड दण्ड कें द्वारा सम्पूर्ण भारतीय प्रजा को इच्छानुसार कष्ट पहुँचाते थे, किन्तु समस्त आन्दोलनकारी भारतीय इन कष्टों को सहकर भी प्रसन्नतापूर्वक दृढ़ संकल्प थे कि जब तक स्वराज्य न मिल जाए, स्वतन्त्रता न प्राप्त हो जाए तथा ये क्रूर विदेशी यहाँ से न जायें तब तक चित्त में शान्ति कहाँ है–

यावत्स्वराज्यं न लभेत राष्ट्रं, स्वतन्त्र्यावाऽधिगता च न स्यात्।
वैदेशिका नैव पलायिताः स्युः, तावत् कुतोवा मनसः प्रशान्तिः ॥ (8/9)

जैसे-जैसे अंग्रेजों की दमन नीति एवं दण्ड प्रहार आदि बढ़ता गया, वैसे-वैसे आन्दोलन का रुख भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आबाल वृद्ध वनिता सभी सक्रिय रूप से आन्दोलन में उतर गये–

आबालवृद्धा महिलाजनाश्च, संपेतुरेते शुभसङ्गरेऽस्मिन्।
भूतं तथा भावि च नेतिवृत्ते, दृष्टन्न तन्नापि तथा श्रुतञ्च ॥ (8/18)
पतिश्च पत्नी, जननी सुतश्च, प्रजागणो यावदशेषदेशे।
सत्याग्रहाहिंसनशस्त्रयुक्ता, रणार्थमूत्साहपरा बभूवुः ॥ (8/20)

भारतीय स्वाधीनता संगाम का कुछ उल्लेख भी मिलता है (11/25-35)।

अथ राष्ट्रीयमहापुरुषाणां वर्णनाम्

द्वादशः सर्गः के अन्तर्गत भारतीय स्वाधीनता संग्राम के कतिपय महान् नायकों का संक्षिप्त उल्लेख। इसमें सर्वप्रथम लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जी का उल्लेख है जिन्होंने यह नारा दिया था कि "स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।

स्वराज्यन्नाम यत्सत्यं, पुण्यभाग्यनिदर्शकम्।
जन्मसिद्धाधिकारो नः, कस्तं शक्तो व्यपोहितुम्॥ (12/4)
येन केन प्रकारेण, तल्लभ्यं सुप्रयत्नतः।
नूनं सर्वस्वदानेन, जीवितेनापि सत्वरम्॥ (12/5)

स्वराज्य प्राप्ति के लिए उन्होंने कांग्रेस के आन्दोलन में सहयोग किया। पुनः कांग्रेस के विभाजन होने पर वे गरम दल के नेता चुने गये–

दलद्वयविभागेषु संविभक्ता यदाभवत्।
उग्रानुग्रसमाख्येषु, सप्तवर्षमितं ततः। (12/10)
द्वितीयं तत्तु विज्ञेयं, सदुद्योगविभूषितम्।
यदोग्रदलनेतारः, स्वल्पसंख्यत्वहेतुना॥ (12/11)

बालगंगाधर तिलक सभी शास्त्रों के ज्ञाता, राजनीति के धुरन्धर पण्डित, गीता रहस्य मर्मज्ञ, गणित के महान विद्वान् एवं राष्ट्र नेताओं में अग्रणी थे (12/17, 18)। स्वराज्य प्राप्ति के लिए आपने प्राणपण से संघर्ष करने का आह्वान किया। गुलामी की शृंखला से देश को मुक्त करने के लिए, स्वतन्त्रता का अर्थ समझाने के लिए तथा लोगों में जागृति पैदा करने के लिए 'केसरी' नामक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। उनके उग्र लेखों से क्षुब्ध होकर अंग्रेज शासकों ने उन्हें माण्डले किले में डाल दिया। उन्होंने देश के उद्धार के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा दिन-रात परिश्रम किया (12/19-25)–

स्वातन्त्र्यतत्वबोधाये, लोकजागृतिहेतवे।
पत्रं सम्पादयामास 'केसरी' नृकेसरी॥ (12/21)
तत्रोग्रैर्लिखितैः, क्षुब्धीभूय प्रशासकैः।
माण्डले विक्टे कारे, तिलकः सन्निवेशितः॥ (12/22)
तेन राष्ट्रसमुद्धर्तु मनो वाक्कायसंश्रयैः।
दिवा नक्वतं परिश्रम्य, किन्न लोकोत्तरं कृतम्॥(12/25)

इसी सर्ग में आगे (12/30-38) श्लोक के अन्तर्गत महात्मा गाँधी जी के सत्य अहिंसा का उल्लेख है जिसके बल पर उन्होंने विदेशी सत्ता को झुकने के लिए मजबूर कर दिया–

अथ प्राज्ये ब्रटिशराज्ये झांसीराज्स्य यत्पुनः।
वृत्तंविलयसम्बद्धं निबद्धं पूर्व मेवतत् ॥ (9/1)
राज्यसिंहासनाद्राज्ञी-वैधसत्ताधिकारिणी।
सा बलादाङ्गलधौरैयैः कृता राज्यपदच्युता ॥ (9/2)
तत्स्थानेविनियुक्तश्च कश्चितदाङ्गलजनः कटुः।
यदृच्छापन्नमावेन नितरां शासितुं प्रजाः ॥ (9/3)
कुकृत्येनामुना तेषां लोकसंक्षोभकारिणा।
यत्र तत्र च सर्वत्र प्रज्ज्वलितो करुणो नलः ॥ (9/4)

लक्ष्मण के नेतृत्व में वीरों ने शत्रुओं के ऊपर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों के साथ इस भयंकर युद्ध में वीर सैनिकों ने सम्पूर्ण अंग्रेजी सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। बचे हुए अंग्रेज भय के कारण मृत्युमुख से बचने के लिए भाग निकले। भारतीय सैनिकों ने चारों तरफ से दुर्ग को घेर लिया तथा झाँसी के दौर्भाग्य विलय के साथ ही उसका सूर्य उदय हो गया। चारों तरफ आनन्द और हर्ष की दुं-दुभी बज उठी तथा झाँसी की रानी पुनः सिंहासनारूढ़ हुई।

ज्येष्ठमासे च तत्रैको लक्षमणो नाम भूसुरः
वीरः प्रसारयामास विद्रोहिनिं गृहे-गृहे ।। (9/6)
कृत्वाचाक्रमणं वीरैर्विजित्य च भटोद्भटैः।
हत्वा शत्रुजनाः सद्यो यमराजातिथीकृताः ।। (9/8)
× × ×
तत्तेथति वचो दत्वा कृत्वा चैव यथायथम्।
आङ्गलाः पलायिताः सर्वे, दुर्गं त्यक्त्वा प्रकातराः ॥ (9/12)
दौर्भाग्याम्बुधरा एवं सत्वरं विलयंगता।
झांसी सौभाग्यसूर्यस्य पुनरप्सुदयो भवत् ॥ (9/13)

लक्ष्मीबाई के सिंहासनारूढ़ होते ही चारों तरफ पुनः हर्ष और आनन्दोल्लास का वातावरण छा गया। सैनिक, सेनापति, चतुरंगिणी सेना, सभासद, मन्त्री आदि की पुनर्स्थापना करके रानी ने सभी को एक बार सम्बोधित करते हुए कहा—हे राजनीति के धुरन्धर मन्त्रीगण, स्वाधीनता के पथ पर चलने वाले श्रीमान् शूरवीरगण, आप सभी लोगों को हार्दिक धन्यवाद देते हुए हृदय से आभार प्रकट करती हूँ कि पराधीनता को न सह सकने वाले आप सभी क्षत्रियों के साहस के फलस्वरूप शत्रु यहाँ से भाग गये। जिस प्रकार से आप लोगों ने वीरतापूर्वक शत्रुओं को खदेड़ दिया, उसी प्रकार भगवान शंकर को प्रणाम करके हम स्वतन्त्रता भी हासिल कर लेंगे। इसके लिए हमें जो रणनीति तैयार करनी है उसे ध्यान से सुनें (9/21-38)। राष्ट्र भक्ति एवं जीतने की इच्छा से युक्त, जीवन को नश्वर मानकर तथा यश को शाश्वत मानकर हम लोग

श्रीलीर्डकर्जन कृत्यैर्विशिष्य।

बङ्गस्य भङ्गकरणे त्वरितरोषदोऽभूत् ॥ (13/37)

पुनः कांग्रेस के अधिवेशन में दादाजी भाई नौरोजी ने स्वराज्य के माँग की घोषण की–

कांग्रेससंसदाधिवेशनसम्मुखेऽस्मिन्।

दादाजि भई नवरोजि महामनासौ ॥

याञ्चां स्वराज्यसुमणे ह्यर्यकरोत् स्फुटं या।

मौनं तु तत्र नहि कस्य च रोषदायि ॥ (13/29)

स्वराज्य हे तू आन्दोलन अत्यन्त उग्रत्तर हो गया तो डूबते को तिनके के सहारे की तरह नाममात्र के सन्तोष के लिए ''मार्ले मिण्टो सुधारा'' हुआ–

पश्चाच्च 'मिण्टो' मर 'मोरला' ख्यः।

संशोधने यदपि कृत्रिमनामात्रम् ॥ (13/30)

× × ×

किन्तु आन्दोलनकारियों को जब इससे सन्तोष नहीं हुआ तो क्रोधान्ध अंग्रेजी शासकों द्वारा ''साइमन कमीशन'' भेजा गया–

ज्ञात्वा तु रोषमतिशयतात्तपोषः।

तत्सायमनकमिशनं प्रहिणोदूपर्वम् ॥ (13/31)

''साइमन कमीशन'' के आते ही सम्पूर्ण देश में विरोध की दावाग्नि भड़क उठी। सर्वत्र साइमन विरोध में प्रदर्शन, नारेबाजी एवं विधि उपायों द्वारा साइमन के विरुद्ध लोगों ने आवाज उठाई। सभी दलों ने एक विशाल सम्मेलन पं. मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में किया जिसमें एक स्वर से सभी ने साइमन के निरोध में अपना विचार व्यक्त करते हुए आन्दोलन को उग्रत्तर बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। आन्दोलन तीव्र होता देखकर अंग्रेज शासकों ने उसे दबाने के लिए ''रोलेट एक्ट'' नामक नवीन विधेयक पारित कर दिया (13/31-37)–

''रोलेट एक्ट'' नवलो विहितश्च गौरैः।

कुर्तुं नियन्त्रणमिदं तु कठोननीत्या ॥ (13/37)

असहयोगान्दोलनम्

रौलेट एक्ट के विरोध में पूरे देश में सर्वत्र ''असहयोग आन्दोलन'' बड़े उत्साह के साथ शुरू हो गया। इस आन्दोलन का सभी नेताओं एवं दलों ने समर्थन किया। सन् 1921 के दिसम्बर महीने में नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में चितरंजन दास, लाला लाजपतराय तथा हजारों की संख्या में एकत्रित आन्दोलन के नेताओं ने एक स्वर से समर्थन करते हुए तत्काल असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया (14/1-8)।

आरम्भ कर दिया। इधर भूखी सिंहनी की तरह महारानी लक्ष्मीबाई सेना के बीच आगे बढ़कर शत्रु सैनिकों को खण्ड-खण्ड करके काटने लगी–

तदा तु न्यपतत् सिंहनीव बुभूक्षिता।
रिपूणां रिकरान् वीरा खण्डशश्च च खण्ड सा। (10/25)

इसी बीच किसी शत्रु सैनिक के महारानी के ऊपर पीछे से तलवार से वार कर दिया, तत्काल ही रानी ने उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े कर डाले, किन्तु प्रहार के रक्तस्राव से मूर्च्छित होकर रानी घोड़े से नीचे जमीन पर गिर पड़ी। अंगरक्षकों ने तत्काल उन्हें अलग स्थान पर पहुँचाया। पुनः थोड़ी देर बार कुछ चेतना आने पर वीरांगना लक्ष्मीबाई धीरे स्वर में बोली कि ईश्वर ने आज मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी। मेरी शरीर को म्लेच्छ कदापि न छूने पाये ऐसा बार-बार आदेश करती हुई तथा ईश्वर का स्मरण करती हुई वीरांगना मूर्च्छित हो गयी, तदनन्तर परम धाम को प्राप्त हो गयी–

क्षणेन तावत्परिलब्धसंज्ञा, जगाद वीरा शनकैः वचोभिः।
पूर्णप्रतिज्ञास्मि विभोः प्रसादा–दतः वीरजनाः प्रमाणम् ॥ (10/28)
वपुर्मदीयं न मनागपि स्पृशेत् मलेच्छः सः कश्चितु बृटेनजुषु।
आदिश्य भूयोऽपि विभु स्मरन्ती, सम्मूर्च्छिताऽनन्ततरे निलित्ये ॥ (10/29)

पुनः स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाई का दाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। लोग फूट-फूटकर रोने लगे–

जगाइ कश्चित् क्व गताऽसि मातः, विहाय सर्वास्तु विहायतिं त्वम्
स्वातन्त्र्यसंग्राम क्रतुस्तवैष किं पूर्तिमायास्यति भारतस्य ॥ (10/33)

× × ×

त्वदङ्क्षाधिकृता इमास्ता, पदरविन्देषु तव प्रणम्य।
प्राणार्पणेनापि च राष्ट्ररक्षा–शुभप्रतिज्ञां हि वितन्वते स्म ॥ (10/37)

× × ×

वयं च सर्वे तव सुनूकल्पाः कल्पान्त यावद् रिपुभिः समर्थाः।
योद्धुं प्रयोद्धुं तव शासनेन, स्वतन्त्रता नैव लभेम यावत् ॥ (10/39)
मृतापि मातस्त्वमृतैव जाता, विश्वेतिवृत्ते त्वदखण्डकीर्तिः।
ज्योतिर्मयी प्रस्फुदरिन्दुभासा, भासिष्यते देवि! शशिप्रभा सा ॥ (10/40)

अथ काश्मीरवर्णनम्

एकादशः सर्ग में काश्मीर सुषमा के वर्णन के साथ-साथ भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपना तन-मन-धन समर्पित करने वाले नेहरू परिवार एवं पं. मोतीलाल नेहरू तथा जवाहरलाल नेहरू के बहुमूल्य सहयोग का वर्णन है। इसी प्रसंग में

सी.आर. देसाई, मोतीलाल नेहरू, बिट्ठल भाई पटेल, अजमल खान आदि अनेक वरिष्ठ नेताओं ने कौंसिल में प्रवेश के लिए एक संस्था निर्मित की (14/32-34)–

तदा सी. आर. दासेन मोतीलालेन धीमता । (14/32)
सा कौंसिलनिवेशार्थं संस्थैका निर्मिता शुभा ॥
बह्वस्तत्र नेतारो बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ 14/33)
श्रीमद्धिद्ठलपटेलाद्या अजमलखान महोदयाः ॥ (4/34)

परन्तु महात्मा गाँधी के अनुयायियों ने राजसंस्था में प्रवेश का महान विरोध किया (14/36)–

गान्धेर्महात्मनस्तावत्-अव्याजमतुयायिभिः ।
राजसंस्था प्रवेशस्य-विरोधस्तु महान् कृतः ॥ (14/36)

सी.आर. देसाई गुट ने कौंसिल में प्रवेश के लिए गया कांग्रेस अधिवेशन (1922) में सशक्त ढंग से वकालत की किन्तु ये लोग अल्पसंख्यक होने के कारण जीत न सके तथा जीत राजगोपालचारी तथा डॉ. अंसारी के गुट की हुई। कांग्रेस में दो दल हो गए जिसका उचित लाभ लेते हुए अंग्रेज शासकों ने भारतीय विधान के नव-निर्माण हेतु "गोलमेज सम्मेलन" बुलाया (14/41)

भारतीय विधानस्य नवनिर्माण पोषणम् ।
रौण्डटेबलसभायाश्च याचिका प्रतिपादिता ॥ (14/41)

अथ "साइमन कमीशनम्"

यत्रापि कुत्रापि गतः कमीशनः तत्रैव सर्वत्र च निम्ननादैः ।
"गोसायमन् बैगिति" कृष्णकेतुभिः, जनैः सरोषैः स निरादृतोऽभूत् ॥ (15/5)

सम्पूर्ण देश में जहाँ भी साइमन कमीशन गया वहीं "SIMON ! GO BACK" के नारे लगाते हुए काले झण्डों के द्वारा लोगों ने पदर्शन किया। जब यह वीरों की भूमि पंजाब के लाहौर नगर में पहुँचा तो वहाँ लोगों ने अत्यन्त उग्र विरोध किया। असंख्य वीर क्रान्तिकारियों ने हाथ में काला झण्डा लेकर "SIMON ! GO BACK" के नारों द्वारा आकाश को गुंजित कर दिया। क्रूर अंग्रेज शासकों ने विरोध को दबाने के लिए बलपूर्वक निर्दयता के साथ लोगों की बर्बर पिटाई की। कई की जानें चली गईं। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की निर्मम पिटाई निर्दय अंग्रेजों ने की, संज्ञाशून्य हो वे जमीन पर गिर पड़े। डॉक्टरों की चिकित्सा एवं प्रयास के बाद भी वे नहीं बच सके तथा अन्ततः वे वीरगति को प्राप्त हो गए (15/6-9)–

ततः तरोषं बृटिशाधिकारिषु, बल प्रयोगं कृतवत्सु निर्दयम् ।
जघान कश्चित् तदुरस्थलं ह्यलम्, पञ्चाम्बुभूकेसरिणस्तदन्तकृत ॥ (15/8)
श्री लाजपतायमहोदयोऽसौ, घातेन वृद्धोहि विसंज्ञितोऽभूत ।
चिकित्सिकैरेष चिकित्सितोऽपि, वीराग्रणी वीरगतिं गतोऽन्ते ॥ (15/9)

अहिंसाया व्रतं धृत्वां, स्नेहभङ्गीतरङ्गितम् ।
गान्धी समस्तलोकानां हृत् सप्राडध्यजायत ॥ (12/38)

पुनः (12/39-41) श्लोकों के अन्तर्गत गाँधी जी की शिष्या एवं स्वतन्त्रता संग्राम में संलग्न प्रसिद्ध विदुषी कवयित्री सेरोजिनी देवी का उल्लेख है तथा (12/42-49) के अन्तर्गत श्रीनिवास आयङ्गर के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वर्णन है, जिन्होंने अपने भाषणों, लेखों से स्वतन्त्रता हेतु जनजागरण किया तथा नमक आन्दोलन से गाँधी जी के साथ थे। अनेकों बार जेल गए तथा सत्य-अहिंसा का आश्रय लेकर स्वतन्त्रता के लिए यावज्जीवन संघर्ष करते रहे।

इसी सर्ग के अन्त में श्रीमती एनीबेसेन्ट का उल्लेख है जो "थियोसोफिकल सोसायटी" की अध्यक्ष रहीं। वह अंग्रेज महिला होते हुए भी भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करती रहीं। उनहोंने "होमरूल आन्दोलन" से देश का नेतृत्व किया। उनका मानना था कि स्वतन्त्रता भारत का अधिकार है तथा यह उसे मिलना चाहिए तथा अंग्रेजों को भारत से बाहर लौट जाना चाहिए–

ऐनी वसन्ती रमणीमणिः सा, वासन्तिकीं कान्मिथादधाना ।
थियोसफी धर्मधुरन्धरा या, स्वातन्त्र्ययुद्धे मिलिता बभूव ॥ (12/50)
पूर्णप्रवक्त्री च सभाधिनेत्री, जाता पुनः सा प्रकृतिप्रियत्वात ।
तां होमरूलप्रगतिं च राष्ट्रे, भूयः पुरन्धी प्रगुणीचकार ॥ (12/51)
स्वतन्त्रता पूर्णतया प्रदेया, न्याय्याधिकारोऽस्ति स भारतस्य ।
यस्यास्ति देशः परिशासनस्य, तस्यैव तच्छासकताऽधिकारः ॥ (12/52)

इसी प्रकार उपर्युक्त सभी स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों देश की स्वतन्त्रता हेतु संघर्ष करते हुए अपना जीवन अर्पित कर दिया–

स्वातन्त्र्य यज्ञविह्वरन्हाय सर्वदेशो ।
एतादृशां नराणां बलिभिः समेधितः सः ॥ (12/54)

अथ भारते आंग्लसाम्राज्यम्

इस सर्ग के अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना और उग्र हुई। वार्सा सन्धि में भारत का प्रतिनिधित्व (13/15) तथा लीग ऑफ नेशन्स को भारत का मेम्बर बनाकर अंग्रेजों ने तुष्टीकरण की नीति अपनायी (13/16)। इसी बीच "माण्टेग्यू चेम्स फोर्ड की सुधार नीति" भी लागू हुई (13/18)। पुनः "कौंसिल एक्ट" से भारतीयों को जब थोड़ा सन्तोष हुआ तो लार्ड कर्जन ने "बंग-भंग नीति" द्वारा पुनः जनता में रोष पैदा कर दिया–

"कौंसिल एक्ट" च ततः प्रसृतो नवीन ।
सोऽपि प्रसादजनको ह्यभवनन्न किञ्चित् ॥

कांग्रेस दल को अंगीकार किया। थोड़े ही सयम में वे दल के अग्रणी लोगों में गिने जाने लगे, साथ ही उन्होंने अल्पकाल में ही अच्छी लोकप्रियता प्राप्त कर ली। फलस्वरूप कांग्रेस के त्रिपुरा महाधिवेशन में वे अध्यक्ष चुने गये–

महासभायास्तु यदाविधवेशनं, कांग्रेसनाभ्याः समभूत्रिपुर्याम्।
तदासुभाषस्तु सभापतेः पदं, सहासमित्याप मुदोपलम्बितः।। (16/12)

सुभाष जी का अध्यक्ष चुना जाना गाँधी को अच्छा न लगा। उन्होंने कहा कि पट्टाभिराम शास्त्री की हार मेरी हार है। सुभाष जी ने सोचा कि मेरा मार्ग गाँधी जी को कभी भी प्रिय नहीं है। अतः उन्होंने दल से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि स्वतन्त्रता के व्रत का कार्य ईश्वर की प्रेरण से अब मैं स्वयं करूँगा, एतदर्थ उन्होंने एक दूसरे दल का गठन किया–

अतः स्वकार्यन्तु स्वतन्त्रतायाः, स्वयं करिष्यामि प्रभोर्निदेशात्।
इति प्रकामं हृदि सम्प्रधार्य, संस्थापयामास दलं तद्ग्रयम् ॥ (16/15)

अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा के बल पर जर्मनी तथा जापान के हिटलर तथा नरेश को प्रभावित किया। विदेशों में जाकर भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए सहायता माँगी। अपने राष्ट्र को बन्धक रूप में देखकर वह उसे मुक्त कराने के लिए अत्यन्त परेशान एवं उद्यत थे। उन्होंने बंगाल के गवर्नर के नाम एक पत्र लिखा था कि–कारागार के जीवन की तरह अपने राष्ट्र में जीना मुझे अच्छा नहीं लगता है–

नेच्छाम्यहं जीवितु मत्र राष्ट्र, कारासमानोऽति विभामिन्ये।

यदि दो महीने के भीतर मेरे पत्र का जवाब इस समस्या के समाधन के रूप में आपने दिया तो हम इस देश में बन्दी का जीवन बिताने के लिए नहीं रहेंगें। अन्ततः हुआ भी वही कि सुभाष जी ने इस बन्धन में रहने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर समझा–

प्रिया देशभक्ता मम भारतीया। इदं स्मृतेः पत्रमपि स्वचित्ते।
निधाय नित्यं प्रियमातृभूमेः, नमतप्रणामानुररी कुरुध्वम् ॥ (16/35)
मृत्वा पुनः प्राप्य सहस्रबारं, लोकष्वहं वाथ पुनर्नवीनः।
पधाय भूयोऽपि वपुर्वरिष्ठं, अध्यात्मशक्त्या च पुनः प्रपन्नम् ॥ (16/36)

× × ×

आजादहिन्दाभिधमेषसैन्यं, विहाय दैन्यं न यदि व्यधास्यत्।
स्वतन्त्रता प्राप्स्यदसौ न देशः, तदेति को नाम न वेत्ति लोके ॥ (16/39)

क्रान्तिवह्वरूद्दीपनम्

विशाल पंजाब देश के शिरोमणि, पवित्र राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत तथा

फलस्वरूप सैकड़ों लोगों ने अपनी उपाधियाँ त्याग दीं। जन्मभूमि की रक्षा हेतु न्यायालय से बाहर चले गये, हजारों छात्रों ने पढ़ाई छोड़ दी। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के सभी छात्र-छात्राएँ, स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध आन्दोलन में कूद पड़े, क्रूर अंग्रेज शासकों ने बहुत से लोगों को जेल में डाल दिया (14/9-21)–

ततो लोकैः समारब्धमसहयोगान्दोलनम्।
सोत्साहं सदुद्योगं तूर्णं पूर्णं फलप्रदत्॥ (14/2)
कारागारे च बहवः शासकैर्विनिवेशिताः।
अस्मिन्नेव शुभे काले बार्डोल्याख्ये शुभेस्थले॥ (14/2)

इसी बीच 'बारदोली' में करके विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन शुरू हो गया (14/13)–

करदान प्रतिद्वन्द्धि-नामान्दोलनं वृहत्।
झञ्झावदुत्थितं घोरमुन्मूलयितुमाङ्गलकान्॥ (14/13)

किन्तु 'मोपला विद्रोह' तथा 'मालाबार' (बम्बई) के दंगों ने हिन्दू-मुस्लिम में साम्प्रदायिक तनाव पैदा हो जाने तथा आपस में बहुत लोगों की जानें जाने से गाँधी जी ने आन्दोलन को स्थगित करवा दिया (14/14-15)–

मूलङ्कषं तदाङ्गलानां प्रशासनमहातरुम्।
मोपलानां मलाबारे दुर्दैवलसिता द्विधेः॥ (14/14)
हिन्दुभिः कलहो घोरो यवनानामजायत।
अनेके खण्डिता जाता उभयदलवर्तिनः॥ (14/15)

किन्तु इसी बची उत्तर प्रदेश के 'चौरीचौरा' ग्राम में एक विध्वंसात्मक घटना घट गयी (14/20)–

चौराचौरीति सुग्रामे विद्रोहः पुनरुन्द्बभौ।
क्षुब्धैः क्षुद्रतरैर्लेकैः किं किन्नैव कृतं तदा॥ (14/20)

अंग्रेजों के अत्याचार, प्रताड़ना एवं गोली चलाने से क्षुब्ध जनता ने पुलिस थाने में बहुत से कागज-पत्र एवं पुस्तकों को फाड़कर आग लगा दी। इस सम्पूर्ण काण्ड का अपराधी गाँधी जी को मानकर अंग्रेजो ने उन्हें 6 वर्ष के लिए जेल भेज दिया। अन्य बहुत से राष्ट्रीय स्तर के आन्दोलनकारियों को जेल में डालकर क्रूर अंग्रेजो ने उन्हें कठोर यातनाएँ दीं, किन्तु सभी ने खुशी-खुशी से 6 वर्ष व्यतीत कर दिये।

देश में सर्वत्र स्वतन्त्रता आन्दोलन की उग्र लहर व्याप्त हो यगी थी, फलस्वरूप "माण्टेग्यू फोर्ड सुधार" के द्वारा शासकों ने भारतीय जनता को कुछ परितुष्ट करना चाहा, लेकिन फिर भी अंग्रेजों की कूट-कपट नीति को नष्ट करने के लिए उसे जानने के लिए तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु देश के बड़े नेताओं, राजनीति के धुरन्धर पण्डितों

आन्दोलनाकारी चटगाँव स्थित शस्त्रागार को उड़ा दी देने वाले थे यदि अंग्रेजी सैनिक न पहुँच गये होते तो वहाँ एक विचित्र ही स्थिति होती है। (17/23, 24)

इसी प्रकाकर उग्रत्तर क्रान्तिकारी आन्दोलन देश के प्रत्येक जिले और कोने-कोने में अहर्निश चलाता रहा; न जाने कितनी संख्या में लोगों ने मातृ-भूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। भगतसिंह, बसु, सुखदेव, यतीन्द्रनाथ आदि क्रान्तिकारी हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूल गये तथा अपने प्राणों की आहुति दे दी–

भगतसिंह वसू सुखदेव-सो–हनयतीन्द्र वरा, अथपिङ्गले।
प्रभृतयो यत्यश्च धृतव्रता मरण शूललताश्च चुचुम्बिरे॥ (17/32)

यही नहीं, महान् क्रान्तिकारी लाला लाजपत राय की मृत्यु को हृदय में धारण करके, जलियाँ वाला बाग में निरीह लोगों पर गोली की वर्षा कर भून देने वाले 'जनरल डायर' की क्रान्तिकारी 'ऊधमसिंह' ने इंग्लैण्ड में जाकर हत्या कर दी–

तरुण ऊधम सिंह नृकेसरितः तदनृ वीरावरोऽपि गतो महान्।
बटिशम्यतमे हरविर्षके प्रतिहतः कृपणः स उडायरः॥ (17/37)

सम्पूर्ण भारतवर्ष में सर्वत्र अंग्रेजी शासन के प्रति ऐसे विरोध की आग लग गयी जैसे कोई प्रकृति का प्रलयङ्कारी स्वरूप सर्वत्र दृष्टिागोचर हो। फलतः क्रूर अंग्रेज शासक भी ऐसे प्रयङ्कारी विरोध को देखकर मन ही मन भारत छोड़ देने का संकल्प करने लगे। विषम परिस्थितियों एवं सर्वत्र विरोध के स्वर को देखकर अंग्रेजी शासन के कल्पवृक्ष की जड़ उखड़ने लगीं–

अथ विलोक्य दशां विषमामिमा–मखिल गौरनराः प्रचक्रम्पिरे।
बृटिश शासन कल्पतरुर्महान्–विनिपतन्निव तैस्समललक्ष्यत॥ (17/43)

ब्रिटिश शासकों को अब पूर्णरूपेण अनुभव होने लगा कि यह विशाल भारतवर्ष बहुत ही जागरूक एवं सबल हो गया है। अब इसे गुलामी की जंजीरों में जकड़ा नहीं जा सकता। फलतः भयभीत अंग्रेज शासकों ने विषम स्थिति को देखते हुए शीघ्र ही भारतवर्ष छोड़ने का निर्णय कर लिया–

फलत ऑगलजना भयकोविदाः समनुभूय परां विषमां स्थितिम्।
सपदि हातुमिमां भुवमुद्यताः समभवन् नयतन्त्र विशारदाः॥ (17/49)

क्रान्तिरंग

क्रान्तिरंग नामक 18वें सर्ग लार्ड विलिंग्टन भारत आया। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी के स्थान पर अनुदार दल सत्ता में आयी जिसने भारत के प्रति अत्यन्त क्रूर दमन की कुनीति अपनायी। कांग्रेस के नेताओं पर क्रूर दृष्टि डाली। ''गाँधी-ईरविन समझौते'' को नकारकर कांग्रेसी नेताओं जवाहरलाल नेहरू आदि को कारगार में डाल

लाला लाजपत राय की मृत्यु से सम्पूर्ण देश के स्वाधीनता संग्राम सेनानियों में क्रोधाग्नि भड़क उठी। भारतवासियों में यह चेतना जाग्रत हो गयी कि स्वराज्य के बिना अब शान्ति नहीं अपितु क्रान्ति ही इसके लिए एकमात्र साधिका है (15/10/12)

अथाधुना भारतदेशवासिनाम्, प्रचेतना जागृति भूमिमागता।
विना स्वराज्यं नहि शान्तिरेषाम्, क्रान्तिस्तु तेषामधुनाऽस्ति साधिका॥ (15/12)

पं. मोतीलाल नेहरू आदि राजनीतिज्ञों ने इसका एक मध्यम मार्ग निकालने का विचार किया किन्तु जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस आदि ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप लाहौर नगर में इसकी घोषणा की गयी कि 'पूर्ण स्वराज्य की हर दृष्टि से उपयुक्त एवं हिताकरी है' (15/13-18)–

घोषस्तदाकारि लाहौर पुर्यां, पूर्णं स्वराज्यं हि हितावहं नः॥ (15/15)
लाहौर अधिवेश एवं जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष
जवाहराध्यक्ष पदे स्वराज्य, प्रस्ताव एषो ह्युररीकृतोऽभूत॥ (15/18)
लाहौर देशीय संसुसददोऽसौ, जवाहरोध्यक्ष पदं निकामम्।
सुशोभयामास यदा सुधीरः, तदा त्वयं कस्य न हर्षदोऽभूत्॥ (15/27)

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाया गया तथा इसी अधिवेशन से पूर्ण स्वराज्य की घोषणा के साथ आन्दोलन भी शुरू करने का निर्णय लिया गया। लाहौर अधिवेशन से पूर्व गाँधी जी तथा मोतीलाल जी ने दिल्ली जाकर वायसराय से विचार-विमर्श करके कुछ हल निकालने का प्रयास किया तथा प्रयास व्यर्थ रहा। अन्ततः स्वराज्य की स्वाधीनता के लिए सम्पूर्ण देश में क्रान्ति दावानल की भाँति फैल गई। अनेकों लोगों ने हँसते-हँसते लाठियाँ खाईं, कारावास गये, किसी के चेहरे पर कष्ट के भाव नजर नहीं आते थे अपितु विविध प्रकार की हिंसा, प्रताड़ना तथा दण्ड प्रहार को हँसते हुए आन्दोलन चलाते रहने में लोगों को आनन्द मिलता था। क्रान्तिकारियों ने यह ठान लिया कि (15/18-41)–

मृत्युः स वा स्यात् यदि राष्ट्रहेतोः, स नः कृते स्यादमृतत्वमेव।
स्वराज्य सौख्यन्तु हि भाविसन्ततिः, फलत्वरूपेण च लप्स्यते तत्॥(15/35)
मनोरथो नस्तु च मातृभूमेः, स्वतन्त्रताप्राप्ति रहोऽस्ति मुख्यः।
दिष्ट्या स चेत्पल्लवितो भवेनः, मन्ये तदा तत् फलमेव वाप्तम्॥ (15/36)

'सुभाषाधिकृत' 16वें सर्ग के अन्तर्गत स्वतन्त्रता संग्राम में संघर्षरत जो दिव्य पुरुषों ने अपनी मातृभूमि के लिए बलिबेदी पर मृत्यु से भी नहीं डरे उनमें नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जी जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति शोभायमान होते हैं। बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि सुभाष जी इंग्लैण्ड से आई.सी.एस. परीक्षा पास करने के बाद भारत लौटकर स्वतन्त्रता संग्राम में संघर्षरत हो गए। इसके लिए ही उन्होंने गृहस्थ धर्म भी स्वीकार नहीं किया। अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के प्रयत्न में वे

ततो बृटेनूमन्त्रिगणेन विद्वान्, सम्प्रेषितः क्रिप्समहोदयोऽत्र।
प्रदाय तस्मै किल नव्ययोजनां, महात्मान्धेस्तु विवञ्चनार्थम ॥ (18/36)

क्रिप्स मिशन की नेताओं से बहुविध वार्ता हुई। गाँधी जी आदि नेताओं ने पूर्ण स्वराज्य की माँग की नेताओं ने कहा–"हमें पूर्ण स्वराज्य चाहिए" नहीं तो हम युद्ध करते-करते समरांगण में वीरगति को प्राप्त हो जायेंगे। पूर्ण स्वराज्य के अतिरिक्त किसी भी शर्त को मानने के लिए क्रान्तिकारी नेता तैयार नहीं थे। फलस्वरूप क्रिप्स मिशन को निराश होकर वापस लौटना पड़ा (18/27-43)

पूर्ण स्वराज्यं त्वधुना व्यपेक्षितम् ततो न चोनं खलु वाभिलष्यते।
स्वराज्यमथवा स चा दारुणो रणः, भवेच्च तस्मिन्मरणंरणाङ्गणे ॥(18/39)

× × ×

दृष्टवा त्विदं क्रिप्समहोदयो यं, गतो निराशो निजमातृभूमिम् ॥ (18/43)

क्रिप्स मिशन की निरर्थकता के बाद भी आन्दोलन चलता रहा इसी बीच प्रयाग में महासभा की बैठक हुई जिसमें सभी लोगों ने एक मत से पूर्ण स्वराज्य का स्वर उठाया गाँधी जी ने स्वराज्य को उद्देश्य करके अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया–बिना सर्वस्व त्याग किए स्वतन्त्रता लक्ष्मी को कदापि प्रसन्न नहीं किया जा सकता। कायरों के लिए स्वराज्य नहीं है। यदि सम्मानपूर्वक जीना है तो मृत्यु की परवाह न करके भी स्वराज्य के लिए संघर्ष करना है। जन्म-मृत्यु का यह प्रवाह चलता ही रहता है। भविष्य में कौन जीवित रहेगा, कौन मरेगा यह कोई नहीं जानता। अतः मृत्यु की परवाह किए बिना साम-दाम-दण्ड-भेद आदि नीति का प्रयोग करके तथा दुष्ट के साथ दुष्टता का नीति को अपनाकर हमें आन्दोलन करना है। ("DO OR DIE") "करो या मरो" नारा का हम सभी को दृढ़ व्रत लेकर संग्राम में कूद पड़ना है। जीने, खाना और हँसना अब स्वतन्त्र होने के बाद ही हमें मिलना है (8/44-56)–

ततो महा संसदि सर्वमत्या, प्रयागराजे पारिपारितश्च।
प्रस्तावकः सातिशयः पुनस्तं, क्रियान्वितं कर्तु मथोद्यताश्च ॥ (18/56)

× × ×

"डू ऑर डाई" ति महाव्रतं, स्यात् अस्माकमेकं हि दृढ़व्रतानाम्।
जीवामि खादामि हसामि, यद्वा किञ्चद्भवेद्दास्यविमुक्तये तत् ॥ (18/56)

इसके पश्चात् प्रासङ्गिक-दिल्ली-नगर-वर्णनं नामः एककोनविंशतितमः सर्गः में दिल्ली नगर के ऐतिहासिक सौन्दर्य एवं महिमा का वर्णन 68 श्लोकों में वर्णित है।

स्वराज्याभिषेके

उपर्युक्त बीसवें सर्ग में देश के स्वाधीन होने के समय ही इसके विभाजन के

स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों में अग्रणी भगतसिंह एवं वीरवर यतीन्द्र ने मातृ-भूमि की रक्षा के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया (17/2, 3) "साइमन कमीशन" के विरोध में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय को शत्रुओं ने मौत के घाट उतार दिया और वे स्वर्गलोक सिधार गए।

लाला लाजपत राय के हत्यारे साण्डर्स की भगतसिंह ने गोली मारकर हत्या कर दी। पुनः राजगुरू, भगतसिंह, चन्द्रशेखर, बटुकेश्वर दत्त आदि वीरों ने राजसभागार में बम फेंकने का निश्चय किया–

तदनु राजसभानिलये गतौ भगतसिंह सुधीबटुकेश्वरौ।
विषमबम्बवरो ह्युलका इव गगनतो बलवद् विनिपातितः॥ (17/11)

निर्णय के अनुसार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने बम फेंका। सभागार में भगदड़ मच गयी किन्तु भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दोनों वहाँ से भागे नहीं अपितु स्थिर-चित्त वहीं खड़े रहे तथा सभागार में इकट्ठे सम्पूर्ण लोगों को सम्बोधित करते हुए बोले–

न हि वयं परहिंसनशालिनः भरतभूमिसुताः यमपालकाः।
परमिमां हि कुनीतिततिं भुवः तिरयितुं तु हि नोऽस्ति समुद्यमः॥ (17/14)

ऐसा कहकर समुन्नत कन्धों वाले दोनों वीर स्थिर-चित्त वहीं खड़े रहे। पुनः अंग्रेज पुलिसकर्मियों द्वारा हथकड़ी में बाँध लिये गये इन्हें लाहौर जेल में रखकर इन पर मुकदमा चलाया गया। अन्ततः दोनों वीरों को प्राणदण्ड की सजा दी गयी–

भगतसिंह महानतिभासुरः स खलु राजगुरूरविभास्करः।
उभयवीरवरौ जननीप्रियौ मरणदण्डविधा प्रतिदण्डितौ॥ (17/19)

इसके पश्चात् अंग्रेज सैनिकों ने चन्द्रशेखर को पकड़ने के लिए अपने सम्पूर्ण प्रयत्न कर डाले किन्तु वे अंग्रेजों के हाथ न लग पाये। दुर्भाग्यवश एक आदमी की गुप्त खबर के द्वारा चन्द्रशेखर इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अंग्रेजी सेना द्वारा घेर लिए गए। घमासान युद्ध के उपरान्त पुलिस की गोली से आहत क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर वीरगति को प्राप्त हो गए–

अथ गृहीतुमलं विधुशेखरं समभवन् रिपवो न परिवृढाः।
नयपरो रिपुपाशविशेषतः समुदमन्तरधाद्विधिनोद्धटः॥ (17/20)
परमहो पुनरेव विधेर्वशात् अलहबादगतेल्फ्रडरपाके।
नृपजनैरभितस्तु समावृतः उभयपक्षात् एवं मिथाद्भूतम्॥ (17/21)
तुमुलयुद्धमभूच्च परस्परं, पुलिसगोलिकया प्रहतः परम्।
समुदमेष लिलिङ्ग मृत्तिंस्तदा विषहते न भटः परबन्धनम्॥ (17/2)

सम्पूर्ण देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन की जैसी आग सी लगी थी। वीर

में विभक्त है, जिनमें से पूर्व-भाग में अन्त के दो छन्दो (एक दोहा और दूसरा अनुष्टुप्) को छोड़कर 245 जोड़े 'सार' छन्दो और उत्तर-भाग में दोहा और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग है। पूरे महाकाव्य की छन्द संख्या 682 है।

प्रकृत महाकाव्य अन्तविभाजन की दृष्टि से एक अनूठा महाकाव्य है जिसमें सर्गों के स्थान पर कथावस्तु के संदर्भों का स्थान-स्थान पर शीर्षोल्लेख है। पूर्व-भाग में जन्म से लेकर गाँधी जी के बाल-जीवन, शिक्षा-दीक्षा, अफ्रीका का राजनीतिक जीवन, स्वदेश में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व और स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त प्राणोत्सर्ग तक की कथावस्तु का प्रावाहिक और क्षिप्रगतिक काव्योपन्यास है। उत्तर-भाग में गाँधी जी के विचारों के कुछ अंश काव्योपनिबद्ध हैं।

महाकाव्य का समारम्भ कवि इन पंक्तियों से करता है–

"जयति विजयते भारतमाता सकललोककल्याणी।
जगदबन्ध यत्तनय गान्धिगाथां गायति युगवाणी॥" [1]

ऐसे गाँधी जी परतन्त्रता की नारकीय यातना के बदले स्वतंत्रता का सौख्य लोगों को उपलब्ध कराने के प्रयास में स्वदेश के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिये[2], पुनश्च–

"गाँधिमहात्मा य ऐश्वर्यमयसुखतो विधृतविरागः।
राष्ट्रपिताकृत नग्नबुभुक्षितपीडितजनानुरागः॥"[3]

राष्ट्र-प्रेम से आपूर्ण हृदय गाँधी[4] जो सर्वात्मना राष्ट्र को समर्पित थे–'जन्मकृतित्वं वाऽपि समस्तं देशनिमित्तं यस्य"[5] जिसके राजनीति कोमल मानवीय भावों से मसृण थी[6], जिन्होंने बिना रक्तपात के स्वराज्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया[7], राष्ट्र-भूमि के कण-कण में जिनकी स्मृतिज्योतिष्मती है[8] जिससे देशभक्तिपूर्ण आचार सम्पादन में सन्तत स्फूर्ति मिलती है,[9] जो न केवल भारत के प्रति प्रत्युत–"निखिल भूतहित निरत कृतियों जगत् प्रेरण स्रोतः"[10] रहे है ऐसे मानव मात्र के शुभैषी, पुणयस्मरण गाँधी के गुणगान से युगवाणी धन्य है,[11] और ऐसे सुपुत्रों से भारतामाता गौरवान्वित है।[12]

गाँधी जी का राजनीतिक जीवन ही हमारे राष्ट्र को जीवनीय शक्ति प्रदान नहीं करता प्रत्युत बाल्यकाल से लेकर वयः प्राप्ति तक के उनके अनेक गुण और मूल्य-बोध हमारी प्रेरणा के लिए हैं। जैसे गाँधीजी यद्यपि पढ़ने में बहुत अच्छे न थे,[13] परन्तु इसके लिए उन्होंने अपने अध्यापको के सम्मुख असत्य-भाषण,[14] और नकल करना,[15] उचित नहीं समझा इसी प्रकार भाई द्वारा लिये गये ऋण का शोधन करने के लिए घर में चोरी फिर उसके लिए पश्चात्ताप और प्रायश्चित,[16] दुर्व्यसनों का त्याग,[17] और विदेश में रहते हुए भी माँ के वचनानुसार कुसंगति से प्रभावों से सुरक्षित रहना,[18] आदि उनके जीवन के ऐसे प्रसग हैं जो हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के लिए परमोपयोगी हैं।

दिया। इंग्लैण्ड से लौटकर गाँधी जी ने विलिंगृन को एक पत्र इस सन्दर्भ में लिखा किन्तु उनके पत्र का तिरस्कार करते हुए उनको भी पागल शासकों ने जेल में बन्द कर दिया।

गाँधी जी जवाहरलाल नेहरू आदि के बन्दी हो जाने से सम्पूर्ण देश में क्रान्ति की आग पुनः दो गुनी लग गई। विलिंगृन ने भी अपनी क्रूरता, बर्बरता एवं अत्याचार को दो गुनाकर दिया। क्रान्तिकारियों ने अपना संघर्ष जारी रखा। अन्ततः "गाँधी-इरविन पैक्ट" हुआ –

ईरविन स लार्डोऽपि, विलोडितो भूत् स्वान्ते च तत्क्रान्तिरयं प्रभावात्।
गाँधीरविन् पैक्टमिति प्रसिद्धम् सिद्धिंगतं चारु विनम्रभावैः ॥ (18/18)

किन्तु स्वार्थ मदान्ध अंग्रेज शासकों ने इस पैक्ट को तोड़कर अपने अत्याचार का ताण्डव शुरू कर दिया। प्रजाजनों में पुनः रोष की प्रलयाग्नि भड़क उठी और सारे क्रान्तिकारी तिरंगा झण्डा लेकर जयघोष करते हुए निकल पड़े। भारतमाता की जयघोष सुनकर दुष्ट अंग्रेज आश्चर्यचकित हो गए–

ध्वजं त्रिरंग स्फुरितं विलोक्य, जयध्वनि चाकर्ण्याऽति निर्भयम्।
स्वमातृभूमेर्धनगर्जना चाकर्ण्या, आङ्गला भृशं कौतुकवन्त आसन् ॥ (18/23)

महात्मा गाँधी ने अपने सत्याग्रह आन्दोलन को अत्यन्त उग्रत्तर बना दिया जिससे अंग्रेज अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। इस सत्याग्रह आन्दोलन में **महामनीषी आचार्य विनोबा भावे** तथा अनेक नर-नारी कूद पड़े इसी बीच द्वितीय विश्वयुद्ध हो गया जिसने सत्याग्रह आन्दोलन को और तीव्र कर दिया तथा क्रान्तिकारियों को आजादी के सन्निकट लाने की स्थिति उत्पन्न कर दी। इस सत्याग्रह आन्दोलन की उग्रता को देखकर क्रूर अंग्रेजों ने विषम परिस्थिति से निपटने के लिए अनेक लोगों को जेल में डाल दिया तथा मदान्ध होकर गोलियों की वर्षा करा दी जिससे अनेक क्रान्तिकारी घायल हुए तथा बहुत से वीरगति को प्राप्त हो गए, स्वातन्त्रता के मद में चूर क्रान्तिकारियों ने पीछे मुड़के नहीं देखा। सम्पूर्ण देश में सर्वत्र क्रान्ति की महाग्नि को देखकर लार्ड इरविन ने "गोलमेज सम्मेलन" का आयोजन किया जिसमें साम्राज्यवादी षड्यन्त्र की चाल चली गयी (18/23-32)–

लार्डेरवीनस्य च याञ्चयाऽसौ गतो ही रौण्ड्टेबलसंसदिप्रधीः।
साम्राज्यवादिप्रमिङ्गलजनां विज्ञाय षड्यन्त्रयं कुचक्रम् ॥ (18/32)

इंग्लैण्ड से निराश होकर अब गाँधी जी लौटे तो एक तरफ स्वतन्त्रता आन्दोलन चल रहा था और दूसरी ओर अस्पृश्यता आन्दोलन। गाँधी जी ने अस्पृश्यता आन्दोलन का शमन करते हुए स्वतन्त्रता आन्दोलन को पुनः तीव्र गति प्रदान की किन्तु इसी बीच इंग्लैण्ड से "क्रिप्स मिशन" वार्ता के लिए भेजा गया (18/33-36)–

गाँधीजी ने अहमदाबाद के पास कोचरब ग्राम में एक सत्याग्रह आश्रम की स्थापना करके यह नियम बना दिया कि सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और शरीर-श्रम का सम्पादन करने वाला अस्पृश्यादि कोई हो यहाँ रह सकता है।[32]आश्रम में अस्पृश्यों के वास को लेकर आश्रम के लिए सहायता देने वाले कुछ लोग असंतुष्ट हो गये और सहायता देना बन्द कर दिया इस पर उस महामानव, जिसकी दृष्टि में तुच्छ सामाजिक रूढ़ियों से बढ़कर सम्पूर्ण राष्ट्र था, ने कहा–

''.....वित्त कारणात् स्वीयम्,
सिद्धान्तं न वयं त्यक्ष्यामों लक्ष्य वा मनुजीयम्
अश्पृश्यानां वसितमेत्य वत्स्यामस्तत्र च वयमपि,
श्रमिक वृत्तितः स्वदेशसेवां करष्यामि आः स्वयमपि ॥[33]

गाँधीजी न केवल अंग्रेजी-शासन से देश को मुक्त करने के पक्ष में थे, प्रत्युत स्वदेशीय और विदेशीय सब प्रकार के शोपण और परवशता के विरुद्ध और सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। चम्पारन और खेड़ा के कृषकों[34] तथा अहमदाबाद के श्रमिकों के[35] हित के लिए गाँधी जी के संघर्प इसके प्रमाण हैं।

राष्ट्रिकों (जनता) में जब अपने राष्ट्र के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है, तो उसके लिए अपने सारे स्वार्थों का वलिदान सरल हो जाता है। शासन द्वारा लादे गये 'रौलेट ऐक्ट' का हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सभी धर्मावलम्वियों ने अपनी-अपनी पृथक् अस्मिताओं को भूलकर एक साथ विरोध किया तथा भारत देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।[36]

जलियाँवाला बाग नृशंस-काण्ड[37] के बाद 1920 ई. के कलकत्ता के कांग्रेस के अधिवेशन में गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा जो सर्वसम्मति से पारित हुआ[38] जिसके अनुसार वकीलों ने न्यायालय और विद्यार्थियों ने राजकीय शैक्षिक संस्थाओं का बहिष्कार किया।[39] राष्ट्रवादीजन ने शासन से प्राप्त उपाधियाँ वापस कर दीं।[40] पूर्ण राष्ट्रीय स्वावलम्बन के ध्येय से गाँधी जी के सूत्रयज्ञ अभियान के अनुसार घर-घर में खादी-वस्त्रों का उपयोग होने लगा।[41] विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जाने लगी।[42] राष्ट्रीय चारित्र्य के निमित्त मद्य-निषेध अनिवार्य घोषित कर दिया गया[43] राष्ट्रीय ऐक्य के लिए अस्पृष्यता निवारण को गाँधी जी ने प्राथमिक राष्ट्रीय कार्यों में सम्मिलित किया[44] उस समय राष्ट्रीय स्वाधीनता-प्राप्ति की एकोद्देश्यता से राष्ट्रिकों में ऐसा ऐक्यभाव उमड़ा कि सारे भेद तिरोहित हो गये। कवि के शब्दों में–

''हिन्दु-मुस्लिमौ विना भेद-भाव सम्मिलितौ जातौ,
स्वाभिमानराष्ट्रप्रेमाणौ जागरितौ संजातौ।''[45]

× × ×

''चिकित्सकप्राध्यापककृषकव्यवसायिश्रमिका अपि

लिए भी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं कायदे आजम जिन्ना ने मुसलमानों के लिए एक अलग राज्य पाकिस्तान की माँग की तथा हिन्दुओं के लिए भारतखण्ड को स्वीकार किया। गाँधी जी इस विभाजन से दुःखी हुए तथा इसे अस्वीकार किया किन्तु अन्ततोगत्वा इसे स्वीकार ही करना पड़ा (20/1-6)

मुस्लिमकृते पाकिसतानमेकं, हिन्दूकृते खण्डित भारत च।
विभाजने स्वीकृतमेव नूनम्, मुदाह्यभाभ्यां निजराज्येहेतोः ॥ (20/3)
परं स गांधी तू विरुद्धआसीत् विभाजनस्यास्य विनाशकस्य।
"विभाजनं देशतरो र्हिमूले, कुठार घातो विकटः" स आह ॥ (20/4)

देश के विभाजन के साथ ही वह शुभ घड़ी भी आ गयी जब अंग्रेजी राज्य का सूर्य अस्त हो गया और पन्द्रह अगस्त को देश आजाद हो गया। पं. जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री पटेल जी गृहमन्त्री हुए (20/4-19)–

तदेतदायोजन माकलय्य विभाजनं जात महाह्यशल्यम्
आगस्तके पञ्चदशै दिनाङ्के सोऽस्तङ्गतश्चाङ्गलराज्यभानुः ॥ (20/9)

× × ×

पुनरहो शुभ निश्चित वासरे ब्रिटिश शासन चक्र धुरन्धरैः।
श्रुति विधान पुरसरमन्ततो सुभग राज्यपदं हि समर्पितम् ॥ (20/16)

× × ×

शुभमूहर्त्तयुते वरवासरे नव निशीथ गते विमले पले।
मुकुट शोभित भाल जवाहरः प्रमुख मन्त्रिपदे समलङ्कृतः ॥ (20/17)
स च पटेल पदाङ्कित वल्लभः सममवद् गृहमन्त्रि पदे स्थितः।
परिवृढश्च दृढः प्रतिशासने नयविदसरः प्रखरो महान् ॥ (20/18)

2 गान्धिगाथा (पूर्व एवं उत्तर भाग)

गान्धिगाथा महाकाव्य के रचनाकार आचार्य मधुकर शास्त्री का जन्म जयपुर के एक छोटे से ग्राम में एक सामान्य ब्राह्मण परिवार में 15 जून, सन् 1931 ई. में हुआ था। आपके बचपन का नाम नाथूलाल द्विवेदी था। 'मधुकर' नाम आपनी रचनाओं से प्रभावित होकर आपके गुरु ने दिया था। आपने वाराणसी और जयपुर से व्याकरणशास्त्री, साहित्याचार्य और मीमांसाचार्य की उपाधियाँ लीं तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'साहित्य रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण की सम्प्रति आप राजस्थान सरकार द्वारा संचालित 'राजस्थान प्राच्य विद्या शोधप्रतिष्ठान' के कोटा क्षेत्रीय कार्यालय के प्रभारी अधिकारी पद पर सेवारत हैं। संस्कृति साहित्य के प्रति समर्पित जीवन जीने वाले मधुकर ने लगभग 20 मौलिक कृतियों की सर्जना की है।

'गान्धिगाथा' महाकाव्य पूर्व भाग-जीवनदर्शन और उत्तर-भाग-गाँधीवाणी, दो-भागों

दिल्ली आकर गाँधीजी ने अपने जीवन का हविर्दान करके हिंसा और साम्प्रदायिकता की अशमनीय अग्नि का शमन किया।[57]

युग-पुरुष गाँधीजी के जीवन से तो भारत की श्रीवृद्धि तो हुई ही उनके कृत्यों का आदर्श युग-युगों तक मानवता के लिए ज्योतिः स्तम्भ सिद्ध होगा।[58]

महात्मा गाँधीजी के उपदेश कोरे उपदेश नहीं प्रत्युत अनुभव की कसौटी पर से खरे उतरे हुए जीवित आदर्श हैं। गाँधीजी की राष्ट्रीयता की भावना अखिल मानवीय संवेदना से आसिक्त थी। इसलिए जहाँ उन्होंने देश-भक्ति की बात की, कहा–

''देशभक्तिमनुष्रूस्य सर्वतः प्रथमो गुणः।
ऊर्ध्वशीर्षो विना येन संसारे कोऽपि नो चलेत् ॥[59]

और इस प्रकार जहाँ स्वदेशीय से अनुराग का उपदेश दिया[60] वहीं अहिंसा,[61] उपकार[62] और सत्य[63] पर उनकी दृढ आस्था से सम्पूर्ण मानवजाति की हित-साधना का संदेश मिलता है। उनका अभिमत समाजवाद 'सर्वोदय'–समाज के सभी लोगों के अभ्युदय विषयक था।[64]

साम्प्रदायिक राष्ट्रीय प्रगति के लिए भी गाँधीजी के संदेशों की अनर्घता है। गाँधी जी ने मादक वस्तुओं के सेवन को पतनकारी कहकर उनके पूर्णनिषेध पर बल दिया।[65]

सन्तति-नियन्त्रण की समस्या के समाधान के लिए उन्होंने राष्ट्रीय और आत्मिक हित के लिए संयम को कृत्रिम उपायों के श्रेयान् बताया।[66]

समाजगत उच्चता-नीचता की भावना गाँधीजी की दृष्टि में अत्यन्त ग्रहणीय थी।[67] अस्पृश्यता के लिए तो उनका कहना था–

''अस्ति कलंकोऽस्पृश्यता हिन्दुत्वस्य सदैव।
यदा विनंक्ष्यति सोऽयमिह कल्याण तु तदैव ॥''[68]

गाँधीजी संस्कृत-भाषा के राष्ट्रीय महत्त्व से पूर्ण-परिचित थे। वह कहते थे–संस्कृत पढ़े बिना कोई अपने को भारतीय कहता है तो उसका कथन मिथ्या है।[69]

गाँधी जी ने जन्मतः गुजराती भपा-भाषी होते हुए भी राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए आजीवन तपस्या की[70]–उसका सबल समर्थन किया।[71] हिन्दी की राष्ट्रीय महत्ता का रहस्य उन्हें ज्ञात था। उन्होंने जीवनपर्यन्त अपने इस विश्वास को स्वर दिया–

''.................राष्ट्रोन्नतिरिह सदैव भवितुं योग्या,
स्वराष्ट्र भाषा पदमुत्कृष्टं प्रास्यति यदा मनोज्ञा।
सा च विधत्ते हिन्दी नूनं जन-जन पावन-वाणी
यद् द्वारा हार्द व्यनक्ति भारतमाता कल्याणी।।''[72]

सत्यानुराग, परसेवाभाव, अचौर्य, निश्छलता और अनृशंसता आदि सभी धर्मों के सर्वनिष्ठ गुण हैं, यह रहस्य आरम्भ से ही गाँधी जी पर खुल चुका था, परिणामतः उनमें सर्वधर्म समभाव वाली मानसिकता का निर्माण हो सका।[19]

अफ्रीका प्रवास में गाँधी जी के चेतनादायी राजनीतिक जीवन का आरम्भ हुआ जहाँ अंग्रेजों के कटु-व्यवहार से उनमें विद्रोह की भावना उद्‌बुद्ध हुई।[20] डरबन न्यायालय से स्वदेशीय वेश-भूषा के कारण बहिष्कृत होने पर सर्वप्रथम उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान को ठेस लगी, जिसका उन्होंने प्रबल विरोध किया।[21] फिर तो गाँधीजी राष्ट्र-भक्ति और साहस की परीक्षाओं का जैसे तारतम्य -सा बँध गया। प्रिटोरिया में प्रथम श्रेणी के टिकट से जाते हुए अंग्रेज सहयात्री का सापमान यह कथन कि[22]—

"कृष्णकाय! झटिति त्वं गौरांगोचित यानादपसर,
प्रथम श्रेणी कथं स्थितस्त्वं भारतीय रे निरस्सर ॥

और फिर बलपूर्वक डिब्बे से बहिस्कार[23] ऐसी ही घटना थी, जब घोर शीत ऋतु की रात्रि को प्लेटफार्म पर बिताते हुए गाँधी को अपने राष्ट्र के अपमान की दुःखद अनुभूति हुई।[24] इसी प्रकार अनेक बार और अनेक प्रकार से अपमानित गाँधी जी ने अन्याय के प्रतिकार का संकल्प कर लिया।[25] इस उद्योग में 'नेटाल इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना और उसके माध्यम से प्रवासी भारतीयों के मताधिकार को पुनः प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।[26]

दूसरी अफ्रीका यात्रा के समय क्रुद्ध अंग्रेजों ने गाँधी जी पर आक्रमण कर दिया। ब्रिटिश-शासन ने समाचार से अवगत होकर इंग्लैण्ड से नेटाल सरकार को आदेश भेजा कि आक्रमणकारियों को दण्डित किया जाय,[27] किन्तु गाँधी जी ने अपने अहितकृज्जनों को भी निरपराध घोषित कर अंग्रेजी शासन को नतमस्तक बना दिया।[28]

दक्षिण अफ्रीका में 'बोअरयुद्ध' और 'जुलू-विद्रोह' के समय बिना किसी भेद-भाव के गाँधी जी की सेवा[29] उनके मानवता-प्रेम के साथ हममें उन जैसे राष्ट्र-पुरुषों से राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना जागृत होती है।

हर प्रकार के अत्याचार और अन्याय का विरोध गाँधी जी ने अपना मिशन बना लिया भारतीय श्रमिकों पर दक्षिण-अफ्रीका की सरकार के अत्याचारपूर्ण कानून का प्रतिरोध करते हुए गाँधीजी ने घोर यातनाएँ सहीं और अन्ततः वे न्याय प्राप्त करने में भी सफल रहे।[30]

गाँधीजी कहते थे—कोई जन्म से छोटा नहीं होता, उनके अनुसार—

"लघुत्वसौ यश्चौर्य कुरते मिथ्या वदति च दोषी।
स्वार्थसिद्धिये योऽन्यान व्यथन्यान व्यथयति नित्यं दुर्गुणपोषी ॥[31]

अथेदृशी सा जननीव वत्सला—भिनन्दिता भारतमातृभूरियम्।
जयत्यमन्दं शरदिन्-चन्द्रिका—विलासहासैरिव सिञ्चती भुवम्॥ (1/11)

भारत देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जिन देशभक्तों ने लोह-शृंखला में बँधकर जेल जाकर विषम जीवन व्यतीत करते हुए अपना तन-मन-धन सब कुछ समर्पित कर दिया उनके प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट किए गए हैं और उनके चरितगान की राष्ट्रीय उपादेयता भी दर्शायी गयी है (1/3-16)

तथाविधानां चरितं महात्मना—मुदार बुद्धि-व्यवसायबोधकम्।
प्रगीय पुण्यास्पद-लोक-दर्शनं, प्रदर्शयन्ते कवयः कृतज्ञताम्॥ (1/16)

कवि का यह विश्वास है कि जनता में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए राष्ट्रभक्तों के चरित का वर्णन किया जाना चाहिए—

न चेतवृत्तं किल राष्ट्रभावना-प्रदर्शिनी काव्यकलेवराश्रिता।
कथेयमादर्शनचरित्रपद्धतेर्विभर्ति कालत्रितपयेऽपि गौरवम्॥ (कथामुखम् 14)
कवेश्चरं मानसमन्यथनोद्धतं रसार्द्रमेतन्नवनीतमोदकम्।
यथा भवेल्लोकमनोहरं तथा, तनोतु चित्ते नवराष्ट्रचेतना॥ (कथामुखम् 16)

कवि की इस कृति के निर्माण में भी यही राष्ट्रीय चेतना मूल कारण बनी है—

न राजनीत्या न दलप्रसंगतो, विशुद्धचारित्र्यगुणप्रभाविता।
मतिर्मदीया नवराष्ट्रचेतना-प्रसारि वंशस्य कथामुदाहरत्॥ (कथामुखम् 14)

यही कारण है कि वि ने अपने चरितनायक श्री जवाहर लाल नेहरू के अधिकांश बालोचित्त कार्यकलाप में साहसिक उत्प्रेक्षाएं न करके भारत देश की स्वतंत्रता हेतु राष्ट्रीय भावनापरक उद्भावनाएं ही की हैं। उसने अपने देश की स्वाधीनता को तीव्रता (जब) से आहरण करने के भावी गुण के आधार पर ही उनके नाम जवाहर की उद्भावना की है—

स्वाधीनतां देशकृते जवेना—हरिष्यतीति ग्रह-गोचरज्ञैः।
विचार्य विद्वद्भिरलङ्कृतोऽसौ बालो भिधेयेन जवाहरेण॥ (2/16)

उनके बड़े होने के प्रसंग में कहा है कि "वहाँ माता की गोद से उतरकर मातृ-भूमि की गोद में आ बैठे—

शनैः-शनैः सञ्चित-शक्तिरङ्काद् मातुर्ययौ मातृभुवः प्रियाङ्कम॥ (2/17)

उन दिनों वह घुटनों के बल इसलिए चलते थे मानो मातृभूमि को वन्दनीया होने के कारण पैरों से नहीं छूना चाहते थे

श्रद्धानताङ्गो जन-वन्दीयां-स्प्रष्टुं धरां पादतलैरवाञ्छन्।
इतस्ततो मोदभरं वितन्वन् चचार दोर्जानु-चलने बालः॥ (2/18)

जातिधर्मगतभेदविहीना अधना वा धनिका अपि।
राष्ट्रपताकाछायायां सर्वेऽपि जनास्संघटिताः
क्रान्तिरश्मयो भारतभूमेः कणकणतः संस्फुटिताः॥"[46]

राष्ट्रीयान्दोलन के उग्र क्रान्तिकारी और सत्याग्रही दोनों में से किसी का राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने में कम योगदान नहीं रहा परन्तु गाँधीजी का शमप्रधान मार्ग अधिक वांछनीय और निरापद रहा। 'चौरी-चौरा काण्ड' के उपरान्त गाँधी जी के प्रायश्चित्त, अनशन और आन्दोलन-स्थान से मानवता के हताहतों के प्रति उनकी अमेयकरुणा प्रकट होती है।[47] गाँधीजी किसी राष्ट्र के भस्मावशेष पर अपने राष्ट्र की मुक्ति और समृद्धि नहीं देखना चाहते थे।

एकवस्त्रा एक निर्धन स्त्री को देखकर गाँधीजी करुणाभिभूत हो उठे उसे अपना उत्तरीय दे दिया[48] और प्रतिज्ञा की कि जब तक सम्पूर्ण देशवासियों को पहनने को पूरे वस्त्र उपलब्ध न होंगे मैं स्वयं स्वल्पवस्त्रों से जीवनयापन करूँगा।[49] गाँधी जी ने अंग्रेजी शासन के अन्यायपूर्ण 'नमक कानून को तोड़कर करोड़ों भारतीयों में अन्याय के प्रति असहिष्णुता की चेतना जागृत कर दी।[50] उन्होंने लंदन के गोलमेज-सम्मेलन' में स्पष्ट रूप से राष्ट्र के अभीष्ट पूर्ण स्वातंत्र्य का जयघोष किया।[51] अंग्रेजी शासन ने देश को टुकड़े-टुकड़े करने के दुरुद्देश्य से हरिजनों के पृथक् निर्वाचन का निर्णय लिया किन्तु दूरदर्शी महात्मा गाँधीजी ने अनशन की कृच्छ-तपस्या के बल पर राष्ट्र की एकता के कोमलतंतु की रक्षा की।[52] उन्होंने हरिजनों के कल्याण के लिए योजनाओं का सूत्रपात किया।[53]

कलकत्ता, विहार और युक्त-प्रान्त के साम्प्रदायिक दंगों में असंख्य हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक रक्तपात से गाँधीजी मर्माहत होकर रह गये। उन्होंने घर-घर गाँव-गाँव खान अब्दुल गफ्फार खाँ के साथ जाकर कलह-ज्वाला का शमन किया।[54]

इस प्रकार गाँधीजी के उपर्युक्त सभी कार्यों का उद्देश्य मात्र एकजुट होकर अंग्रेजी शासन से संघर्ष करना तथा देश को गुलामी के चंगुल से छुड़ाकर स्वतंत्र बनाना था।

15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र हुआ। इधर भारत का स्वराज्योत्सव मनाया जा रहा था और उधर कुछ पाकिस्तानी मतान्धों द्वारा हिन्दुओं का संहार हो रहा था जिसकी प्रतिक्रिया भारत में भी हो रही थी।[55] महात्मा गाँधीजी जिनके हृदय में न केवल हिन्दू-मुसलमानों अपितु मानवमात्र के प्रति अवर्ण्य करुणा का परिवार हिलोरें ले रहा था स्वराज्य-उत्सव में न सम्मिलित होकर उस समय कलकत्ता की आर्तबस्तियों में डेरा डाले थे।[56]

(3/10)। देश की स्वाधीनता के लिए अपने मान-सम्मान एवं सुख-समृद्धि को तिलांजलि देने की शिक्षा दी गयी है। यही कारण है कि जब गाँधीजी ने अंग्रेजों के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन के लिए पूरे देश का आह्वान किया तो विदेशों में भी व्यवसायरत लोग अपने देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध करने हेतु आ गए तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष के किसान, मजदूर तथा आबाल-वृद्ध वनिता सभी इस आन्दोलन में सम्मिलित कर विदेशी वस्त्रों एवं वस्तुओं के परित्याग तथा स्वेदशी अपनाओ के साथ आन्दोलन में सक्रिय हो गये (4/1-6)–

यदा घनोत्पीड-शोषणेन, कदर्थितान्, मोहनदासगाँधी।
सत्याग्रहान्दोलनमाग्रहीतुं जनानसौ भारत आजुहाव ॥ (4/3)
तदा विदेश-व्यवसाय-बन्धैः, स्वदेश-निर्माणकृते प्रबन्धः।
अहिंसया सत्यपथं प्रयातु–मभूज्जनानां निचयेऽनुबन्धुः ॥ (4/4)
तस्योपदेशमुदिताः कृषकाः समन्ता–दान्दोलनैरसहयोगमुपानयन्तः ॥ (4/5)

× × ×

आतङ्किता अपि विदेशविनिर्मितानि,
वस्त्राणि वस्तुनिचयान् मनुजा अधाक्षुः ॥ (4/6)

जलियाँ वाला बाग में स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत निरीह देशप्रेमियों की निर्मम हत्या ने नेहरूजी के चित्त को अत्यन्त विदीर्ण कर दिया, फलस्वरूप वे भी गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़े (4/7,8)–

देशव्रते कृतमतीन 'जलियानबालो'–द्यानेहतान् ननु निरीह-जनान् विलोक्य।
चेतोप्यदूयत मलेन जवाहरस्य, सन्तः, स्वभाव पर-दुःख कथा-कदर्याः ॥ (4/7)

× × ×

सत्याग्रह कृतमतिर्धृति मादधानो–वीरो जवाहरवरोऽपि समुद्यतोऽभूत ॥ (4/8)

इसी सन्दर्भ में आगे कवि ने देश की पराधीनता में स्वर्ग-सुख को भी हेय बताया है। अपनी भारत-भूमि को पराधीनता की शृंङ्खलाओं से मुक्त कराने के कर्त्तव्य को सर्वोपरि सिद्ध किया है। पराधीन जीवन को व्यर्थ बताया है। देश की स्वाधीनता हेतु शहीद हो जाने को ही जीवन की सार्थकता माना है। राष्ट्र के स्वाभिमान की प्राप्ति और रक्षा के लिए बद्धपरिकर होने की मध्य स्वाधीनता संग्राम के विषय में बहुत गम्भीर वार्ता भी हुई है। (4/10-30)।

कवि ने इस ऐतिहासिक सत्य का भी बड़ी ही स्फूर्ति के साथ वर्णन किया है कि अपने राष्ट्र की सत्ता, सम्मान और स्वतंत्रता के लिए यहाँ के देशभक्तों ने तन-मन-धन समर्पित कर दिया। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड में अंग्रेजों के अतिनृशंस अत्याचार का धैर्य के साथ मुकाबला किया–

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी के जीवन का प्रतिक्षण और चिन्तन का प्रत्यणु, राष्ट्र और राष्ट्रीय स्वाधीनता हित को समर्पित था, जो 'गाँधिगाथा' महाकाव्य में प्रस्फुटित है। गाँधी के चरित और उनके आदर्शों का वह प्रस्फुटन महाकाव्य के आदर्शोन्मुख स्वभाव के कारण बहुत प्रभविष्णु सिद्ध नहीं हो पाया है। यह तथ्य अब स्पष्ट हो गया है कि जिस सत्य अहिंसा, सर्वधर्म समभाव जैसी मानवीय अपेक्षाओं को सामने करके गाँधीजी जी रहे थे तथा जिसके द्वारा ही भारत देश को स्वाधीनता मिली वे गाँधी जी के अतिरिक्त अन्य के लिए उन्हीं के समय कोरे आदर्श बनने लगे थे। कट्टर हिन्दुओं और मुसलमानों के संगठन द्वारा गाँधी की जीवन शैली के अस्वीकार, भीमराव अम्बेडकर जैसे चिन्तकों और राजनीतिवेत्ताओं द्वारा विवशता के अंशतः स्वीकार, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जो उनके आदर्शों को जीवन में ढालने के हामी रहे, ऐसे ही आचार्य कृपलानी जैसे चिन्तकों का प्रतिपाद संघर्ष और सत्ता से दूर से दूरतर होते जाना आदि इसके साक्ष्य हैं।

3. नेहरूयशः सौरभम् : (12 सर्ग)

पाँच सौ अस्सी पद्यों सहित कुल 12 सर्गों में विभाजित गोस्वामी श्री बलभद्र प्रसाद शास्त्री रचित यह एक महाकाव्य है, प्रारम्भ में 'काव्यकथामुखम्' शीर्षक के अन्तर्गत 22 तथा अन्त में 'कविपरिचय' शीर्षक के अन्तर्गत छः पद्यों को मिलाकर कुल 28 अतिरिक्त पद्य भी कविकृत पाये जाते हैं। इस महाकाव्य के रचयिता श्री शास्त्री जी सकाहा, जनपद हरदोह (उ.प्र.) के निवासी हैं। 12 वर्ष तक शिक्षा विभाग में अध्यापन करने के पश्चात् 1961 ई. से उत्तर प्रदेशीय सामुदायिक विकास सेवा में खण्ड विकास अधिकारी के पद को अलंकृत कर रहे हैं। आपने अपने इस काव्य का प्रकाशन 1975 ई. में स्वयं कराया है।

प्रस्तुत महाकाव्य में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय पं. जवाहर लाल नेहरू के समग्र जीवन-चरित को अत्यन्त मनोहारी काव्य-शैली में वर्णित किया गया है। इसी चरित-वर्णन के अन्तर्गत कवि ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न घटनाओं का भी बहुत सजीव चित्रण भी पदे-पदे किया है। मंगलाचरण के श्लोक में ही कवि ने भगवान शङ्कर से प्रार्थना की है, उनकी इस कृति से लोकहित हो—

शुभं करिष्णुर्विषमे दिवौकसां, गरं करालं चुलुकेन योऽचमत्
चमत्कृति विश्वकृतौ निवेशयन् स मत्कृतिं लोकहिते नियोजयेत् ॥ (1/11)

भारतीय मानचित्र में परिदृश्यमान सम्पूर्ण भारतवर्ष के रमणीय स्थलों, तीर्थ, स्थलों, नदियों, पर्वतों एवं प्रदेशों सहित भारत भूमि का माता के रूप में मानवीकरण करके बड़ी ही भक्ति-भावना तथा उल्लास के साथ वर्णन किया गया, उसके उत्कर्ष की कामनाएं की गयी हैं—

फहराते हुए घोषणा की कि स्वतंत्रता आन्दोलन का उद्देश्य होगा–"पूर्ण स्वराज्य-सम्पूर्ण स्वाधीनता", और यह फैसला हुआ कि भारत के लोग 26 जनवरी 1930 को आमसभाओं में भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की इच्छा की घोषणा करेंगे। वह दिन स्वतंत्रता का दिन घोषित किया गया। उस दिन से ऐतिहासिक महत्त्व के ही कारण 1950 में जब भारत का संविधान तैयार हुआ तो उसे 26 जनवरी को प्रस्तुत किया गया तब से आज तक प्रत्येक वर्ष वह दिन गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है (5/49-52)–

षड् विंशतिस्तिथरियं भुवनाभिवन्द्या,
जातेतिहास-रचना रसिक-प्रसङ्गे ॥
यस्यां निखाय हृदि कील मिवाङ्गलानां,
स्वाधीनता-ध्वजमसौ गगने वितेने ॥ (5/51)
स्वाधीनता दिवसपर्वणि तत्र हर्षात्तु, स्वीकृत्य मुक्तहृदयेन पुनः प्रतिज्ञाम् ।
चक्रुर्विधेः सविनयप्रतिरोधमाज्ञा भङ्गं च भूमिकर-दानविरोधमार्याः ।।
(5/52)

सप्तम सर्ग के अन्तर्गत द्वितीय विश्वयुद्ध का संकेत, जेल में बन्द देशभक्तों की मुक्ति के लिए सत्याग्रह आन्दोलन तथा क्रिप्स मिशन का भारत आगमन तथा विरोध एवं भङ्ग (7/19-40)–

शासकानां निदेशेन, भारत सान्त्वयन्निव ।
क्रिप्सायोगः समायातः, संधातुं जन-नायकान् ॥ (7/32)

बम्बई कांग्रेस के महाधिवेशन में गाँधीजी का राष्ट्र को उद्‌बोधन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन आदि का संकेत मिलता है (7/41-53)–

मुञ्च भारतमुद्रघोषं, घोषयन्त समन्तः ।
प्राहरन् परितः क्रुद्धा, जना जीर्ण प्रशासनम् ॥ (7/53)

अन्ततः आठवें सर्ग में भारतीय स्वाधीनता की हेतुभूत उन परिस्थितियों एवं घटनाओं का उल्लेख है, जिनके फलस्वरूप अंग्रेज शासक भारत की मुक्ति के विषय में तैयार हो जाते हैं; यथा-विश्वयुद्ध के अन्तर्गत क्रूर हिटलर के द्वारा जापान पर परमाणु प्रक्षेप तथा महाविनाश, ब्रिटेन में चर्चिल शासन की पराजय तथा लेबर पार्टी का शासनारूढ़ होना आदि विविध घटनाएँ भारतीय स्वतंत्रता के लिए अंग्रेज शासकों को भारत की स्वाधीनता हेतु प्रेरित करता है–

ध्वस्तोऽणुविस्फोट-वंशाद् विपन्नो, 'जापान' देशः सहसा पपात ।
व्यादाय कालो मुखमट्टहासै, र्यत्र स्थितां मानवतामलीढ़ ॥ (8/2)

× × ×

साधनों के रहते हुए भी वह गिरने पर अपने बल से ही उठने की इसलिए इच्छा करते थे मानो भविष्य में संघर्ष पथ में (स्वाधीनता संग्राम में) गिरने पर उठने की क्रिया का अभ्यास कर रहे हों–

उत्थातुमिच्छन् स्वबलेन भूयः, तिन्नसौ सञ्चित-साधनेन।
भविष्य-संघर्षपथे निपातोत्थान-क्रियाभ्यासममिवाचचार ॥ (2/20)

अपने गले में वे संकल्प, धैर्य, निर्भयता और साहस के प्रतीक भूत सिंहनख को इसलिए धारण करते थे मानो अपने देश के शत्रुओं को परास्त करना चाहते हैं–

सम्भाव्यशत्रून् निजदेशदास्य–प्रवर्तकान् शोधयितुं तरस्वी।
संकल्प-धैर्याभय-साहसाङ्के वक्षःस्थले सिंहनखं बभार ॥ (2/22)

तीन सूत्रों वाले यज्ञोपवीत को उनहोंने इसलिए धारण किया मानो व जन्मभूमि, जनजीवन तथा भारतीय जाति का उद्धार करना चाहते हैं–

स्वजन्मभूमेर्जन-जीवनस्य, जातेः समुद्धारकृत-प्रतीकम्।
दधार संस्कार-महोत्सवेऽसौ, त्रिधा निबद्धं नव-यज्ञ-सूत्रम् ॥ (2/24)

और पढ़ने के लिए वह विदेश इसलिए गये मानो वह अपने राष्ट्र के शोषक अंग्रेजों की अन्तर्बाह्य राजनैतिक गतिविधियों को समझना चाहते हैं–

स्वाधीनतान्दोलन आङ्गलानां, छिद्रं परिज्ञातुमना मनस्वी।
अध्येतुमन्तर्बहिरङ्गविद्यां समुद्यतो गन्तुमभूद् विदेशम् ॥ (2/28)

भारत की स्वाधीनता के प्रति अत्यन्त जागरूक तथा अन्य विषयों के साथ अंग्रेजों की राजनीति का भी अध्ययन उन्होंने लंदन में ही किया (2/30)। अध्ययनकाल में विदेशियों के साथ रहते हुए भी उन्हें शासक-शासित और शोषक तथा शोषित के मध्य अनतर का ज्ञान हो पाया। अंग्रेज छात्रों के बीच दास की भाँति किए जाते हुए भेदभाव एवं हीन व्यवहार से उनका चित्त अत्यन्त व्यथित हो गया। भारत राष्ट्र, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान का सर्वत्र अपमान हो रहा था तथा साम्राज्यवाद विकसित हो रहा था। ब्रिटेन में स्थित भारतीयों का रंभेद के कारण तिरस्कार, मशीन द्वारा निर्मित अंग्रेजी वस्तुओं का वर्चस्व तथा हस्तनिर्मित स्वदेशी वस्तुओं की उपेक्षा आदि के द्वारा देश की दुर्दशा देखकर नेहरूजी स्वाधीनता संग्राम में संघर्ष हेतु विवश हो गए (2/30-42)–

स्वजन्मभूमेः प्रियभारतस्य, दशां पराधीनकृतां विलोक्य।
अतर्क्यमैश्वर्य-सुखं तितिक्षुः, स्वातन्त्र्ययुद्धेऽभिरतो बभूव ॥ (2/42)

कवि ने देश की पराधीनता पर गहरा दुःख प्रकट किया है, ऐसी दशा में किसी भी सुख को न मानने का सन्देश दिया है। अपना सर्वस्व लगाकर देशदास्य को दूर करने की प्रेरणा दी है। युवतियों को भी इसके लिए तैयार रहने की शिक्षा दी है

यदद्य सन्तापशतैरवाप्तं, स्वाधीनता रत्नमिदं दूरापम् ।
निरन्तरं शक्ति-समुच्चयेन, श्रमेण तच्चापि सुरक्षणीयम् ॥ (8/29)

× × ×

विहाय भेदं, बहुधर्मजाति-प्रसूतमार्या निजमातृभूमेः ।
चिर-प्रतीक्षार्जितमुक्ति-सिद्धेः समुद्यताः स्युः परिरक्षणाय ॥ (8/31)

संदर्भ सूची

1. आचार्य मधुकर शास्त्री, 'गान्धिगाथा', पूर्व-भाग/1
2. वही, पू./1
3. वही, पू./2
4. वही, पू./3, 7
5. वही, पू./3
6. वही, पू./5
7. वही, पू./5
8. वही, पू./6
9. वही, पू./7
10. वही, पू./7
11. वही, पू./8
12. वही, पू./6
13. वही, पू./1
14. वही, पू./19
15. वही, पू./24
16. वही, पू./25-28
17. वही, पू./37-39
18. वही, पू./53-54
19. वही, पू./43
20. वही, पू./63
21. वही, पू./64-66
22. वही, पू./67
23. वही, पू./69-70
24. वही, पू./70
25. वही, पू./74-75
26. वही, पू./87-90
27. वही, पू./90-92

'जलिया' नरमेध-निष्ठुरे, दहने देशहिते हुतात्मनाम् ।
चरितान्यनुसृत्य भारते, जन-रोषः परितः समेधत ॥ (5/1)

उनकी बन्दूकों की गोलियों की वर्षा, घोड़ों की टापों, कोड़ों की मार, लाठियों के प्रहार आदि को वीरतापूर्वक सहन किया तथा जेल की अंधेरी कोठरियों में अपने यौवन को नष्ट किया (पंचम, षष्ठ तथा सप्तम सर्ग)

उपर्युक्त सन्दर्भों के अन्तर्गत कवि ने स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित कतिपय प्रमुख घटनाओं का भी सजीव वर्णन किया है। भारत में 'साइमन कमीशन' का आगमन, इसके विरोध में असहयोग आन्दोलन, 'साइमन वापस जाओ' का नारा तथा इसके विरोध में नेहरू जी का नेतृत्व संभालना आदि बातों का उद्‌घाटन किया गया है (5/15-32)—

जनमतं नवशौर्यसमयुतं कृतविरोधमवेक्ष्य मदोद्धताः ।
प्रमुख-साइमनं दलमिङ्गर्त—रगमयन्नभिनेतुमिवाङ्गलाः ॥ (5/15)

× × ×

आयोगमालोक्य जनाः समन्तात् श्यामध्वजः श्वेतदलं निनिन्दुः ॥ (5/18)
"निवर्ततां साइमन । स्वदेशा—"दूचुर्जना उच्चतम स्वरेण ॥ (5/20)
विरोध-वृद्धि बहुशः प्रदेशै-ष्वालोक्य दुःशासन-कृत्य-दक्षाः ।
आग्नेय-शस्त्रैर्लगुडैः सुतानां रक्तैरसिञ्चन्-मृदु मातृ वक्षः ॥ (5/21)
युक्त-प्रदेशे ननु लक्षमणस्य, पुण्ये पुरे साइमनं विरोद्धुम् ।
नेतृत्वमादाय जवाहरस्य, ज्वारो जजृम्भे जनतार्णवस्य ॥ (5/22)

देशभक्तों के त्याग बलिदान के बाद साइमन वापस चला गया—प्रयातवान् साइमनः स्वदेशम् (5/32)। साइमन के वापस जाने के बाद देशभक्तों ने स्वतंत्रता के विषय में पुनर्विचार करना शुरू किया तथा मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस के अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने पहली बार स्वराज्य के लिए प्रस्ताव किया (5/32-48)—

यथागतं साइमने प्रयाते, क्षुब्धा निकार-प्रतिकारकामाः ।
दासत्वपाशान्निजमातृभूमि, मोक्तुंजना यत्नपरा बभूवुः ॥ (5/32)
महासभाया मतएव तत्राधिवेशने पितृवर-प्रधाने ।
स्वातन्त्र्यमेव प्रभुशक्ति-पूर्ण, प्रस्तावितं वीर-जवाहरेण ॥ (5/33)
महानुभावैर्बहुभिस्तदानीं, पित्रापि, तत्रोपनिवेशमात्रम् ।
स्वराज्यमेव प्रथम-प्रयासे, प्रस्ताव्यमासीन्ननु भारतस्य ॥ (5/34)

पुनः रावी तट पर लाहौर के कांग्रेस महाधिवेशन में नेहरूजी को सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुना गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद की हैसियत से तिरंगा

62. वही, उ./8
63. वही, उ./75-76
64. वही, उ./69-73
65. वही, उ./45-51
66. वही, उ./भाग/78-80
67. वही, उ./21
68. वही, उ./5
69. वही, उ./87
70. वही, उ./78-80
71. वही, उ./100-102
72. आचार्य मधुकर शास्त्री, 'गान्धिगाथा', पूर्व भाग/153

पराजयाच्चर्चिल–शासनस्य, निर्वाचनेन श्रमजीविनां वै।
प्रशासनं विश्वमतानुरूपं ब्रिटेन-देशस्य पदं प्रपेदे ॥ (8/5)

× × ×

संपारिते संसदि शासकानां विधेयके भारत-दास्यमुक्तेः।
प्रतिक्रियाभूदभिनन्दनीया, क्रिया सती विश्वमनोभिरामा ॥ (8/9)

अंग्रजों की दुर्नीति तथा तत्कालीन मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना की दुर्बद्धि से होने वाले देश विभाजन के प्रति कवि ने दुःख प्रकट किया–

इस्लाम हिन्दु-द्वयमार्यधर्म राष्ट्र-द्वयं भिन्नमतं जनेषु।
उद्घोषयन् मुस्लिम लीग-नेता, विभाजनं मातृभुवो ययाचे ॥ (8/11)

भारत के खण्डित होने और उसके परिणामस्वरूप अपने को पराजित मानकर हुए भीषण नरसंहार का वर्णन करते हुए कवि ने इन दुर्घटनाओं के प्रति विस्मय और खेद प्रकट किया है (8/01/20)–

विखण्डितायां निज-मातृ भूमौ, बभूव सद्यः स्वगृहं विदेशः।
यतो हि धर्म-व्यवहार-शून्याः, क्रूरा व्यधुर्बन्धु-जनेषु हिंसाम् ॥ (8/15)

× × ×

निधाय गेहे चिरमित्र-भेदं, विधाय राष्ट्रं विकृताङ्गभङ्गम्।
मुमोच या द्वेष-विधायिका हो, नीतिर्दूरन्ताङ्गल-शासकानाम् ॥ (8/20)

इसी समय अंग्रेजों की दासता से प्राप्त मुक्ति स्वरूपा स्वतंत्रता के प्रति अपना अमन्द उत्साह भी प्रकट किया गया है। स्वतत्रंता दिवस (पन्द्रह अगस्त का भी सोल्लास वर्णन है। इस प्रसंग में स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू के द्वारा स्वतंत्रता के अमर-शहीदों को भावभीनी श्रद्धांजलि दी गयी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इस यज्ञ में आहुति देने वाले सभी सैनिक याज्ञिकों की वन्दना की गयी है। (8/21-45)–

राष्ट्रध्वजं 'लालकिले' ति दुर्गे समुन्नयन् देशजनानुपेतान्।
प्रधानमंत्री नव-राष्ट्र भक्ति, समृद्धिमैक्यं च बलं ययाचे ॥ (8/24)

× × ×

सम्बोधयन् राष्ट्रमसौ मनस्वी, श्रद्धाञ्जलिं भारत भू जनेभ्यः।
समर्पयामास समानमार्यः, स्वातन्त्र्य यज्ञज्वलने हेतुभ्यः ॥ (8/25)
सदाभिवन्द्या अमरा इवैते, महानुभावा पुरुषा धरण्याम्।
येषां चिरं रक्तकृताभिषेकां, स्वाधीनतामद्यजना अवापुः ॥ (8/26)

इतने सुदीर्घकाल में त्याग एवं बलिदान के उपरान्त प्राप्त हुई भारत राष्ट्र की राजनैतिक सम्प्रभुता सम्पन्न स्वतंत्रता की रक्षा हेतु जागरूक और क्रियाशील रहने की भी प्रेरणा दी गयी है–

4. इन्दिरा जी पर फ्रांसीसी वीरांगना 'जॉन ऑफ ऑर्क' का प्रभाव।
5. जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड, जवाहरलाल नेहरू का स्वाधीनता आन्दोलन में व्यस्ततम् योगदान।
6. मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू का अंग्रेजी शासन द्वारा बन्दी बना लिया जाना, स्वरूपरानी तथा कमला नेहरू का महिला संगठन के साथ विदेशी वस्तु-वस्त्र बहिष्कार और खादी-वस्त्र का प्रचार।
7. इन्दिरा जी का साबरमती आश्रम में गाँधी जी की सन्निधि में निवास, कारागत जवाहरलाल नेहरू की इन्दिरा जी के अध्ययन के विषय में चिन्ता।
8-9. बालिका इन्दिरा द्वारा 'वानरसेना' नाम से बाल संगठन का निर्माण, अपने से बड़ों के अनुकरण पर उसकी बैठक आयोजित करना, भाषण करना आदि।
10. कमला नेहरू का अपने उपचार के लिए पुत्री इन्दिरा के साथ जर्मनी जाना, वहाँ से नेहरू जी द्वारा दोनों का स्विट्जरलैण्ड ले जाया जाना और लाउस नगर में कुछ समय तक प्रवास।
11. नेहरू परिवार से एक पारसी युवक फ़ीरोज गाँधी का परिचय, परिचय का नित्यप्रतिघनीभाव।
12. जवाहरलाल नेहरू का इन्दिरा जी के अध्ययन के लिए शान्तिनिकेतन भेजना, इन्दिरा जी का शिक्षा अधूरी छोड़कर रुग्ण माँ की परिचर्या के लिए घर वापस आ जाना, कमला नेहरू का निधन।
13. नेहरू जी द्वारा स्वर्गीया पत्नी का और्ध्वदैहिककृत्य-सम्पादन और फिर स्वाधीनता संग्राम में पूर्ण समर्पण भाव से संलग्न हो जाना।
14. नेहरू जी का इन्दिरा जी की भारतीय पद्धति से शिक्षा का आग्रह, कारागार से इन्दिरा जी को जवाहरलाल नेहरू का पत्रों द्वारा भारतीय इतिहास और संस्कृति का ज्ञान प्रदान करना।
15. इन्दिरा गाँधी का फ़ीरोज गाँधी से विवाह।
16. इन्दिरा गाँधी और फ़ीरोज गाँधी का कश्मीर प्रवास, पुनः लौटकर फ़ीरोज गाँधी के साथ इन्दिरा गाँधी का लखनऊ निवास और बम्बई के कांग्रेस-अधिवेशन में नेहरू जी के बन्दी बना लिये जाने पर इन्दिरा जी का प्रयाग प्रत्यागमनम्।
17. विजयलक्ष्मी पण्डित का कारावास, इन्दिरा जी का एक विद्यालय में तिरंगे ध्वज के फहराने के प्रयास और अंग्रेज पुलिस से आहत होना।
18. इन्दिरा गाँधी और फ़ीरोज गाँधी का नैनीकारा में डाल दिया जाना,

28. वही, पृ./94
29. वही, पृ./109-114
30. वही, पृ./133
31. वही, पृ./131-132
32. वही, पृ./134
33. वही, पृ./165
34. वही, पृ./137-139 और 148-149
35. वही, पृ./140-146
36. वही, पृ./162-163
37. वही, पृ./165-167
38. वही, पृ./170
39. वही, पृ./171-176
40. वही, पृ./177
41. वही, पृ./173-175
42. वही, पृ./177
43. वही, पृ./174
44. वही, पृ./174
45. वही, पृ./174.
46. वही, पृ./179
47. वही, पृ./181-183
48. वही, पृ./184-183
49. वही, पृ./3, 7.191-195
50. वही, पृ./197
51. वही, पृ./199-200.
52. वही, पृ./202-203.
53. वही, पृ./206-207
54. वही, पृ./208-210
55. वही, पृ./227-229
56. वही, पृ./233-235
57. वही, पृ./237-244
58. वही, पृ./244
59. आचार्य मधुकर शास्त्री, 'गान्धिगाथा', उत्तर भाग/26
60. वही, उ./92-92
61. वही, उ./6

देश की भूमि के प्रति राष्ट्रिकों के मातृभाव और तीर्थभाव का विकास सहस्राब्दियों की यात्रा में हुआ है। कवि अपनी काव्य-नायिका के पूर्वजों के कश्मीर से आकर, जिस प्रयाग क्षेत्र में बसने का उल्लेख करता है, उसे वह स्वर्ग और अपवर्ग का निमित्त और अन्तःकरण की निर्मलता के लिए सेवनीय पवित्र तीर्थ मानता है।[2]

परतन्त्र भारत में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी, जो अंग्रेजी शासन को नेमत समझते थे, परन्तु औसत राष्ट्रिक की सोच के केन्द्र में उस समय पराधीनता और उससे मुक्ति का द्वन्द्व ही था।[3] महात्मा गाँधी जैसे एक सबल केन्द्रक के चारों ओर एकत्र होकर एक महाशक्ति का रूप ले लेने के लिए राष्ट्र की बिखरी चेतना छटपटा रही थी।[4]

कवि फ्रांस को स्वाधीनता से मुक्त कराने वाली युवती **'जॉन-ऑफ-ऑर्क'** का आनुषंगिक स्मरण करता है, जिसने स्वदेश को स्वतन्त्र कराने के लिए धधकती हुई ज्वाला में अपने को होम दिया था। प्रियदर्शिनी इन्दिरा के बाल-मन पर उसके राष्ट्रीय चरित का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह भी सोचने लगी कि मैं भी अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए ऐसा क्यों नहीं कर सकती।[5]

इन्दिरा जी के जन्म का काल विश्व के अनेक राष्ट्र-राज्यों के उथल-पुथक का काल था। प्रथम महायुद्ध के धुएँ की कड़वाहट आँखों में अभी-अभी खत्म हुई थी। रूस में राज्य-विप्लव और जार शासन की राख पर नये समाजवादी शासन का भवन निर्मित होना आरम्भ हो गया था।[6] इन सबका प्रभाव भारत की जनता पर पड़ना ही था। विदेशी शासन के अत्याचारों का एक और वीभत्स प्रमाण जलियाँवाला बाग काण्ड ने लोगों को हतप्रभ और मर्माहत कर दिया।[7]

जवाहरलाल नेहरू की तरह प्रत्येक स्वाधीनताप्रिय व्यक्ति का उस समय लोगों की संघबद्धता के लिए आह्वान था–

"अयि शासनमाततायि भोः, सहते क्रुरमिंद भवान् कथम्।"[8]

" निजजन्मभुवः पराभवो, न मनो दारयते कथा नु वः।"[9]

विदेशी अत्याचार का विरोध करने का भारतीय जनता का ढंग भी नितान्त भारतीय था, जो मानवीय करुणा से पूर्ण था और जिसमें अत्याचारी के प्रति दुर्भाव रीति अत्याचार के प्रतिकार का भाव निहित था। इसके लिए सविनय-अवज्ञा आन्दोलन, विदेशी वस्तु और वस्त्र का बहिष्कार और शासन कार्य में असहयोग को क्रान्तिकारियों ने अस्त्र के रूप में विनियुक्त किया। इस संघर्ष में स्त्रियों-पुरुषों सबकी भागीदारी थी।[10]

मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू को अंग्रेजों ने कारा में डाल दिया, परन्तु उनका कार्य स्वरूपरानी और कमला नेहरू ने प्रवर्तित रखा। वे जहाँ-तहाँ

6

बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में निरुपित भारतीय स्वाधीनता संग्राम

1. इन्दिरागाँधी चरितम्

इन्दिरागान्धीचरितम् के प्रणेता डॉ. सत्यव्रत शास्त्री का जन्म सितम्बर 29, 1930 ई. को लाहौर (सम्प्रति पाकिस्तान में) हुआ। साहित्य अकादमी, साहित्यकला परिषद्, उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी आदि स्वदेशीय संस्थाओं और अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष, कलासंकायाध्यक्ष, श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी (उड़ीसा) के कुलपति आदि पदों को सुशोभित कर सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में प्रोफेसर पद पर रहते हुए शिल्पकोर्ण विश्वविद्यालय बैंकाक (थाईलैण्ड) में 'अभ्यागत आचार्य' के रूप में कार्यरत थे, इसके पूर्व आप पश्चिम जर्मनी, वेल्जियम और कनाडा के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अभ्यागत-आचार्य होकर जा चुके हैं। सम्प्रति विश्वविद्यालय से सेवामुक्त हो गए हैं। आप संस्कृत के सुकवि और पारदृश्वा समीक्षक के रूप में विश्रुत हैं।

प्रकृत महाकाव्य में मोतीलाल नेहरू के प्रयागवास से लेकर श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रशासकीय जीवन के 1975 ई. तक का अंश ग्रंथित है। महाकाव्य में पच्चीस सर्ग और पूर्व पीठिका के आठ श्लोकों को मिलाकर आठ सौ अट्ठासी श्लोक हैं। सर्ग क्रम से काव्य-वस्तु इस प्रकार है–

1. कश्मीर से आकर मोतीलाल नेहरू का प्रयाग में निवास, उनकी अधिवक्ता के रूप में ख्याति, आनन्द भवन का निर्माण तथा मोतीलाल नेहरू और स्वरूपरानी से श्री जवाहरलाल नेहरू, कृष्णा और विजयलक्ष्मी का जन्म।
2. जवाहरलाल नेहरू और कमला नेहरू से प्रियदर्शनी इन्दिरा का जन्म।
3. नेहरू-परिवार का महात्मा गाँधी के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेना।

1942 ई. की एक घटना का उल्लेख कवि बड़े मनोयोग से करता है। जब इन्दिरा जी पुलिस के अत्याचार को सहती हुई भी विद्यालय प्रांगण में छात्रों के साथ ध्वजारोहण की प्रथा को सम्पन्न किया।[17]

सभा को सम्बोधित करती हुई इन्दिरा गाँधी को दबोचकर पुलिस ने गाड़ी में डालना चाहा।[18] क्रुद्ध जनता ने इसका प्रतिरोध किया। उस विषम स्थिति का चित्र लेता हुआ कवि कहता है–

"एकत्र तावद्भट आचकर्ष, बाह्वोरिमामन्यभटैः समेतः।
अन्यत्र तावद् जनताऽऽचकर्ष, तद्धस्ततो मोचयितुं प्रयत्ता।
एवं विकृष्टा प्रतिकूलदिक्षु, भटैश्च लोकैश्च मिथोविरुद्धैः।
बभूव देवी क्षतविक्षतांगी, सा व्याकुला खण्डितवस्त्रका च॥"[19]

अन्ततः सशस्त्र सैनिकों ने उन्हें खींचकर गाड़ी में डाल दिया और उन्हें नौ महीने तक कारागार की यातनाएँ झेलनी पड़ीं।[20] लोगों ने अपनी मातृभूमि के लिए क्या-क्या नहीं सहा–

"प्रताड्यमाना लगुडैरजस्र, भुशुण्डिकाग्रैश्च निहन्यमानाः।
निष्पिष्यमाणाश्च पदत्रघातै–राक्रुश्यमानाः परुषैश्च शब्दैः॥
आकृष्यमाणा बलवच्च बन्दि–गृहेषु घोरेष्वथ नीयमानाः।
सम्प्राप्यमाणा बहुयातनाश्च, क्रूरा अहो, रौखनिर्विशेषाः॥"[21]

स्वाधीनता की प्राप्ति के निकटतर होने के साथ अंग्रेजों की कूटचाल से भारत में विभिन्न वगा में पृथक्ता की चेतना प्रबलतर होती गयी। विशेषतः मुसलमानों के एक उग्रवादी राजनीतिक संगठन ने घोषित कर दिया कि मुसलमान एक अलग 'राष्ट्र' है, जो हिन्दुओं से नितान्त भिन्न और अविमिश्र्य है। इस प्रकार जिन्ना जैसे राजनीतिज्ञों और मो. इकबाल जैसे चिन्तकों-साहित्यकारों की निहित महत्वाकांक्षाओं और कुछ धर्मान्ध हिन्दू और मुस्लिम नेताओं की उग्र भावना के उत्तेजन से देश दो भागों में बँट गया। देश का विभाजन अखण्ड भारतीयता की सद्भावना पर तुच्छ पृथक्ता की भावना की घृणित विजय थी, जिसे देश की तमाम अविभाजनप्रिय जनता के साथ महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे राष्ट्र-पुरुषों को स्वाधीनता के बदले स्वीकार करना पड़ा।[22]

जो अखण्ड भारत के वातावरण में साँस लेना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानकर अंग्रेजों से लोहा लेकर शेष बचे थे, विभाजन से न केवल ऐसे लोग मर्माहत हुए बल्कि ऐसे असंख्यजनों के लोहू से दोनों की सीमान्त रेखाएँ खींची गईं, जो हिन्दू या मुसलमान होने के दुर्भाग्य से ग्रस्त थे। मानवता के कल्याण के लिए सहस्राब्दियों की साधना से उपलब्ध महिमामयी धार्मिक व्यवस्थाएँ भी कितनी अमानवीय हो

स्वाधीनतान्दोलन का उग्रतर प्रसार और अंग्रेजों द्वारा भारतीय समाज में भेद-भाव फैलाना।

19. कुछ मुसलमानों का मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में पृथक् राज्य की माँग, अगस्त 14, 1947 ई. को भारत से पृथक् 'पाकिस्तान' राष्ट्र की घोषणा।
20. भारत और पाकिस्तान में प्रव्रजित होते हुए हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष और रक्तपात, स्वतन्त्र भारत में इन्दिरा जी का कांग्रेस-अध्यक्षा के रूप में चयन।
21. जवाहरलाल नेहरू का निधन, लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमन्त्री होना, सूचना प्रसारण मन्त्री के रूप में इन्दिरा गाँधी, लालबहादुर शास्त्री का देहत्याग, श्रीमती इन्दिरा गाँधी का प्रधानमन्त्री होना, राष्ट्रपति जाकिर हुसैन के निधन के उपरान्त वी. वी. गिरि का राष्ट्रपति होना, इन्दिरा जी द्वारा कांग्रेस का पुनर्गठन।
22. इन्दिरा जी के पुत्रों राजीव और संजय के विवाह, लोकसभा सदस्य के रूप में फ़ीरोज गाँधी का दिल्ली में निवास, फ़ीरोज गाँधी का अस्वस्थ होना तथा निधन।
23. पूर्वी पाकिस्तान में शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में पाकिस्तान के विरुद्ध स्वातन्त्र्य संग्राम, भारत की सहायता से पूर्वी पाकिस्तान का 'बांगला देश' के रूप में अभ्युदय, पाकिस्तान का भारत पर आक्रमण।
24. भारत-पाक युद्ध और उसमें भारत की विजय, सिक्किम का भारत में विलय, रूस से मित्रता, आन्तरिक राष्ट्रीय संकट और आपातकाल की घोषणा।
25. आपातकाल की उपलब्धियाँ।

'इन्दिरागान्धीचरितम्' में स्पष्टतः कवि किसी दिग्विजयी और साम्राज्य-स्थापना करने वाले शासक को काव्य-विषय बनाने को प्रवृत्त नहीं हुआ है, प्रत्युत एक ऐसे शासक किंवा जनप्रतिनिधि का चरितगान करने को प्रवृत्त है, जिसकी अपनी पहचान महादेश 'भारत' के एक कालखण्ड की पहचान बनी है। कवि महाकाव्यारम्भ की पीठिका में उस ज्योतिः पूत व्यक्तित्व की हार्दिक सद्भावना को इस प्रकार व्यक्त करता है—

"देशो मदीयः सुतरां समृद्धो, भवेदितीच्छा परमा मदीया।
न कोऽपि दीनो न च वा दरिद्रो, न व्याधितो वान च पीडितः स्यात् ॥
सर्वेऽत्र सम्भूय सुखं वसन्तु, प्रियं वदन्तु प्रियमाचरन्तु।
न विग्रहो वा कलहो भवेद्धा, स्याद् भारतं नन्दनतुल्यरूपम् ॥"[1]

साक्षात्कार किया। मनस्वी गोखले ने भी भारत देश को शीघ्र स्वतन्त्र करने के लिए अनेक प्रयत्न किए (3/46-59)–

'श्रीगोखले' भारतमाशु कर्तुं, देश स्वतन्त्रं यतते मनस्वी।
धारासभायां मिलितं धनं यत्, स्वीये तु कार्ये व्ययितं न तेन ॥ (5/57)

लार्ड कर्जन की सभा

अंग्रेज वायसराय लार्ड कर्जन महोदय ने एक सभा की, जिसमें अनेक राजा भयभीत होकर मन्त्रियों के साथ सम्मिलित हुए कि "ये गोरे मेरा यह राज्य न छीन लें।" भारत की इस परतन्त्रता को देखकर गाँधी जी का मन दुःखी होता था कि कब यह भारतवर्ष स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा (3/61-64)–

पारतन्त्र्यं विलोक्यैवं मानो गान्धेश्च दूयते।
कदा भारतदेशो यं स्वातन्त्र्यं परिलप्स्यते ॥ (3/64)

अहिंसा एवं अछूतोद्धार

बंगाल के कलकत्ता महानगर में जो महाशक्ति काली का मन्दिर है, वहाँ बलिदान के लिए बकरे और भैंसे ले जाए जाते थे। वधिक हाथ में कटार लिए तैयार रहते थे। उनकी पंक्ति और रक्त की नदी को देखकर गाँधी जी उनके प्रति मोह को प्राप्त हो गए (3/65)। हिंसा से द्वेष रखने वाले गाँधी जी गौतम बुद्ध का स्मरण करके यह सोचते थे कि उनकी आत्मा स्वर्ग में यही आकांक्षा करे कि बलिदान और हिंसा रुक जाय। इसके लिए कानून पास हो जाय–

स्मारं स्मारं गौतमं बुद्धदेवं, हिंसाद्वेषी सत्यसेवी चिचेत्।
आत्मा स्वर्गे तस्य काङ्क्षां करोतु, पारं भूयात् संविधान तदर्थम् ॥(3/66)

गाँधी जी के मन में उन अछूतों, हरिजनों, शूद्रों एवं चाण्डाल आदि निम्न वर्ग के लोगों के प्रति अगाध प्रेम था, जिनको सवर्णों की बस्ती में रहने की आज्ञा नहीं थी तथा जिसे अछूत समझकर सवर्ण उनसे घृणा किया करते थे। गाँधी जी ने न केवल अपने ही देश में अछूतोद्धार का संकल्प किया, अपितु अफ्रीका में भी अंग्रेजों द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रति किए जा रहे घृणास्पद आचरण के विरुद्ध भी आन्दोलन किया (4/26-30)।

सत्याग्रह

अंग्रेजों पर विजय पाने के लिए, सर्वत्र लोगों के मन को निर्भय करने के लिए, मुसलमानों से मतभेद रखने वाले हिन्दुओं का उद्धार करने के लिए तथा शत्रुओं से ग्रस्त भारत-भू को स्वतन्त्र करने के लिए गाँधी जी ने निःशस्त्र होकर सत्याग्रह रूपी बाणों का संधान किया था । अंग्रेजी में जो "पैस्सिव रेलिसटेन्स" कहा जाता है, वह पहले सदाग्रह रूप था। परन्तु गाँधी जी ने उसमें 'य' जोड़ दिया इस प्रकार सत्याग्रह शब्द निश्चित किया (5/2-31)–

सभाएँ करके विदेशी शिक्षा, वस्त्र और वस्तुओं के बहिष्कार की चेतना जगाती थीं, व्यापारियों को इसके लिए तैयार करती थीं।[11]

इन्दिरा जी का बाल्य जीवन जिस परिवेश में विकास पा रहा था, वह राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के कल-कल से आपूरित था। अपने राष्ट्र के प्रति उत्कृष्ट आत्मीयता और स्वाधीनता की चेतना इन्दिरा जी में सहज ढंग से संक्रमित हो रही थी। इसका एक प्रमाण बच्चों की बाल-कांग्रेस ('वानर से' सेना से ख्यात) थी, जिसका नेतृत्व बारह वर्ष की अल्पवयस्का इन्दिरा जी कर रही थीं।[12]

जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के उन थोड़े से चिन्तक योद्धाओं में से थे, जिनके सामने राष्ट्रीय संग्राम से लेकर स्वाधीन भारत तक के लिए ठोस सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक योजनाएँ थीं। वे कारायात्रा अनशन और ऐसे प्रेरक प्रतिज्ञा-वचनों से राष्ट्र का पुरुषार्थ जगाने को दृढ़ संकल्प थे–

"देशोऽयमस्यास्वधितावदस्तु, यथा स्वतन्त्रा इतरे स्वदेशे।
तथा वयं स्याम सुखं स्वदेशे, तत्प्राप्तुमद्यावधिनोऽस्तु यत्नः॥
कृतस्य तावत् कठिनश्रमस्य, फलं वयं भोक्तुमलं भवेम्।
इत्येव कामोऽस्ति मनोगतो नो, नैवापरस्तत्फलमश्नुवीत॥
यच्छासनं तत्प्रतिकूलगामि, भवेद् ध्रुवं तत्परिवर्तनोऽयम्।
संकल्प एषोऽस्ति दृढ़ः समेषां, नास्त्यत्र सशीतिलवोऽपिकश्चित्॥[13]

विदेशी शिक्षा के संस्कार से युक्त भी जवाहरलाल नेहरू का अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध पुत्री इन्दिरा की शिक्षा भारतीय पद्धति से सम्पन्न कराने का हठ, उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय चेतना का परिचायक व्यवहार था।[14] इन्दिरा जी की सारी शिक्षा पिता और पितामह दोनों के बार-बार की कारा और प्रवास से व्यवहित रही।[15]

एक बार जवाहरलाल नेहरू के जेल में रहते पुत्री इन्दिरा का तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ। प्रतिवर्ष की भांति लोगों ने इंदिरा जी के नववर्ष में प्रवेश पर उपहार दिये। इस बार जवाहर लाल नेहरू स्वयं न तो कारा से आकर पुत्री के जन्म-दिवस के उत्सव में उपस्थित हो सकते थे और न कोई उपहार ही भेंट कर सकते थे। उन्होंने इस सन्देश के साथ केवल एक पत्र भेजा–'बेटी, कारागार की दीवारों के अन्दर से इसके सिवा कोई उपहार भेजना सम्भव नहीं, अतः तू मेरे इस पत्र को ही पिता द्वारा प्रदत्त भावनिर्भर उपहार समझ।"[16] और यह उपहार प्रियदर्शिनी इन्दिरा के लिए किसी भी उपहार से अधिक मूल्यवान सिद्ध हुआ। कारा से नेहरू जी का पुत्री के पास पत्र भेजने का जो अनुक्रम बना, वह बड़े-बड़े 196 पत्रों पर पूरा हुआ, जिनका संग्रह आगे चलकर 'विश्व का इतिहास' नाम से प्रकाशित हुआ। इन क्रमबद्ध लेखों से इन्दिरा जी की अधूरी शिक्षा पूरी हुई जिसमें भारत देश की स्वतन्त्रता का स्वर भरा पड़ा था।

(5/19-27)।

इसके बाद राज्यपाल ने एक कुशल सभा (कमेटी) नियुक्त करके वास्तविक बात की जानकारी प्राप्त कर ली। उन्होंने तिकठिया कानून समूल नष्ट कर दिया और अंग्रेजों ने नील की खेती से अपना हाथ खींच लिया–

त्रिकाष्ठं विधानं समूल वयकारि। गुरुण्डास्तु नीलात्स्वहस्तानकर्षन ॥ (5/28)

चम्पारन में मित्र श्री राजेन्द्र प्रसाद और ब्रजकिशोर वकील के रहते अनेक मित्रों के साथ गाँधी जी ने गाँवों और खेड़ों में स्वच्छता, स्वास्थ्य और लेखन-कार्य कुशलतापूर्वक बढ़ाया (5/29)।

काठियावाड़ में मजदूर समस्या का समाधान

चम्पारन में नील समस्या का समाधान करने बाद गाँधी जी काठियावाड़ चले गए। वहाँ मिल के मजदूरों की दयनीय स्थिति देखकर गाँधी जी अत्यन्त दुःखी हो गये। मजदूर संघ की नेत्री अनसूया बाई मिल मालिक से लड़ रही थीं। उनकी प्रेरणा प्राप्त कर गाँधी जी शीघ्र ही मिल मालिकों के पास गए। उन्होंने कहा कि आप लोग पाँच योग्य पंचों को नियुक्त कर वेतन वृद्धि कीजिये। उन लोगों ने कहा पिता और पुत्र (मिल मालिक और मजदूर) के बीच में पंच लोगों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। तब उन्होंने नेताओं को यह अनुभव दिया कि सभी मिल मजदूर मिलकर प्रतिज्ञा करें कि इस प्रकार हम मिल में काम नहीं करेंगे और हड़ताल रहेगी; परन्तु कभी शान्ति भंग नहीं होनी चाहिए। मिल में जाते हुए किसी व्यक्ति को भ्रमवश नहीं रोकना चाहिए तथा निन्दनीय याञ्चा कभी नहीं अपनानी चाहिए। धन का अभाव होने पर अन्यत्र काम कर लेना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु गाँधी जी ने मजदूरों को एक आश्रम में कार्य के लिए नियुक्त किया तथा वहाँ सूत बनाने का कार्य भी होने लगा। गाँधी जी वहाँ जाकर स्वयं सूत कातते तथा लोगों को अपनी प्रतिज्ञा दोहराते। तभी कुछ लोग अपनी प्रतिज्ञा भूलकर इधर-उधर डिगने लगे। तब महात्मा जी ने उपवास रखकर सभी को अनुयायी बना दिया। उनके अनशन से भयभीत मिल मालिक और मजदूरों ने शीघ्र अनेक लोगों की सुन्दर पंचायत से समझौता कर लिया तथा उत्पन्न कलह को जड़ से उखाड़ दिया। तीन दिन का अनशन करके और इक्कीस दिनों में सम्पूर्ण हड़ताल यज्ञ समाप्त करके उन्होंने लोगों में मिठाइयाँ बाँटीं (5/31-46)–

अनशनभयभीता मालिका मजदूराः, झटिति बहुजनानां रम्यपञ्चायतेन।
कृतमतय इमे ते वेतनंवर्धयित्वा, जनितकलहमूलं मूलतो वै निचख्नुः ॥ (5/44)
दिनत्रयं सोऽनशनञ्च कृत्वा, ह्येकोत्तरं विंशतिवासरेषु।
समाप्य सर्वं हरितालयज्ञं, स वंटयामास जनेषु मिष्टम् ॥ (5/45)

सकती हैं, इसका प्रमाण था—विभाजन के उपरान्त प्रव्रजन करते हुए लोगों का रक्तपात।[23]

यद्यपि असंख्य मुस्लिमजनों में भी असीम उदारता थी, किन्तु यह कहने में पक्षपात नहीं होगा कि 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की महती आकांक्षा वाली भारतीयता का उदार अवदान, जो हिन्दुओं को प्राप्त हुआ है, उसका प्रमाण उस संक्रान्तिकाल में उन्होंने ही सर्वाधिक दिया।

2. श्रीगान्धिगौरवम् : (8 सर्ग)

प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के सण्डीला नगर में 1898 ई. में हुआ। यावज्जीवन संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन में श्री त्रिपाठी जी संलग्न रहे। अन्ततः 27 जून, 1972 ई. को ब्रह्मलीन हो गए। प्रस्तुत काव्य का सम्पादन एवं प्रकाशन कवि के सुयोग्य पुत्र श्री शिव सागर त्रिपाठी ने सम्भवतः 1973 ई. में कराया। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा यह कृति 1974-75 ई. में पुरस्कृत भी हुई। इसका द्वितीय संस्करण 1977 ई. में प्रकाशित हुआ।

कल 8 सगो में विभक्त गान्धिचरिताश्रित इस महाकाव्य के अन्तर्गत कवि ने गाँधी जी के जन्म एवं प्रारम्भिक शिक्षा आदि के वर्णन के साथ उनके अफ्रीका में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्षरत हो गए तो 1901 ई. के शुभ वर्ष में वह भारत को स्वतन्त्र करने के लिए अपने देश में आ गए—

ऊनविंश्यां शताब्दयां स प्रथमे वत्सरे शुभे।
स्वतन्त्र भारतं कर्तुं जन्मभूमिं समागमत् ॥ (3/44)

इसी वर्ष भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता नगर में हुआ जिसके अध्यक्ष श्री दीनाशावाञ्छा थे—

तस्मिन् वर्षे बभूवाऽथ 'कांङ्ग्रेसस्या' अधिवेशनम्।
अध्यक्षो 'दीनशावाञ्छा' कलकत्ता नगरे शुभे ॥ (3/45)

यह उनकी पहली कांग्रेस यात्रा थी और सेवा का अवसर भी पहला था। उन्होंने अपनी सेवा से अनेक सेव्य नेताओं को प्रसन्न किया। जो यहाँ विविध महापुरुष आए थे वे छुआछूत बहुत मानते थे। जिसका उन्मूलन करने के लिए आज धारासभा (शासन विधान) में एक धारा जोड़ दी गयी है। इस बड़ी कांग्रेस-सभा को समाप्त करके मनस्वी गोपाल कृष्ण गोखले गाँधी जी को अपने घर ले गए। वहाँ वे एक माह तक बड़े प्रेम से रहे तथा लोगों से मिल-जुलकर अपनी स्थिति दिखाई। कलकत्ता नगरी में ही निष्ठावान गाँधी जी ने हिन्दू धर्मरत बहन (सिस्टर) निवेदिता से

इस विषय में गाँधी जी ने सत्याग्रह करने का विचार किया, परन्तु इसके पहले व्रत रखना चाहिए ताकि आत्मा शुद्ध हो जाय और हड़ताल यज्ञ के प्रति श्रद्धा हो जाय। इस व्रत से राजगोपालाचारी बहुत प्रसन्न हुए तथा सभी ने 24 घण्टे का व्रत लिया। इसी सन्दर्भ में हिन्दू और मुसलमानों ने भारत में स्वराज्य के लिए पवित्र छः अप्रैल 1919 ई. को व्रत धारण किया–

नवैके नवैके शुभेऽप्रैलमासे, तिथिस्तत्र षष्ठी महापुण्यशीला।
स्वराज्यार्थमस्यां जनैर्भारते स्वे, व्रतं धारितं हिन्दु-मोहम्मदीयैः ॥(5/81)

दिल्ली नगरी में निश्चित छः तारीख की बात ज्ञात न हुई। सारी जनता का इस प्रकार मेल देखकर दृढ़संकल्प श्रद्धानन्द ने पूर्वनिश्चित तीस मार्च को जामा मस्जिद पर प्रवचन दिया और सभी लोगों को प्रसन्न किया। इस प्रकार विशाल जनसमूह देखकर वायसराय अत्यन्त व्याकुल हो गया। अतः सैनिकों को आदेश दिया कि गोली चलाते हुए इन्हें तितर-बितर कर दो। दिल्ली में ऐसा जनसमुदाय पहले कभी नहीं दिखाई पड़ा था। यहाँ अनेक निरपराधी हताहत हुए। बम्बई में चारों ओर घमूते हुए उस कानून की सविनय अवज्ञा की इच्छा से सभी लोगों ने अनेक जब्त ग्रन्थ पुनः प्रकाशित करके बाँटे। दूसरी ओर समर्थ लोगों ने आज्ञा न पाकर को भी नमक बनाने की चेष्टा की। **'सर्वोदय'** और **'हिन्दू सुराज्य'** इन दो पुस्तकों का पूर्णतः वितरित किया गया (5/82-90)।

दूसरे दिन चौपाटी में स्वदेशी वस्तु के ग्रहण की प्रतिज्ञा और हिन्दू-मुसलमान में एकता की प्रतिज्ञा ग्रहण करनी थी, किन्तु वहाँ थोड़े लोग ही आये। गाँधी जी पंजाब और दिल्ली जाना चाहते थे। मथुरा के निकट उन्हें खुले हाथ में एक प्रपत्र मिला कि पंजाब प्रान्त में नहीं जाना है और उन्हें लौटाकर बम्बई भेज दिया गया। पत्र पाते ही गांधीजी ने अपने मित्र महोदव देसाई से कहा कि तुम शीघ्र दिल्ली जाकर यह वृत्तान्त श्रद्धानन्द से कह दो, किन्तु शान्ति भंग नहीं होनी चाहिए। वहाँ जाकर उन लोगों से यह भी कहना कि राजाज्ञा भंग करने पर हम दण्डित होंगे, परन्तु कभी शान्ति भंग नहीं होनी चाहिए। शान्ति में सदा हमारी विजय है। सूरत पहुँचने पर उस लौटाने वाले शासक ने कहा कि कोलाबा के पास लोगों की भीड़ इकट्ठी हो रही है। अतः मैं आपको यहीं उतारता हूँ। वहाँ अपार जनता इकट्ठी थी। बन्धन से मुक्त गाँधी जी यहाँ अपने को दिखाने गए। भयभीत अधिकारी ने जनता की ओर घोड़े दौड़ा दिए। वहाँ अस्त्र-शस्त्र सम्पन्न अनेक सैनिक थे। महात्मा जी ने तो अपने को किसी प्रकार बचाया, परन्तु कुछ मारे गए और कुछ घोड़ों की टापों के नीचे आ गये। फिर जनता महात्मा जी को देखकर शान्त होने लगी। महात्मा जी की शान्ति शिक्षा की उपेक्षा करके लोग पंजाब और पायधूनी में मारे गए और आहत हुए (5/91-104)।

'पैस्सिव रेलिस्टेन्स' मितीद, वाक्यमथोच्यत आङ्गलमधये।
आस्त सदाग्रहरूपमिंद यत्, सोऽयमयुङ्क्त 'यकार' सहायम् ॥ (5/3)

यह सत्याग्रह निर्बलों का मुख्य अस्त्र है। उसे हाथ में लेकर अपने साथियों सहित गाँधी जी ने युद्ध भूमि में अफ्रीका के शासक के उन बलवान वीरों को जीत लिया था और इसी सत्याग्रह से दुःखसागर में गिराये हुए भारतीयों का उद्धार करके पूज्य गाँधी जी ने अपने यश से दिशाएँ धवल कर दीं। गाँधी जी ने काठियावाड़ प्रदेश में पच्चीस शिष्यों सहित सत्याग्रहाश्रम स्थापित किया। इसे उन्होंने 25 मई, 1915 ई. में अहमदाबाद नगर में नियमपूर्वक चलाया (5/4-6)।

चम्पारन में नील आन्दोलन

बिहार प्रान्त में नेपाल के पास एक चम्पारन नामक स्थान था, वहाँ न कोई नेता था और न कोई कांग्रेस का नाम जानता था। चम्पारन में कृषि योग्य भूमि अधिक थी। वहाँ खेतों में किसान प्रायः नील बोते थे, जिससे अधिक धन की प्राप्ति होती थी। उसमें अंग्रेज तिकठिया भाग (3/20) प्राप्त करते थे (5/17-18)—

'चम्पारने' विपुलकर्षणभूमिभागः, क्षेत्रेषु तत्र कृषका बहुधा वपन्ति।
नीलं, हि येन धलब्धिरतीव भूयात्, तेष्वेव भागमलभन्त महागुरूण्डाः ॥(5/18)

हुआ यह कि, लखनऊ में उदात्त गुणों से युक्त कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वहाँ एक किसान गाँधी जी से मिला और चम्पारन के सारे कष्टों को बताया। वह किसान गाँधी जी के पीछे पड़ गया और उन्हें घर ले गया। उन्होंने अन्य किसानों के साथ उसके कष्ट को दूर किया तभी शासन की ओर से यह निर्देश मिला कि हे गाँधी! चम्पारन के बाहर चले जाइए। उन्होंने विनयपूर्वक शासनाज्ञा तोड़ी, परन्तु उन पर मुकद्दमा न चल सका, क्योंकि इस मुकद्दमे में कोई दम न था और पूर्ण रूप से दोष शासन पर जा रहा था। न्यायाधीश के पास से पत्र आया कि गवर्नर के कहने से आपको मुकदमे से बरी किया जाता है। वहाँ एक प्रशस्त नगरी 'मोती हारी, थी। महात्मा जी ने वहाँ निवास किया और अनेक वकीलों के साथ दफ्तर में खोज (तहकीकात) में लग गये। अंग्रेजों द्वारा पीड़ित किए जा रहे किसान लोगों ने अपने ऊपर बीती बातों को और तिकठिया नील सम्बन्धी माप को अनेक सज्जनों द्वारा लिखवाया। समूह में आए हुए किसानों से उस अहाते का कोना-कोना भर गया। गाँधी जी के दर्शन करके ही जाने के इच्छुक उन लोगों को जे. बी. कृपलानी आदि मित्र रोकते रहे। तहकीकात (खोज) में काफी समय व्यतीत हो रहा था, तभी गाँधीजी के पास बिहार सरकार का एक पत्र आया कि बिहार राज्य छोड़कर चले जाओ—**''विहारराज्यन्तु विहाय गम्यताम्''** इसका उत्तर उन्होंने उसी समय भेज दिया कि मेरा कार्य बहुत दिनों तक चलेगा। किसानों के दुःख के साथ ही मेरी स्थिति है, अर्थात् मैं तो किसानों के दुःख के मिटने पर जाऊँगा अथवा आप ही खोज कीजिये

अमृतसर का कांग्रेस अधिवेशन (5/126-136)

अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ जिसके अध्यक्ष पं. मोतीलाल नेहरू तथा प्रतिनिधियों के स्वागताध्यक्ष श्री मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) थे। इस अधिवेशन में बन्दियों को छुड़वाने के लिए चारों ओर से ऐसी आवाज उठी कि अंग्रेज अधिकारी भयभीत होकर बन्दियों को रिहा कर दिए। गाँधी जी ने अंग्रेजों द्वारा इंग्लैण्ड से भेजे गए हितकारी सुधारों को स्वीकार कर लिया। यद्यपि कुछ लोगों ने इसकी निन्दा की, किन्तु चितरंजनदास तथा मोतीलाल के सहयोग से प्रतिनिधियों के मतभेद को दूर किया गया। अंग्रेज श्री ए. ओ. ह्यूम कांग्रेस का संस्थापक था। उसका आश्रय लेकर भारतीयों ने अनायास राज्य अपना कर लिया। पंजाब में जलियाँवाला बाग में जो हत्याकाण्ड हुआ था उसके स्मारक के लिए गाँधी जी ने 5 लाख रुपया इकट्ठा कर लिया। गाँधी जी तथा गोखले आदि नेताओं के नियमों के मार्ग पर कांग्रेस अपना कार्य उत्तरोत्तर करती रही।

स्वेदेशी वस्त्र आन्दोलन (खादी का प्रादुर्भाव) (5/137-150)

गाँधी जी ने विदेशी वस्त्रों का परित्याग कराकर कर्घा, सूत, चर्खा आदि के द्वारा अपने हाथ से बनाए गए खादी वस्त्रों के प्रयोग पर बल दिया, जिससे मिल मालिक अपने कार्य में हानि देखते हुए घबड़ा गए। खादी को देखकर वे व्याकुल व दुःखी हुए। उन्होंने गाँधी जी को बुलाकर कहा कि आपके चलाए इस आन्दोलन में स्वदेशी वस्त्र महँगा पड़ेगा। अतः आप एक मिल और चला लीजिये जिससे अपने उद्देश्य में सफल और सुखी होंगे। गाँधी जी ने मिल मालिकों से कहा मेरा यह कार्य है कि हाथ के चर्खे से बने सूत से विचित्र खादी बनाकार बेकारी दूर करूँ। इस तर्क से मिल मालिक प्रसन्न हो गए तथा सभी ने खादी की प्रशंसा की ।

नमक कानून का विरोध एवं दाण्डी यात्रा—(सर्ग छः)

जनवरी, 1930 में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के सभापति पं. जवाहरलाल नेहरू थे। वहाँ अंग्रेजों से पूर्ण स्वराज्य लेना चाहिए—यह निश्चय कर गाँधी जी ने सभी वीरों से कहा तथा वायसराय को यह पत्र लिख दिया कि हम नमक लुटेरे बनेंगे (यही नमक सत्याग्रह था)—

ग्राह्यं स्वराज्यं परिपूर्णमस्मा, न्निश्चित्य गान्धी समुवाय वीरान्।
लिलेख पत्रं नरपाल-पार्श्वे, क्षारस्य लुण्ठाक इतो भवामि ॥ (6/2)

अंग्रेज शासक जो अपने अन्यायपूर्ण शासन में प्रजा को नई-नई यातनाएँ देते हुए राज्य कर रहे हैं, उसे प्रजा वहन नहीं करेगी। प्रजा ने आपसे बहुत बार याचना की, विवश होकर वह मेरी शरण में आई है। मेरा जो सत्याग्रह नामक अस्त्र है। उसका प्रयाग रोका नहीं जा सकता। महात्मा गाँधी ने उक्त पत्र किसी अंग्रेज बालक के

खेड़ा में वर्षा के अभाव के कारण अनाज अधिक उत्पन्न न हुआ। अतः पट्टेदारों ने निश्चित किया कि इस वर्ष कर नहीं देंगे। शासकों को उसे पूर्णतः क्षमा कर देना चाहिए। यह नियम था कि जिस वर्ष लोगों का अनुमान से अनाज की उत्पत्ति चतुर्थांश से कम हो या किसी प्रकार चतुर्थांश हो जाय तो शासक को कर या लगान कुछ नहीं लेना चाहिए। लोगों के विचार से अन्न चतुर्थांश से कम पैदा हुआ था। प्राप्त अनन यदि भूना जाय तो चबाने के लिए भी कम था, परन्तु शासकों का विचार था कि अनाज चतुर्थांश से अधिक हुआ है। एक विनम्र पत्र पर ही श्री मोहनलाल पण्ड्या, अनसूया और श्री शंकर लाल पारीक ने हस्ताक्षर किये थे। उन सज्जनों द्वारा भेजे विनम्र पत्र को शासकों ने हाथ में नहीं लिया । तब सरदार बल्लभ भाई पटेल वकालत छोड़कर गाँधी जी के सहयोगी बन गए तथा दोनों लोगों ने पूर्ण सत्याग्रह घोषित कर दिया कि कर नहीं देंगे तथा शारीरिक दण्ड सहन करेंगे। जेल जाकर और भूख सहकर भी नम्रता नहीं छोड़ेंगे–

ततो घोषितः पूर्ण-सत्याग्रहोऽयं, न देयः करो देहदण्ड सहेरन्।
सहित्वा च कारां बुभुक्षाञ्च सोढ्वा, परं नैव हेयः शुभो नम्रभावः ॥ (5/52)

इधर डिप्टी ने बैल, भैंस, घर में रखे गये पुराने अन्न और खाद्य पदार्थों एवं अन्य वस्तुओं को नीलाम करके कर वसूल कर लिया। परन्तु जो तैयार प्याज का खेत ले लिया, इस अन्याय को गाँधी जी सहन न कर सके और यह विचार दिया कि इस खेत को खोद लेना चाहिए। निडर श्री मोहन लाल पाण्ड्या ने साथियों सहित खोद-खोदकर प्याज का ढेर लगा दिया। इस संघ में श्री विट्ठल भाई पटेल और अन्य वीर किसान थे। श्री शंकर लाल के हल जोतने वाले सेवक ने खेत का सारा कर चुका दिया तो वहाँ बड़ा शोर हुआ। उन्होंने सारा खेत जनता के लिए दे दिया। पुलिस के साथ अधिकारी उस प्याज के खेत में आकर सभी खोदने वालों को बाँधकर साथ लेकर चले गये। यह समाचार बिजली की तरह फैल गया। बाद में राज्यादेश से लोगों को क्षमा मिल गयी तथा स्थिति शान्त हो गयी। मोहनलाल पाण्ड्या को भी नियत दिनों तक भोगे जाने वाला दण्ड दिया गया था, परन्तु बाद में उन्हें भी छोड़ दिया गया।

रौलेट एक्ट (5/75-112)

इसके बाद गाँधी जी ने रौलेट कमेटी की जब सिफारिश सुनी कि रौलेट बिल पास होना चाहिए तो अत्यन्त हैरान हो गए। धरा सभा में लालबहादुर शास्त्री ने इसके विरोध में जमकर भाषण दिया किन्तु बनावटी नींद में पड़ा लार्ड नहीं जागा अर्थात् उनकी एक न सुनी। बाद में बिल बनाकर पास हो गया तथा वह प्रयाग के गजट में प्रकाशित हो गया–

ततो 'बिलं' प्राप विधानरूपं। प्रकाशितं तद् 'गजटे' प्रयागे ॥(5/76)

इसके बाद गाँधी जी कमिश्नर के पास गए। वहाँ सशस्त्र सेना को देखकर समझ लिया कि यह युद्ध के लिए तैयार खड़ी है। आज्ञा पाकर हम कमरे में गए और जनता पर किए गए इस विप्लव के विषय में कहा कि आपने अच्छा नहीं किया। कमिश्नर ने क्रुद्ध होकर कहा कि मेरे पास कोई उपाय नहीं था। यदि जनसमूह किले की ओर गया तो वहाँ उपद्रव अवश्य होगा। उसे रोकने के लिए मैंने ऐसा किया। ये लोग आपकी शान्ति शिक्षा की उपेक्षा करके नीति-नियम भंग करना चाहते हैं। गाँधी जी ने कहा कि निश्चय ही जनता उपद्रव नहीं करना चाहती। बार-बार उकसाने पर उद्विग्न होकर शान्तिप्रिय लोग सदा विप्लव करने लगते हैं अहमदाबाद नगर में यह अपवाद फैल गया कि अनसूया बन्दी कर ली गयी है। अतः जनता विक्षिप्त हो गयी। वहाँ पहुँचकर गाँधी शान्ति-शिक्षा न लेते हुए लोगों को क्रोध के आवेश में सुनकर और एक सैनिक की हत्या सुनकर गाँधी जी चित्त में क्षुब्ध हुए। हिंसा और अशान्ति देखकर गाँधी जी ने 'सत्याग्रह' और 'सविनय-अवज्ञा' आन्दोलन दोनों कार्यों को स्थगित कर दिया (5/105-112)।

पंजाब में अंग्रेजों की दमन नीति (5/113-125)

वायसराय के अनेकों तारों एवं पत्रों द्वारा मना करने पर गाँधी जी पंजाब नहीं गये, क्योंकि वह सविनय अवज्ञा नहीं करना चाहते थे। पंजाब में दमन नीति शान्त करने पर बढ़ रही थी। वहाँ राजाज्ञा ही न्याय थी जैसे वहाँ नादिरशाह का शासन था। अंग्रेज सिपाही, लोगों को कीड़े के समान चलाते थे कोड़े बरसाते थे तथा विविध प्रकार की यातना देते। नेता किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे। दीनबन्धु एण्ड्रूज के पत्रों से सम्पूर्ण समाचार जानकर गाँधी व्यथित हो गये तथा मदनमोहन मालवीय के बुलाने पर पंजाब जाने को तैयार हो गए। अन्त में वायसराय ने भी आदेश दे दिया। गाँधी जी जब लाहौर पहुँचे तो बेहद जनसमूह उमड़ पड़ा। जलियाँवाला बाग में जो हत्याकाण्ड हुआ था उसकी तहकीकात के लिए "हण्टर कमेटी" गठित हुई जिसका कि सभ्य लोगों ने पूर्ण बहिष्कार किया–

'जल्यानबागे' यदभूच्च काण्डं, तस्यैव शोधे नियता 'कमेटी'।
सा 'हंटरीया' कथिता जनैस्तु, बहिष्कृता सभ्यगणेन पूर्णम्॥ (5/119)

बहिष्कार करने वाले लोगों ने उसके सामने कोई गवाही न दी। तब वहीं के लोगों ने एक कमेटी नियुक्त की जिसकी प्रधानता गाँधी जी ने की। उसमें तहकीकात के लिए मालवीय जी, उ ब्बास तैयब तथा मोतीलाल नेहरू भी थे। पंजाब में हत्या और प्रचण्ड धन हानि देखकर ये सब शोक में व्याकुल और क्रुद्ध थे। इस समिति ने तहकीकात करके–अंग्रेजों ने जो भी किया था–यह सब वृत्तान्त रिपोर्ट में लिखा। यदि कोई मनस्वी इसे पढ़े तो यह समझ जाय कि अंग्रेजों की दुष्टता और अत्याचार का क्या स्वरूप था।

द्वारा भेजा। वह पत्र देखकर दिल्ली के अधिपरित लार्ड इरविन घबड़ा उठे। यह पत्र वायसराय को 3 मार्च, 1930 को मिला। वायसराय ने उस पत्र का जो हृदयभेदी उत्तर दिया उससे अन्य कोर्ट मार्ग न देखकर महात्मा जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। 11 मार्च को सत्याग्रह युद्ध के लिए प्रयोग होगा। यह घोषणा सुनकर सभी लोग साबरमती के तट पर महात्मा गाँधी के दर्शन के लिए इकट्ठे हो गये।

बहुत हितकारी वचनों के साथ महात्मा जी ने कहा कि यदि मैं बन्दी हा जाऊँ तो कोई धैर्य न छोड़े। हजारों की संख्या में हम जिधर चल देंगे उधर पृथ्वी को कँपा देंगे। मेरी प्रशस्त यात्रा नमक लूटने के लिए दाण्डी नामक नगर में होगी। यह नमक तो भारत देश का जीवन है और वह राज्य कर के कारण दुर्लभ है। संयमी गाँधी जी ने प्रातःकाल सभी से ये हितकारी वचन बोले कि महीने और वर्षों में यह युद्ध समाप्त हो या न हो, कोई भी युवक युद्ध से पराङ्मुख नहीं होगा और विनम्र नीति का पालन करेगा। तत्पश्चात् वह नदी के पास बने हुए फाटक से सभी को लौटाकर सेना लेकर चल दिये।

गाँव-गाँव जाते हुए गाँधी जी जगह-जगह रुककर विश्राम करते आगे बढ़ते रहे। इस दौरान अपने भाषण में उन्होंने कहा कि मेरा प्रधान कार्य नमक पर लगे कर का विनाश है। नमक गरीब लोगों के भोजन में सहायक हो, क्योंकि उन्हें नमक रोटी ही मिलती है। वह तुम्हारे गाँव में प्रति वर्ष आठ सौ रुपये का खरीदा जाता है। यदि नमक कर का विनाश हो सका तो स्वराज्य प्राप्ति अपने हाथ में है। भारत में प्रति व्यक्ति औसत आय सात पैसा है। अंग्रेज हमारा देश लूट रहे हैं और अपना घर भर रहे हैं। गाँधी जी की यह सोपदेश वाणी पन्द्रह हजार लोगों के गले उतर गयी। फिर वह आगे चल दिए। गाँव-गाँव जहाँ उन्होंने विश्राम किया, सभाएँ करके सेना बढ़ाई। उन सभी को अलग-अलग काम दे दिया। मनसा, वाचा, कर्मणा इस राजा की सहायता पाप की वृद्धि करता है। मुझे उनसे विरोध करना ही अच्छा लगता है। वह विरोध इस प्रकार का हो जिससे कि वे इस देश से चले जायें। मेरा यह सत्याग्रह रूप अस्त्र हिंसा-रहित है। हम दुश्मन के साथ इसी से लड़ेंगे। समुद्र तट पर जो दाण्डी नामक गाँव है, वहीं हम मानसिक शक्ति के साथ जा रहे हैं। मेरे लिए जो यह ध न से भरी थैली रखी गयी है, इससे सन्तुष्ट न होकर मैं यह माँग रहा हूँ कि प्राध्यापक, स्नातक और युवतियाँ सभी यज्ञ में आहुति देने के लिए आगे आवें। इस बड़ी सृष्टि में सभी प्राणी नमक खाते हैं। युद्ध में मैं सभी का आह्वान करता हूँ, क्योंकि देश को अंग्रेजों के राज्य से छुड़ाना है।

जननेता तपस्वी गाँधी जी आगे तापी नामक नदी को पारकर मार्ग देखने (प्रतीक्षा करने) में संलग्न सूरत पहुँचे। आगे वह कराडी गए उसके बाद दाण्डी पहुँचे,

वहाँ महात्मा जी ने कहा कि यदि मैं जेल चला जाऊँ तो यशस्वी नेताओं को व्यग्र न होना चाहिए। सभी नेतृत्व करने योग्य हैं। सैनिकों से जेल भर दो। यह तुम लोगों की सेना तो धारा के समान आती रहेगी। दाण्डी में प्रवेश करते हुए वीरों को सदा खद्दर शोभित होना चाहिए। उन्हें सत्य बोलना चाहिए। हिंसा का स्मरण न करना चाहिए। लंगोटी बाँधे महात्मा गाँधी ने समुद्र में स्नान करके, हे भगवान् कहा और तट पर फैले हुए नमक को कानून तोड़ने के लिए अपनी मुट्ठी में ले लिया। इसके बाद जय-जयकार का घोष करते हुए सभी ने एक-एक मुट्ठी भर ली। इस प्रकार सारे देश में महात्मा जी के मतानुसार नमक कानून तोड़ा। नमक चुराने में तत्पर महात्मा जी ने सैनिक और वीर शिष्यों को जब सिपाहियों ने पकड़ लिया, तब जितेन्द्रिय वह ''नमक चोर'' कहे जाने लगे और जेल जाने पर तो वह उपाधि सत्य होगी। आप लोगों को नमक का ढेर लूटना चाहिए और खान से निकले नमक के ढेर को छीनना चाहिए। इसमें देर नहीं लगनी चाहिए ताकि यह काम बिगड़े नहीं। इस प्रकार किया जाने वाला कार्य शासन को विनष्ट कर देगा। बली और श्रेष्ट जयराम इत्यादि प्रसिद्ध वीर पकड़े गए हैं। दानों हाथों से लाठियाँ मारने में लगे सिपाहियों ने गाँव-गाँव में लोगों को पीटा। नमक बनाने वाले देसाई आदि बड़े-बड़े अनेक योद्धा पकड़े गये हैं। इस प्रकार युद्ध चल रहा है, कोई भी पीछे न हटे–

नेतारो ये गृहीता बलिवर 'जयरामा' दिविख्यातवीराः,
ग्रामे ग्रामे काभ्यां ललगुडहतिपरैस्ताडिता राजदासैः।
'देशायी' श्रीमहान्तो लवणकृतिकाराः नैकयोधाः सुबद्धाः,
एवं युद्धं प्रवृत्तं, नहि भवतु जनः पृष्ठागामी तु कोऽपि ॥ (6/44)

अनेक नगरों के मुख्य मार्गों में अंगीठी पर पानी भरी कड़ाही रखकर चमचा चलाते हुए वीर सैनिक, सिपाहियों द्वारा दण्डित हो रहे थे तब महात्मा जी ने वायसराय को एक पत्र लिखा। मेरी सारी सेना या तो जेल में डाल दो या गोलियों से मार डालो, या फिर नमक कानून को नष्ट करके नमक-कर माफ कर दो, तब शान्ति होगी। यह पत्र लिखकर महात्मा जी अर्द्धरात्रि में सोए और सिपाहियों ने आकर उन्हें पकड़ लिया। महात्मा जी के जेल चले जाने पर सभी संयमी वीरों ने अब्बास तैयब को अपना नेता चुना। नमक लूटने में लगे सभी वीरों को मजिस्ट्रेट ने बन्दी बना लिया। अब्बास ने महात्मा जी का वह पत्र वायसराय के पास भेज दिया। तुम लोग उन्हें गोलियों से मारकर अपने नमक की रक्षा करो। सरोजनी नायडू अपनी सेना लेकर कार्यालय भूमि पहुँची। तभी सिपाहियों ने उसे चारों ओर से लोहे के तारों से घेर लिया। नायडू प्यास से व्याकुल हो उठी। तभी एक सैनिक की सेना आ गई, उसने लोहे के तारों से बने जाल को काटकर और जल देकर उनके प्राणों की रक्षा की। लाठियाँ चलाने

में कुशल लोगों ने सभी सैनिकों को मारकर उनके हाथ, पैर और कमर तोड़ दी। धरासाना नामक गाँव के आस-पास उस सेना को सिपाही जीत न सकें। तब लार्ड इर्विन ने हारकर महात्मा गाँधी के साथ ही सभी सैनिकों को छोड़ दिया। उस समय बुलाये जाने पर महात्मा जी दिल्ली गए और वायसराय इर्विन से मिले। एक सन्धि-पत्र लिखकर दोनों ने हस्ताक्षर किए फिर दोनों लन्दन में ''गोलमेज-कॉन्फ्रेन्स'' में भाग लेने चल दिए।

गोलमेज कॉन्फ्रेन्स—(सर्ग सप्तम्)

गाँधी जी लन्दन गए और वहाँ गोलमेज परिषद् में कांग्रेस की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पुनः उन्होंने कहा कि इस गोलमेज परिषद् में ऐसे कोई सदस्य नहीं हैं जो हमारे हित की बात कहने वाले हों। अतः गोलमेज परिषद् में जो काम हुआ है, वह झूठ होगा। यह मेरा निश्चय है। इस सभा में जो योजना बनाई गई है, वह अंग्रेजी राज्य के शोषण के लिए होगी। मैं कांग्रेस की ओर से यह कह रहा हूँ कि यह कांग्रेस से अलग है अर्थात् वह इसका समर्थन न करेगी। गोलमेज परिषद् में पृथक् निर्वाचन की बात सुनकर हरिजनों के हितैषी महात्मा जी ने कहा कि ये हरजन हिन्दुओं में दुःखी हैं और उनका प्रिय चाहने वाला..... मैं हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इनका पार्थक्य कभी नहीं है। एकता लानी चाहिए—यह मेरी प्रतिज्ञा है।

इस प्रकार महात्मा जी लन्दन से आकर बम्बई में सबसे मिले तथा गोलमेज परिषद् की असफलता के विषय में बताया। सभी लोग अत्यन्त दुःखी हुए (7/1-10)।

20 नवम्बर, 1932 ई. को महात्मा जी ने यह स्वीकार किया कि हरिजनों का पार्थक्य न हो तथा इसके लिए छुआछूत एवं मन्दिरों में प्रवेश पर रोक आदि को हटाया। बार-बार मुक्ति, बार-बार सेना और बार-बार युद्ध। इस क्रम से उन्होंने तपस्या में वृद्धि की। श्री बजाज के प्रयत्नों से वर्धा के सेवा गाँव में अपनी झोपड़ी में रहते हुए महात्मा जी को आंशिक शासन प्राप्त हुआ। जवाहरलाल आंशिक शासन पाकर सन्तुष्ट हो गए। उन्होंने 1937 ई. में सात प्रान्तों में अच्छा शासन किया। लाल साफा बाँधकर पुलिस लोगों को डराती है, परन्तु देश महात्मा जी के वास के कारण जनता निर्भय हो गयी। 1939 ई. में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और कांग्रेस सरकार का सारा काम समाप्त हो गया। 8 अगस्त, 1942 ई. में अंग्रेजों के कान में ''भारत छोड़ो'' की यह घोषणा पहुँचा दी और नव भारत को अन्य नेताओं के साथ महात्मा गाँधी पकड़ लिए गए (7/11-58)।

''नोआखाली'' में मुसलमानों का उपद्रव—(सर्ग आठ)

गाँधी जी कार्य करने की इच्छा से सेवाग्राम से दिल्ली गए, किन्तु वहाँ सुना

कि बंगाल में मुसलमान निरपराध हिन्दुओं को मार रहे हैं। नोआखाली के लोगों में हो रहे उपद्रवों के विषय में महात्मा जी ने सुना। मुस्लिम लीग का मत यह था कि यदि यहाँ के सम्पूर्ण हिन्दू मुसलमान हो जायें तो शीघ्र पाकिस्तान बन सकता है। अतः हिंसा वृत्ति में संलग्न होकर बलवान हिन्दुओं को मुसलमान बनाओ। महात्मा जी शीघ्र ही नोआखाली पहुँचकर प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान के घर जा-जाकर उनमें भाईचारे की भावना कायम करते हुए शान्ति की स्थापना की (8/1-10)।

बिहार में हिन्दुओं का उपद्रव (8/11-32)

जिस समय गाँधी जी नोआखाली में मुसलमानों का उपद्रव शान्ति करने में लगे थे उसी समय तैयब जी का पत्र आया कि हे योगिन! मुसलमानों की रक्षा के लिए तुरन्त बिहार आइये। गाँधी जी ने बिहार पहुँचकर एक सभा में कहा कि दुःख की बात है कि जिस प्रकार नोआखाली के मुसलमान दुष्ट थे उसी प्रकार यहाँ बहुत से हिन्दू दुष्ट हैं, जिन्होंने मुसलमानों को मारा है और उनका धन नष्ट कर दिया है। पुनः अपने वचनों एवं भाषणों से बिहार के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच शान्ति सौहार्द्र की स्थापना की। गाँधी जी ने कहा कि पाकिस्तान बनाने की आकांक्षा से बद्ध मुहम्मद अली जिन्ना ने हिन्दुओं का विनाश कर अनुचित कार्य किया है। यदि यह उचित हुआ तो पाकिस्तान दूँगा, परन्तु अनुचित कार्य मैं नहीं करूँगा। पुनः 14 अगस्त को महात्मा जी ने जिन्ना को पाकिस्तान देकर 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत में स्वराज्य की घोषणा की–

मासेऽगस्ते भूततिथ्यां महात्मा, जिन्नार्थं वे पाकदेश प्रदाय।
एवं तिथ्यां पञ्चदशयां शुभाहे, स्वं राज्यं तद् भारते घोषयच्च ॥ (8/34)

इसी बीच गाँधी जी अस्वस्थ हो गए तथा पुनः जब 12 दिन बाद स्वस्थ हुए तो 30 जनवरी, 1948 ई. की शाम को सांध्यकालीन प्रार्थनादि कर्म करने की इच्छा से जीर्ण-शीर्ण वृद्ध महात्मा गाँधी पौत्री मनु बहन के दाहिने कन्धे पर दाहिना हाथ रखकर पौत्र वधू आभा के कन्धे पर बायां हाथ रखे हुए सभा में जा रहे थे। पादस्पर्श करने वाले नित्य लोग आते थे। नाथूराम गोडसे को इसी भावना से आते देखकर किसी ने उसे रोका नहीं, परन्तु हिंसक व्याध रूप नाथूराम गोडसे ने गाँधी जी की छाती में तीन गोलियाँ दाग दीं। अन्त में महात्मा जी स्वर्ग को सिधार गए।

3. श्रीजवाहरज्योतिः महाकाव्य

'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्' के रचनाकार पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी का जन्म मथुरा में बद्रीनाथ चतुर्वेदी के यहाँ हुआ था। आपकी माता का नाम द्रौपदी था। श्रीगान्धीगरिमाकाव्यम्, श्री आद्याचार्यनिम्बादित्यपरम्परा सप्तशती, श्रीमद्आचार्यबल्लभशतकम्, महाकवि श्री सूरदासशतकम्, मुक्तकाञ्जलिसाहस्री

आदि आपकी अन्य रचनाएँ हैं।

प्रकृत महाकाव्य में पं. जवाहरलाल नहेरू का चरित्र 21 सर्गों और 1067 श्लोकों में उपनिबद्ध है। महाकाव्य में सर्गशः वस्तु-विन्यास इस प्रकार है–

1. जवाहरलाल नेहरू का जन्म तथा आरम्भिक शिक्षा।
2. विदेश में अध्ययन।
3-4. वकालत, राजनीति में प्रवेश, विवाह, इन्दिरा का जन्म, 'होमरूल' का आन्दोलन। नेहरू जी का छह-मास का कारावास, प्रिन्स ऑफ वेल्स के विरोध में कारावास, विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, गाँधी और मोतीलाल नेहरू की बातचीत आदि।
5. बेलगाँव का कांग्रेस अधिवेशन, साम्प्रदायिकता के विराध में गाँधी जी का अनशन, कमला नेहरू जी का स्विट्जरलैण्ड-प्रवास, रूस-यात्रा, स्वदेश में श्रमिकान्दोलन का नेतृत्व आदि।
6. सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गाँधीजी की दाण्डी-यात्री, जवाहरलाल का स-परिवार कारावास आदि।
7. लन्दन में गोलमेज कांग्रेस अधिवेशन, गाँधी-इर्विन समझौता, कानपुर में साम्प्रदायिक दंगा, नेहरू जी की लंका-यात्रा आदि।
8. द्वितीय 'गोलमेज सभा' में गाँधी जी का भाग लेना, जवाहरलाल को दो-वर्ष की कारा, देहरादून कारा में नेहरू का इन्दिरा को पत्र लिखना आदि।
9. महात्मा जी का यरवदा-कारावास, नेहरू जी का गाँधी जी से पूना में मिलना, प्रयाग में बन्दी, प्रेसीडेन्सी और फिर अलीपुर में कारावास, 1936 में कमला नेहरू का देहावसान।
10. महात्मा जी का देहपात और नेहरू की उत्तराधिकारिता आदि।
11. नेहरू जी का देश-प्रेम।
12. माता स्वरूपरानी का देहावसान, कांग्रेस का त्रिपुरा और कलकत्ता अधिवेशन, कांग्रेसीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण आदि।
13. 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, चुनाव, हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव, ब्रिटिश शिष्टमण्डल का आगमन।
14. 1947 को स्वतन्त्रता-प्राप्ति।
15. कश्मीर का भारत में विलय, पटेल जी द्वारा देश की छह सौ रियासतों का भारतीय संघ में मिलाना; 26 जनवरी, 1950 को नये संविधान को लागू होना आदि।
16. 1951 में देश की लोकसभा और विधानसभा का चुनाव, राष्ट्रभाषा हिन्दी

और शासन द्वारा उसकी उपेक्षा।

17. देश के राज्यों का गठन, आर्थिक योजनाओं का विकास।
18. नेहरू जी की विश्व-यात्रा, ब्रिटिश कॉमन वेल्थ में भारत का प्रवेश, भारत का राष्ट्रमण्डल में मिलाया जाना आदि।
19. विश्वशान्ति के विषय में नेहरू जी के विचार, लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमन्त्री बनाना, इन्दिरा गाँधी का प्रधानमन्त्री बनाना, बांगलादेश का निर्माण आदि।
20. नेहरू जी का महाप्रयाण।
21. नेहरू जी की मृत्यु पर लोगों की श्रद्धाञ्जलि आदि।

श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्य में शान्ति दूत भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का चरित उपनिबद्ध है। विभिन्न प्रकार के शिक्षकों से स्वदेश और विदेश में शिक्षित जवाहरलाल नेहरू की व्यक्तित्व-संरचना धर्मनिरपेक्ष भारत के नितान्त अनुकूल थी। जाति, धर्म, मतवाद आदि सारी संकीर्णताओं में उत्तीर्ण उनके चरित की कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं, जो सदैव प्रेरक रहेंगी।

महाकाव्य का आरम्भ कवि सारी पारम्परिक सारणियों को छोड़कर करता है। किसी देवता के स्मरण से काव्योपक्रम न करके शक्तिरूपा उस बुद्धि के स्तवन से करता है, जिसका ऐसी कृति के सम्पादन में सामर्थ्य-व्यय हुआ है।[1] ऐसा आधुनिक चेतना के अनुरोध से हुआ है, जिससे जर्जर रूढ़ियों के प्रति अनास्थ मानवता को स्वशक्ति का अवलम्ब मिलता है।

अपना घर दूर होने पर अधिक याद आता है। वे भारतीय जो विदेशों में किन्हीं कारणों से प्रवास कर रहे थे, जब लोकमान्य तिलक और अरविन्द घोष ने बहिष्कार की बात की तो बहुत प्रसन्न हुए।[2] वे इतना दूर रहते हुए भी राष्ट्र के दुःख-सुख से जुड़े हुए थे। बैरिस्टर हुए जवाहरलाल अपना स्वतंत्र धंधा करके भी सुख से रह सकते थे, किंतु जिस भावावेश में पटना के कांग्रेस अधिवेशन में गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता के आन्दोलन में कूद गये[3] और तत्कालीन राष्ट्र-चेतनाओं द्वारा 50,000/- रुपये एकत्र करके अफ्रीका में रहने वाले भारतवासियों की सहायतार्थ दिया[4] वह उनकी राष्ट्रीय-चेतना का प्रशंस्य प्रमाण है। कवि गाँधी जी के प्रसंग में कहता है–

"मोहन मोहिनी शक्तिरपूर्वा वशकारिणी"[5] किन्तु गाँधी जी में यह वशकारिणी शक्ति या शत्रुओं को निरस्त्र कर देने वाली विशेशता[6] अकारण नहीं प्रत्युत सत्य-अहिंसा जैसे आध्यात्मिक गुणों को व्यावहारिक धरातल पर लाकर अपना जीवन-मूल्य बना लेने के कारण थी। 1920 से 1929 तक हिन्दू और मुसलमानों के बीच बैरभाव उग्र

रहा। अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु उसे शान्त न किया जा सका। इस पर गाँधी जी ने सत्याग्रह करते हुए 21 दिनों का उपवास रखा, जिससे समस्या सुलझ सकी।[7]

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में पहुँचते-पहुँचते भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन जन-जन की भावना में रच-बस गया था। देश के प्रबुद्ध वर्ग के साथ ही श्रमिकों और कृषकों का भी आक्रोश[8] इसका प्रमाण है।

31 दिसम्बर, 1929 की अर्धरात्रि को देशवासियों ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रावी के तट पर पारित किया।[9] कवि कहता है–

"अस्मत्तीर्य तंदेवाद्य पावनं भुवि भारते।"[10] सचमुच किसी भी रामेश्वरम् आदि से रावी का वह तटवर्ती प्रदेश स्वल्प महत्त का नहीं, जहाँ जर्जर मरणासन्न भारत को उसके सपूतों ने उसे प्राण देने का आश्वासन दिया था–

"..... देशस्वातन्त्र्यहेतुना होष्यामः स्वञ्चसर्वस्वं पताकायास्तलेस्थिताः।"[11]

जवाहरलाल का पूरा परिवार कारा (कारागार) में चला गया। मातृभूमि के सर्वस्व त्यागी उस कर्मवीर की वृद्धि माँ स्वरूपरानी का पुलिस के प्रहार से सिर फूट गया। माँ के रक्तरंजित मस्तक की छाया जवाहरलाल को मातृभूमि के प्रत्येक पग पर दृष्टिगत हुई होगी। स्वयं जवाहरलाल की भी पिटाई हुई। 1929-30 ई. के वर्ष जवाहरलाल नेहरू के जीवन के निर्णायक वर्ष रहे। इनमें उन्हें और उनके परिजनों को देश के लिए अगणित दुःख उठाने पड़े।

स्वतन्त्रता के लिए चेतना एक बार उद्बुद्ध होकर आफ्लोदय शान्त नहीं होती इस वस्तुत्व को साम्राज्यवादी तब तक नहीं समझ पाये जब तक 'बलपूर्वक शासन' की सनक ठण्डी न हुई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही शासन और आकुल राष्ट्र के बीच एक निर्णायक रस्साकशी के क्षणों का तनाव सदैव विद्यमान रहा। दशा कुछ ऐसी थी–

"आन्दोलनं ततः कारा मुक्तिरान्दोलनं पुनः
निरन्तरमभूद्देशे तदाभारतवासिनाम्॥
कारागाराद् यदा याता नेतारोदेशवासिनः।
विरोधशंखमापूर्य कारागारं पुनर्गताः॥"[12]

1932 ई. में शासन द्वारा दलित वर्ग के पृथक् निर्वाचन के निर्णय को कवि सहसा वज्रपात बताता है,[13] किन्तु यह सबके लिए नहीं था। इसके साथ जुड़े राष्ट्रीय प्रश्न को तो गाँधी जैसे ही समझ सकते थे, जिन्होंने इसके विरोध में आमरण अनशन ठान दिया था।[14]

जीवन के अमूल्य अट्ठाईस वर्षों को राष्ट्रीय स्वाधीनता-यज्ञ में होम देने वाले[15] जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व में स्वतन्त्र भारत में मन्त्रिमण्डल का गठन

हुआ।[16] गाँधी जी के परामर्श पर विभिन्न विभाग के मन्त्रियों का चयन किया गया, किन्तु इस महान् राष्ट्रीय यज्ञ के पुरोधा महात्मा गाँधी ने कोई पद नहीं लिया।[17]

शताब्दियों की दासता की मार खाये होने पर भी रजवाड़ों का स्वार्थ और मिथ्यादर्प उन्हें भारत-संघ में मिलने से रोक रहा था। केवल समझा-बुझाकर उन्हें एक संघ में मिला लेना असम्भव था, ऐसे समय तत्कालीन उप-प्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री सरदार पटेल ने उनका जिस चातुर्य से एकीकरण किया[18] वह एक नितान्त राष्ट्रीय और कालोचित कार्य था।

जवाहरलाल नेहरू ने केवल भारत को स्वतन्त्र करा देने के ही महत्कार्य में योगदान नहीं दिया प्रत्युत महायुद्ध की त्रासदी में जीते विश्व की शान्ति का सन्देश भी दिया। उन्होंने न केवल भारत अपितु विश्व के मानवों को ऐक्यबद्ध करने की आजीवन चिन्ता की।[19]

"यदैषामस्त्राणां लोकेऽस्मिन् रचना न स्यात्,
हिंसा प्रवृत्तिं त्यक्त्वा यसौ मानवो हिंसया वसेत्।
विश्वस्यसर्वराष्ट्रणां संघाश्चेत्स्थापितोभवेत्,
तदालोकस्य राष्ट्राणां सर्वएव हि मानवाः
वसेयुः सुखितो लोके समस्ते इतिनिश्चितम्॥"[20]

1964 ई. में 74 वर्ष की अवस्था में पण्डित जवाहरलाल नेहरू का देहावसान हो गया।[21] कवि अपने काव्यनायक जवाहरलाल के जीवनादर्श में अपने राष्ट्रीय आदर्श को ढूँढ़ता हुआ कहता है–

"सुविस्तृतेऽस्मिन् जगति तेषां जन्म हि सार्थकम्।
स्वदेहचिन्तां त्यक्त्वा यैः साधिता मानवोन्नतिः॥"[22]

जवाहरलाल ने जो किसी धर्म विशेष के न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के थे, अपने रिक्थ-पत्र (वसीयतनामा) में लिखा कि दाह-संस्कार के अतिरिक्त उनका कोई और्ध्वदैहिक धार्मिक संस्कार कृत्य न किया जाए,[23] परन्तु उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनके भस्मावशेष की एक मुट्ठी गंगा में अवश्य डाली जाय।[24]

4. श्रीभगतसिंहचरितम्

सात सर्गों और 411 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य के अन्तर्गत महान् देशभक्त, शहीदे आजम, स्वतन्त्रता संग्राम के अमर शहीद वीर भगतसिंह के रोमांचक जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य की सर्जना आचार्यश्री स्वयंप्रकाश शर्मा ने की है जो केन्द्रीय राजकीय सेवा से निवृत्त होकर सम्प्रति टी/2615 रुड़की रोड कैम्प, मेरठ कैण्ट (उत्तर प्रदेश) में निवास करते हुए संस्कृत

साहित्य की सृर्जना कर रहे हैं। शर्मा जी ने 1976-78 इं. के बीच इस काव्य की सृर्जना की है तथा 1978 ई. में भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से इसका प्रकाशन किया।

प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तर्गत कवि ने प्रारम्भिक श्लोक में ही श्री भगतसिंह को हुतात्माओं का राजा कहा है, मातृभूमि के पारतन्त्र्य पाशों का भेत्ता कहा है तथा अपने देश को पराधीनता की शृंखला से मुक्त कराने के लिए अपने प्राणों को तृणवत् त्यागने वाले भारतीय वीरों के चरित का गमन करके अपनी लेखनी को पुण्यशालिनी बनाने की कामना प्रकट की है–

धन्याः सुपुण्या निजदेशमुक्त्यै प्राणान् स्वकान्ये तृणवत्त्यजन्ति।
विलिख्य पुण्यं चरितं हि तेषां पुण्यत्वमीयादपि लेखनी मे ॥ (1/3)

इसके पश्चात् प्रस्तुत काव्य के चरितनायक अमर शहीद श्री भगतसिंह के पितामह श्री अर्जुन सिंह, पिता श्री कृष्णसिंह, पितृव्य श्री स्वर्णसिंह तथा श्री अजीत सिंह के देशभक्तिपूर्ण त्यागमय कार्यकलापों का वर्णन किया है। भारतमाता के पैरों में पड़ी हुई अंग्रेजों की दासता की सुदृढ़ शृंखलाओं को काटने के प्रयत्न में श्री अर्जुन सिंह के तीनों पुत्रों को विदेशी सरकार द्वारा दिए गए कठोर कारावास की यातना से श्री स्वर्णसिंह की मृत्यु हो गयी–

कारांनिबद्धो बहुपीडितात्मा निकृष्टभोज्यग्रहणाच्च हेतोः।
क्षणे क्षणेऽसौ क्षयरोगखिन्नो नामावशेषं सपदि प्रपेदे ॥ (1/12)

स्वर्णसिंह की मृत्यु से दुःखी अजीतसिंह अंग्रेजों के अत्याचार पर बहुत क्रुद्ध होकर विदेशी शासकों के साथ बहुत घोर युद्ध छेड़ दिया। उसने ''भारतमाता सोसाइटी'' बनायी तथा क्रान्तिकारी लेख लिखकर लोगों में अग्रभाव जागृत किए। उसने चुपके-चुपके सेना की टुकड़ियों में, राजाओं के घरों में विद्रोह फैला दिया जिससे विदेशी सरकार ने बहुत भयभीत होकर उसे माण्डले किले (बर्मा) की जेल में बन्द कर दिया। जेल से छूटने पर भारत देश वापस लौटा। उसका भव्य स्वागत हुआ। वह सर्वप्रिय नेता हो गया। एक बार सूरत नगर के कांग्रेस अधिवेशन में तिलक जी ने ऊँचे शब्दों में घोषणा की–अजीतसिंह के समान बुद्धिमान दूसरा कोई न देखा गया है और न सुना है। अतः जब हमारा देश स्वतन्त्र होगा तो यही सर्वप्रथम राष्ट्रपति बनें। ऐसा कहकर तिलक ने अजीतसिंह के सिर पर मुकुट रख दिया। यही नहीं अजीतसिंह ने ''गुप्त क्रान्ति दल'' बनाया तथा लोगों में खूब प्रचार करना शुरू किया। अपने उग्र लेखों से जनता में जागृति पैदा की। उसके इस अभियान से शङ्कित होकर दुष्ट शासक उस पर अभियोग लगाने को सोच रहे थे कि वह विदेश चले गये। देश स्वतन्त्र होने पर (15/8/1947) विदेश से वापस लौटने पर कहने लगा (1/13-22)–

अद्यास्मि धन्यः कृतकृत्यभूत। इत्येतदुक्त्वा स् जहौ शरीरम् ॥ (1/22)

अर्जुनसिंह का तीसरा पुत्र श्रीकृष्णसिंह जो देशभक्तों में सदा अग्रगामी एवं क्रान्तिकारी लोगों में विश्रुत था, "स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है" ऐसी जिसने घोषणा की उस लोकमान्य तिलक जी से प्रभावित हुआ तथा सदा अपने हृदय में मातृभूमि धारण करता था। एक बार नेपाल राज्य में गया। वहाँ के राजा ने उसका बहुत सम्मान किया। उसके इस मान से क्रुद्ध होकर अंग्रेज शासकों ने उसे बन्दी बना लिया। इसी प्रकार देश सेवा हेतु इन्हें अनेकों बार जेल जाना पड़ा। क्रान्ति-यज्ञ की पूर्ति हेतु ही श्रीकृष्ण सिंह को पुत्र रूप में 28 सितम्बर, 1907 ई. को श्री भगतसिंह ने जन्म लिया (1/23-28)।

भगतसिंह बचपन से ही अंग्रेजों को भारत देश से भगाने के विषय में कृतसंकल्प था। अत्यन्त जागरूक एवं प्रतिभासम्पन्न होने के कारण उसने बहुत थोड़े समय में ही अपनी शिक्षा पूर्ण कर ली। साथ ही अनेक क्रान्तिकारी साहित्य का भी अध्ययन कर डाला। अपनी देश भूमि से मैं अंग्रेजों को अर्द्धचन्द्र निकाल दूँगा। यह कहकर दूरदर्शी भगतसिंह लोगों को ढाँढ़स बँधाया करता था (1/33-36)।

"दत्त्वार्धचन्द्रं बहिराङ्गलेशान्, निष्कासयिष्ये निजदेशभूम्याः।"
इत्थं प्रतिज्ञाय सुदूरदर्शी, स सान्त्वयामास जनान् प्रतप्तान् ॥ (1/36)

यही कारण था कि उसने सांसारिक भोग भोगने के लिए न तो नौकरी ही की और न ही विवाह। वह क्रूर अंग्रेजों के प्रति बैरभाव से भरा था, इसलिए महात्मा गाँधी आदि नेताओं द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुआ (1/37-40)–

गान्धीमहात्मप्रमुखैर्महार्हैः स चालितान्दोलनसुप्रियो भूत्।
क्रूराङ्गलेशान् प्रति वैरभावैः प्रपूरितो सौ नितरां प्रतेपे ॥ (1/40)

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड

एक बार अमृतसर नगरी में वैशाखी के दिन शान्त लोगों की एक सभा पर क्रूर जनरल डायर ने अचानक गोलियों की वर्षा करवाकर असंख्य नर-नारियों को भून डाला। अमृतसर के जलियाँवाला बाग में हताहत लोगों की चीख-पुकार सुनकर, भूमि पर लोगों के मरने से बहती हुई खून की धार देखकर तथा वहाँ पर हुए अत्याचार को देख और सुनकर बालक भगतसिंह का हृदय विदीर्ण हो गया। घटनास्थल पर पहुँचकर साक्षात् अपने नेत्रों से भगतसिंह ने हाहाकार करते हुए दीन दुःखी हताहत देखे, जिनके शरीर से रक्त बह रहा था, उनके अंग घायल हो गये थे तथा पीड़ा से कराह एवं छटपटा रहे थे (1/41-43)।

अथवामृताद्यां सरसान्तपुर्य्या वैशाखसंक्रान्तिदिने सुपुण्ये।
प्रशान्तलोकेषु समागतेषु बभूव वृष्टिर्गुलिकाप्रपातैः ॥ (1/41)

ओडायराख्यो हूंयुराज्यपालः साक्षात्कृतान्तः कलुषीकृतात्मा।
गोलीनिपातैः किमु पाशजालैः प्राणान् जनानां निचकर्ष रोषात् ॥ (1/42)
उद्यानमुख्ये "जलियान" भिख्ये प्रापर्यमातिथ्यमनेकलोकाः।
तत्रत्यभूमिर्विधुराकुलेव रक्ताश्रुधारा बहुधा मुमोच ॥ (1/43)

भरतसिंह का चित्त तप रहा था उसमें बदला लेने की भावना थी। क्रोध रूपी अग्नि से जल उठा था, उसके अधर फड़क रहे थे, शरीर काँप रहा था, उस शेर ने भुजा उठाकर कहा—अरे दुष्ट! क्या तुम्हारी इतनी ही बहादुरी है कि जो निरपराध जनता को मारो। ओ पापी ध्यान से सुनो तुम्हारे भी प्राण मैं शीघ्र ही हरूँगा—

"रे दुष्ट ! किं शौर्यमिंद तवास्ति, विनापराधं जनता हतायत्।
तदद्य पापिन् ! शृणु सावधानं, प्राणान् हरिष्यामि त्वापि शीघ्रम् ॥(1/49)

इस प्रकार घोषणा करके प्रसन्नतापूर्वक अपने शरीर से खून निकालकर, उस पृथ्वी की धूलि में जो जनता के खून से सनी थी, मिला दिया था और भक्ति से उसे प्रणाम किया। उसे पवित्र मिट्टी को उसने सिर पर रखा और बहुत श्रद्धा से घर ले आया, नित्यप्रति उसे मिट्टी को फूल, अर्घ्य तथा धूपादि से पूजा करता तथा प्रतिज्ञा सहित उसको सदा हृदय में धारण किया। वह अभूतपूर्व अत्याचार, निरपराध प्राणियों का खून तथा हाहाकार, बिना सोचे गोली बरसाना, सब चीजें आज भी याद कर हृदय को तपा देती हैं। बदला लेने की इच्छा से दृढ़ बुद्धि वाला भगतसिंह गोलीकाण्ड से उत्पन्न हृदय में चुभे दुःख को काँटे के समान बाहर निकालने की चेष्टा करता रहा और अपनी इष्टसिद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील बना रहा (1/50-53)।

असहयोग आन्दोलन में भाग एवं विदेशी वस्तुओं का परित्याग

सोऽसहयोगयागाग्नौ, गान्धिप्रज्वालिते शुभे।
प्रतिशोधाग्निसंतप्तः संजुहाव स्वकं वपुः ॥ (2/2)

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गाँधी जी के असहयोग आंदोलन रूपी यज्ञ की अग्नि में प्रतिशोध की आग से तपे हुए भगतसिंह ने अपना शरीर आहुति रूप में दे दिया। विद्याध्ययन छोड़कर अपना मन क्रान्ति में लगा दिया। विदेशी वस्तुओं को छोड़कर उसने स्वदेशी वस्तुओं को स्वीकार किया। मित्रों के साथ विदेशी वस्त्रों को जलाने में उसे होली का आनन्द आता था। उसमें वह प्रसिद्ध होलिकोत्सव को भी भूल जाता था—

विदेशीवस्त्रसंदाहे मित्रैः सार्ध कृते ह्यसौ।
होलिकानन्दमालेमे विस्मृत्य होलिकोत्सवम् ॥ (2/6)

चौरीचौरा काण्ड

अथैकदा जनैः क्रुद्धैः भटात्याचारपीडितैः।
चौरीचौरेति सुग्रामे, प्रापिताः भस्मतां भटाः ॥ (2/9)

एक बार 'चौरीचौरा' नामक गाँव में पुलिस के अत्याचार से दुःखी तथा क्रुद्ध लोगों ने वहाँ बहुत से सिपाही जहाँ दिए। इस घटना से दुःखी होकर तथा इसे महान् विघ्न समझकर गाँधी जी ने अपना असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया। इसके स्थगित होने से भारतवर्ष के क्रान्तिकारी वीर विशेष तथा भगतसिंह आदि क्षुब्ध हो गये तथा गाँधी जी के प्रति विरोध की भावना उठने लगी। विद्रोह की अग्नि से तपे हुए तथा बहुत क्षुब्ध मन वाले भगतसिंह ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हिंसा का मार्ग अपना लिया (2/9-15)।

इसी बीच लाला लाजपतराय ने लाहौर में। एक 'नेशनल कालिज' की स्थापना की जिसमें देशभक्ति एवं क्रान्तिकारी विचारधाराओं को उद्दीप्त करने की शिक्षा दी जाती थी। भगतसिंह ने सहर्ष इसमें प्रवेश ले लिया तथा थोड़े ही समय में राजनीति के बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ लिये। फ्रांस देश का बेला नाम के एक विश्वद्यिालय क्रान्तिकारी ने अपने लेखों से बहुत प्रभावित किया साथ ही भारतेन्दुकृत भारत दुर्दशा का भी उनके मन पर बहुत असर पड़ा। उस कालेज के सभी क्रान्तिकारी लोग स्वतन्त्रता प्राप्ति के व्रत से दीक्षित थे। वे निर्भय होकर देशभक्ति तथा जनक्रान्ति के गीत गाया करते थे। इसी बीच भगतसिंह के परिवार वाले उसके विवाह की तैयारी करने लगे। भगतसिंह ने कहा—विवाह तो दूर रहा उसकी बात भी मुझे अच्छी नहीं लगती। उसने अपने माता-पिता से मुखर होकर कहा—मृत्यु ही मेरी वधू हो, शहीद बराती हों तथा कातिल आचार्य उपाध्याय हो, यदि होना हो तो इस प्रकार मेरा विवाह हो (2/17-31)—

मृत्युरेव वधूर्मे स्यात् हुतात्मानश्च यात्रिणः।
आचार्यो धातुको भूयाद् विविहः स्यान्ममेदृशः॥ (2/31)

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मुझे शान्ति नहीं—फिर सुख तो कहाँ मिलेगा। घर के फन्दों में फँसा हुआ मैं देश की परतन्त्रता के फन्दे कैसे काटूँगा (2/32)। मेरा जीवन अपने देश के लिए है मेरी मृत्यु भी देश के लिए ही होगी और जो कुछ भी मेरा इस संसार में है—वह सभी देश की ही सम्पत्ति है (2/33)। मैं अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु देश-सेवा रूपी पवित्र यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दे दूँगा। आदि सारी बातों को एक पत्र द्वारा पिताजी को सूचित कर दिया तथा घर छोड़कर लाहौर चला गया। उसने घर ऐसा छोड़ा कि वापस नहीं लौटा (2/33-37)।

सक्रिय क्रान्ति में योगदान

लाहौर में सक्रिय रूप से स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत रहने के कुछ दिन बाद भगतसिंह कानपुर वापस आ गया। वहाँ भी वह क्रान्ति कार्यों में बहुत अधिक व्यस्त रहा। कभी तो वह सम्पादक बना, कभी प्राचार्य बना, कहीं उसने अपना दूसरा नाम रखा—इस प्रकार अपने लक्ष्य की प्राप्ति में क्रियाशील रहा। गुरुद्वारों के प्रबन्ध के

लिए चलाये जा रहे आन्दोलन में उसने बहुत अधिक सहायता की। उसकी संगठन शक्ति तथा प्रबन्ध करने की दक्षता को देखकर आन्दोलन के नेता बहुत विस्मित हुए। सशस्त्र क्रान्ति को बढ़ाने में उसने लोगों के मनों को जीत लिया। वह "भारत सभा" बनाकर नौजवानों का प्यारा बन गया (2/39-49)।

सशस्त्रक्रान्तिविस्तारे जनचेतांस्यजीजपत्।
स भारतसभां कृत्वा यूना च प्रियतां गतः ॥ (2/49)

काकोरी काण्ड

एक बार लाहौर में बम-विस्फोट हुआ, जहाँ दशहरा त्योहार मनाने आए हुए अनेक लोग हताहत हुए। इसी बमकाण्ड के झूठे दोष लगाकर भगतसिंह को जेल भेज दिया गया। जेल के अधिकारी ने भगतसिंह पर काकोरी हत्याकाण्ड का भी अभियोग लगाकर अनेक कष्ट दिए। अन्ततः अभियोग प्रमाणित न होने पर 60 हजार रुपये की जमानत देकर उन्हें छुड़ाया गया (2/52-57)।

साइमन कमीशन का भारत आगमन एवं विरोध

अधैकदा भारतसंविधानं, संशोध्य किञ्चित्प्रददातुकामैः।
आयोग एकश्च विधाय देशे, सम्प्रेषितः शासकधूर्त्तराजैः ॥(3/1)
तथा च साईमननामधेयः, एको परोऽध्यक्षपदे नियुक्तः।
यदागतोऽसौ भुवि भारतस्य, जातस्तदैवास्य महान विरोधः ॥(3/2)

एक बार धूर्त शासकों ने भारत के संविधान में कुछ संशोधन करके कुछ देने की इच्छा से, एक आयोग बनाकर विदेश से हमारे देश में भेजा। उस कमीशन का अध्यक्ष साइमन नाम का एक अंग्रेज नियुक्त हुआ। जब वह भारत भूमि पर आया तो उसका बहुत विरोध हुआ। पुरी-पुरी में नगर-नगर में जहाँ-जहाँ पर आया तो उसका बहुत विरोध किया। सारे देश में जंगल की आग के समान रोष फैल गया। साइमन जब लाहौर पहुँचा तो सभी लोगों द्वारा हाथ में लिए काले झण्डों से अपना स्वागत देखकर वह बहुत हैरान हुआ (3/1-71)।

'गौ बैक साइमन' दूरदेशे इत्यूर्ध्वनादैः प्रतिनादितं रवम्,
प्रदर्शनार्थञ्च विरोधभावान् सम्भूय लोकाः परितः समीयुः ॥ (3/7)

लाला लाजपतराय पर लाठीचार्ज एवं उनकी मृत्यु

साइमन ! वापस जाओ ! इस प्रकार के ऊँचे नारों से आकाश गूँज उठा, अपना विरोध भाव दिखाने के लिए सभी लोग इकट्ठे होकर वहाँ आ गए। देश के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता श्री लाला लाजपतराय जी इस भीड़ की अगुवाई कर रहे थे। लोगों की अपार भीड़ को जब पुलिस तोड़ न सकी तो उन्होंने लाठी-प्रहार से अपनी क्रूरता दिखाई जिससे बहुत से निरपराध लोग जख्मी हो गए। पापी साण्डर्स के लाठी-प्रहार

से लाला लाजपतराय का सिर एवं वक्षःस्थल जख्मी हो गया तथा वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। खून से लथपथ एवं बहुत पीड़ित होकर भी लालाजी ने इस बड़ी सभा में घोषणा की—जिस डण्डे से मैं बुरी तरह घायल हुआ हूँ—अंग्रेजी सरकार के कफन का वही डण्डा, कील सिद्ध होगा (3/8-15)—

साण्डर्सपापाहतदण्डाघाताद्, वक्षःस्थले लाजपतोऽपि भग्नः।
अत्याहतो भूय पपात भूम्यां, कुशासकाना च कुशासन च ॥ (3/10)
प्रपीडितः सन्नपि स प्रवीरो, बृहत्सभायां प्रजुघोष तीव्रम्।
"दण्डेन येनास्मि भृशं विभग्नो, भूयात्स कीलः शवचेलुकेऽस्य ॥ (3/11)

साण्डर्स की हत्या

अन्ततः लालाजी की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर सारा देश शोक सागर में डूब गया। श्री भगतसिंह ने तो दुःखी चित्त में इस देश के अपमान को तीर के समान माना (3/15)। बदला लेने की कामना से क्रान्तिकारी वीरों ने अपनी सभा में शीघ्र ही एक गुप्त प्रस्ताव पास किया तथा अपने-अपने विद्रोह कार्य में लग गये। इस क्रान्ति दल का नेता चन्द्रशेखर अजाद को चुना गया। एक दिन वहीं लाहौर में माल रोड पर चन्द्रशेखर, भागतसिंह, राजगुरु के साथ मिलकर समय की प्रतीक्षा कर रहे थे कि इसी बीच पुलिस अधीक्षक पापी साण्डर्स सहसा दिखाई पड़ा कि राजगुरु ने दुष्ट साण्डर्स को गोली के प्रहार से मार गिराया। श्री भगतसिंह ने भी उस धूर्त पर अपनी पिस्तौल से पाँच बार प्रहार किया (3/15-20)—

अत्रान्तरे तं कुभटाधिनाथं, साण्डर्सपापं सहसैव दृष्ट्वा।
नरोत्तमो राजगुरुसप्रवीरो, जघान दुष्टं गुलिकानिपातात् ॥(3/19)
श्रीभक्तसिंहोऽपि भृशुण्डीघातै, स्तं पञ्चबारं निजघान धूर्त्ताम्।
तत्रैव चासौ घटनास्थलस्थः, पञ्चत्वमाप्तो निजपापजन्यम् ॥ (3/20)

उस पापी को मारकर वे वीर कृतकृत्य होकर सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये। इसे मरा हुआ सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए तथा दुष्ट शासन वर्ग घोरतम् अपमान को प्राप्त हुआ। अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए भगतसिंह ने सिर पर हैट लिया, एक बच्चा गोदी में उठाया, दुर्गा नाम की स्त्री को भार्या के रूप में साथ लिया राजगुरु को नौकर बनाकर लाहौर से कलकत्ता को चल दिया। गुप्त रूप से वहाँ कलकत्ता में हो रहे महासभा (कांग्रेस) के अधिवेशन में वह शामिल हुआ। वहाँ देश के कर्णधारों को शिथिल देखकर उसे बहुत दुःख हुआ (3/33)। हमारा लक्ष्य सम्पूर्ण राज्य की प्राप्ति है, इससे कम कछु भी नहीं लेंगे। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए जो कुछ करना है, वह आज ही करना है। यह सब सोचकर उसने दिल्ली की बड़ी सभा में बम फेंकने का निश्चय किया (3/21-35)।

दिल्ली की महासभा में भगतसिंह द्वारा बम फेंकना

भगसिंह ने जैसा सोचा, उसको उसी रूप में सभी क्रान्तिकारी सदस्यों ने खुशी से समर्थन दिया। यद्यपि सदस्यों की बम फेंकने में एक राय थी परन्तु कौन बम फेंके, इस पर एकमत नहीं था। भगतसिंह तो अकेले स्वयं इस कार्य के लिए उत्सुक थे, सदस्यों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। अन्त में भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त दोनों को सभा में बम फेंकने के लिए नियुक्त किया। चन्द्रशेखर के इस मत को कि—बम फेंककर भाग जाना, आत्म-समर्पण कभी नहीं करना, भगतसिंह ने नहीं माना। न्यायालयों द्वारा, समाचार-पत्र व इश्तहारों के माध्यम से हमारे विचार एवं आन्दोलन का प्रचार जनता के सामने भी आना चाहिए। अतः बम फेंककर मैं बन्दी हो जाऊँगा (आत्म-समर्पण कर दूँगा)। इस प्रकार भगतसिंह ने अपने विचार प्रकट किए (3/35-45)—

अथैकदा कालमुपेत्य सम्यक्, श्रीभगतसिंहो बटुकेश्वरश्च।
दिल्ली केन्द्रीय महासभायां, संप्रापितौ क्रान्तिकरैः सुगुप्तम् ॥(3/43)
विधानमेकं जनताविरुद्धं, वाईसरायो स्वविशेषशक्त्या।
धूर्तो यदा पारयितुं प्रयेते, श्रीभगतसिंहस्तु तदैव शीघ्रम् ॥ (3/44)
उत्थाय चिक्षेप बमास्त्रयुग्मं रिक्तैककोणे सदने सभायाः।
द्रुतं तथा खे गुलिकालिपातैः सभासदस्यान् सभया चकार ॥ (3/45)

एक बार (8 अप्रैल, 1930) को उचित समय पाकर श्रीभगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को क्रान्तिकारियों ने गुप्त रूप से दिल्ली की केन्द्रीय महासभा में बैठा दिया। एक दिन जब वायसराय महासभा में अपनी विशेष शक्ति से जनता विरोधी कानून पास करने लगा—तभी भगतसिंह ने शीघ्र अपने स्थान से उठकर महासभा भवन के एक खाली कौने में दो बम फेंके तथा आकाश में कुछ गोलियाँ चलाकर सभा के सदस्यों को भयभीत कर दिया। बम फटने से डरे हुए वायसराय तथा अन्य लोग इधर-उधर भागने लगे। कुछ समय बाद धुएँ के छंट जाने पर तथा सभा भवन खाली हो जाने पर श्रीभगतसिंह ने ऊँचे स्वर में वीरतापूर्वक नारा लगाया—"इन्कलाब जिन्दाबाद" तथा "नौकरशाही (साम्राज्यवाद) मुर्दाबाद।" इसके बाद बटुकेश्वर द्वारा शीघ्र ही सभा के बीच लोगों की सूचना के लिए इश्तहार फेंक दिये गये (3/46-48)।

उन इश्तहारों पर अंग्रेजी में लिखा हुआ था—ओ बुरे शासको! आज कान खोलकर सुन लो। हमने यह भयङ्कर बम जो कानों के पर्दे फाड़ने वाला है, बहिरों को जगाने के लिए फेंका है। इसी महासभा में बुरे विधान बनाकर इन अंग्रेजों ने जनता का जो अपमान किया है तथा विधान में संशोधन रूपी कटु दंशों से जो देश को पीड़ा पहुँचाई (3/51) और इन दुष्टों ने जो अत्याचार किया, उसका कोई कथन

जेल में सुधार आन्दोलन

भगतसिंह को मियांवाली में तथा बटुकेश्वर दत्त को लाहौर जेल में भेज दिया गया। बाद में साण्डर्स कत्ल का केस भी भगतसिंह पर चलाया गया। इसलिए उसे भी लाहौर जेल में डाल दिया। दोनों वीरों ने जेल में सुधार आन्दोलन के लिए अनशन शुरू कर दिया। अनशन के कारण वे बलहीन हो गये थे। एक लम्बे स्ट्रेचर पर लिटाकर उन्हें किसी प्रकार न्यायालय लाया जाता था। भगतसिंह के शरीर में बल नहीं था किन्तु मन से वह बहुत प्रबल था। उसने सरकार को एक पत्र द्वारा सूचित किया—कैदियों को श्रेष्ठ भोजन दिया जाय, निकृष्ट काम न करवाया जाय, मनोविनोद के लिए समाचार-पत्र एवं पुस्तकों आदि की व्यवस्था कीजिये आदि। उनके अनशन को तोड़ने के लिए समाचार-पत्र एवं पुस्तों आदि की व्यवस्था कीजिये आदि। उनके अनशन को तोड़ने के लिए शासकों ने बहुत यत्न किए परन्तु उन्हें विफलता मिली। भोजन की तो बात छोड़िए दूध भी नहीं पीते थे। यतीन्द्रनाथ को बलपूर्वक दूध दिया गया तो साँस की नली में दूध देने से मूर्च्छित हो गए। वह इतना कमजोर हो गया था कि बोल भी न पाता था। अन्त में अन्धा और बहरा होकर स्वर्गवासी हो गया। यतीन्द्र के 63 दिन अनशन के बाद मृत्यु होने पर जनता में आक्रोश बढ़ने लगा। अन्ततः शासन ने माँगें स्वीकार कर लीं। 14 दिनों के अनशन के बाद भगतसिंह अपने मित्रों सहित व्रत तोड़ा। परिणामस्वरूप जेल में काफी सुविधाजनक सुधार कर दिया गया (5/1-20)।

न्यायालय में भगतसिंह की पुनः पेशी

हाई कोर्ट में पेशी पर आए अभियुक्तों के मुख देखने तथा भाषण सुनने के लिए बाहर लोगों की अपार भीड़ लगी रहती थी। वे यद्यपि कैदी थे पर अपने को कभी कैदी नहीं माना। "इन्कलाब जिन्दाबाद" के नारे लगाते हुए वे वीर न्यायालय में प्रवेश करते थे। पहले कभी न सुने हुए इस नारे को न्यायालय में सुनकर लोग, न्यायाधीश तथा शासक वर्ग सभी हैरान रहते थे। पहले वे "वन्देमातरम्" का गीत गाते थे पुनः इसी प्रकार के अन्य देशभक्तिपूर्ण गीत गाया करते थे—

विक्रीय शीर्ष स्वकरैः सहर्ष—माक्रेतुकामाः निजदेशमानम्।
स्पर्धाद्य पुष्टास्त्यसिशीर्षमध्ये, पश्याद्य कं संवृणुते जयश्रीः ॥ (5/25)
सरफरोसी की तमन्ना अब हमारे दिल गें है।
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल गें है ॥
वक्त आने दो बता देंगे तुझे ये आसमां—
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है ॥
कालो हि वक्ता स्वयमेव काले, ब्रूमोऽद्य किं दैव ! मनोऽभिलाषम्।

हत्वा कदाचित्परतंत्रतान्धं स्वतंत्राकः समुदेष्यतीह ॥ (5/26)
समय आने पर, समय स्वयं ही बताएगा–हे देव !
हम अभी से अपनी अभिलाषा क्या बताएँ।
कभी तो परतंत्रतारूपी अन्धकार को दूर करके,
स्वतंत्रारूपी सूर्य उदय होगा ही।
हुतात्मराज्ञां चितिकासमक्षं, प्रत्येकवर्षं भवितात्सवैकम्।
इदं हि तेषां स्मृतिचिह्नमेव, तथैव ते सर्वजनैः स्मृताः स्युः ॥(5/27)
कभी वह दिन भी आयेगा, कि जब आजाद हम होंगे,
यह अपनी ही जमीं होगी, यह अपना आसमां होगा।
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा ॥

न्यायालय के अन्दर और बाहर खड़े लोग उत्कण्ठा और हर्ष से ये गीत उन वीरों के साथ गाया करते थे। वे लोग आजन्म कारावास तथा मृत्यु के दण्ड से दण्डित होकर भी निर्भीक होकर अट्टहास करते हुए मृत्यु से क्रीड़ा करते थे। एक बार एक नीच सरकारी गवाह ने कोई कटाक्ष किया जिस पर अभियुक्त प्रेम दत्त ने जूता फेंक दिया। मजिस्ट्रेट ने सभी अभियुक्तों को खूब पिटवाया विशेषकर भगतसिंह को आठ धूर्तों ने मिलकर पीटा। अन्ततः अदालन का काम स्थगित हो गया। भगतसिंह आदि ने अदालत जाने से इन्कार कर दिया (5/28-42)।

वायसराय इर्विन का "विशेष न्यायालय ट्रिव्यूनल"

अभियुक्तों ने न्यायालय का पूर्णतया बहिष्कार कर दिया। सरकार ने अपना पूरा यत्न किया पर इस बहिष्कार को रोक न सकी। अन्त में धूर्त शासक वायसराय इर्विन ने एक विशेष विधेयक के द्वारा "विशेष न्यायालय ट्रिव्यूनल" बना दिया जिसमें तीन न्यायाधीश नियुक्त किए गए जिन्हें आदेश दिए गए कि–वादी, प्रतिवादी, वकील, गवाह तथा यदि अभियुक्त न भी आवें तो एकतरफा कार्यवाही से निर्भीक होकर निर्णय लिया जाए (5/42-66)।

अन्त में मित्रों के अनुरोध पर वीर भगतसिंह न्यायालय जाने को तैयार हो गये। वहाँ अदालत में पहुँचकर वे देशभक्तिपूर्ण तथा अत्यन्त रोमांचकारी गीत गाते रहे थे।

"पश्याद्य को रक्षति देशमानं, कश्याद्य पारं गमिता परीक्षाम् ।
किं दैव ! धन्यं सुदिनं भवेत्तत्, यदा स्वराज्यो भविता स्वदेशे ॥ (5/49)
वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहां होगा।

इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही जमीं होगी अपना आसमां होगा॥

दुभाषिये द्वारा इस गाने का भावार्थ समझकर न्यायाधीश ने क्रुद्ध होकर अभियुक्तों को खूब पीटने की आज्ञा दी। उन्हें मारे जाते हुए देखकर एक भारतीय जस्टिस आगा हैदर बोला मैं इस अन्यायपूर्ण नीच नाटक को नहीं देख सकता। यहाँ से उठकर चला जाता हूँ, ताकि देख न सकूँ। ये अभियुक्त मेरे अपने भारतीय ही तो हैं। इस प्रकार वह न्याय का बेकार नाटक जो शासकों ने न्यायालय में रचा था—स्थगित हो गया।

भगतसिंह आदि को मृत्युदण्ड

इसके पश्चात् दुष्ट शासकों ने फिर दूसरा ट्रिब्यूनल बनाया जिसका न्यायाधीश उसी हिल्टन को नयुक्त किया गया जिसके आदेश से पहले अभियुक्त पीटे गये थे। भगतसिंह ने अपने मित्रों सहित सरकार को सन्देशा दिया कि जब तक यह दुष्ट न्यायाधीश रहेगा तब तक न्यायालय का बहिष्कार रहेगा। इस पर दुष्ट न्यायाधीश ने अभियुक्तों की अनुपस्थिति में ही अपना निर्णय सुना दिया। वीरों ने अपनी रक्षा में कुछ भी नहीं कहा। भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को दारुण मृत्यु दण्ड दिया गया। सात वीरों को आजन्म कारावास तथा कुछ को थोड़ी सजा दी गयी तथा शेष को छोड़ दिया गया (5/65-67)।

भगतसिंहो गुरोर्राजा सुखदेवस्तथोत्तमः।
निर्णयेन नृशंसेन, मृत्युदण्डेन योजिताः॥ (5/65)
कारावासेन जीवान्तं सप्तवीराश्च दण्डिताः ।
अन्ये स्तोकेन चाप्यन्ते कारागतद् विमोचिताः॥ (5/66)

भगतसिंह का देशवासियों के लिए सन्देश

भगतसिंह आदि कैदियों को मृत्यु दण्ड की सजा सुनते ही सम्पूर्ण देश में आन्दोलन, क्रांति, प्रदर्शन एवं जुलूस ने उग्र रूप धारण कर लिया। इधर कालकोठरी में बैठा भगतसिंह जीवन की आशा छोड़कर निश्चिन्त हो गया तथा चार्ल्स डिकेन्स, रीड, बर्नार्ड शॉ, गोर्की तथा लेनिनादि के साहित्य में अध्ययनरत हो गया। पढ़ने से विराम करने पर देशभक्ति के प्रसिद्ध एवं मधुर गीत गाया करता था—

वासन्तरंगे मम देहवस्त्रं करैर्निजैः रञ्जय देव ! सद्यः।
येनास्मि कुर्या निजदेशसेवां, दत्वापि रक्तं निजदेहजन्यम्॥ (6/12)

हे देव! अपने हाथों से ही मेरा शरीर रूपी चोला (वस्त्र) बसन्ती रंग में रंग दो जिससे मैं अपने शरीर का खून देकर भी अपने देश की सेवा करूँ।

शिवोऽपि वीरो निजशत्रुहन्ता, गोप्तुं स्वदेशं करवालहस्तः।
वासन्तमेनं परिधृत्य वस्त्रं, स्वमातृभूमेः निचकर्त पाशान्॥ (6/13)

वीर शिवाजी ने भी, जो अपने शत्रुओं को मारने वाला था, इसी बसन्ती रंग वाले, वस्त्र को पहनकर, अपने देश की रक्षा के लिए, तलवार हाथ में लेकर, अपनी मातृभूमि के फन्दों को काटा था।

धनं कलङ्कं परदासताख्यं, कलङ्कितं येन च वस्त्रमेतत्।
किं जीवनं तस्य भवेत्प्रशस्यं, यस्यास्ति देशः परशासितोत्र॥ (6/14)
परतन्त्रता रूपी कलङ्क बड़ा गहरा होता है।
जिससे हमारा वस्त्र कलङ्कित हो चुका है।
जिस मनुष्य का देश दासता में जकड़ा है–
उसका जीवन भी क्या कोई अच्छा होता है ?

विद्रोहदावानलतप्तचित्तं, भस्मं चिकीर्षुः खलपादपौधान्।
इच्छामि देशस्य हिताय मृत्युं, यो सौ वरीयान् शतकटिजीवात्॥ (6/15)

विद्रोह रूपी दावाग्नि से तपा हुआ मेरा चित्त, दुष्ट शासक रूपी वृक्षों के समूह को भस्म करना चाहता है। मैं तो देश के लिए, मृत्यु गले लगाना अच्छा समझता हूँ, जो मृत्यु सौ करोड़ जीवन से भी अच्छी है।

वीक्ष्यान्यवीरान् बलिपाशबद्धान् उत्कण्ठितं मानसमास्ति मेऽपि।
तदेव वासन्तपटं धरिष्ये यद् देशमुक्त्यै विधृतं प्रवीरैः॥ (6/16)

अन्य वीरों को, जो पाश में बँधे हुए बलिदान के लिए तैयार हैं, देखकर, मेरा मन भी उत्कण्ठित हो रहा है, मैं भी वही बासन्ती वस्त्र धारण करूँगा, जिन्हें अन्य वीरों ने देश की मुक्ति के लिए धारण किया था।

भगतसिंह यह गाना गाया करता था–

मेरा रंग दे बसन्ती चोला, मेरा रंग दे बसन्ती चोला।
बड़ा ही गहरा दाग है यारो, जिसका गुलामी नाम है।
उसका जीना भी क्या जीना, जिसका देश गुलाम है।
सीने में जो दिल था यारो, आज बना वह शोला।
दम निकले इस देश की खातिर, बस, इतना अरमान है।
एक बार इस राह में मरना, सौ जन्मों के समान है।
देख के वीरों की कुर्बानी, अपना दिल भी डोला।
जिस चोले को पहन शिवाजी खेले अपनी जान पै।
जिसे पहन झाँसी की रानी, मिट गई अपनी आन पै।
आज उसी को पहन के निकला, हम मस्तों का टोला।
मेरा रंग दे .....।

नमक कानून एवं गाँधी-इर्विन समझौता

इधर देश में महात्मा गाँधी ने नमक बनाने का सत्याग्रह नाम से आन्दोलन शुरू कर दिया। उधर लोगों ने भगतसिंह के जीवन के लिए बहुत प्रयत्न किये—पत्रों द्वारा एवं हस्ताक्षर अभियान से सरकार को स्मृति-पत्र भेजे। "गाँधी-इर्विन समझौते" में भी कोई ऐसी शर्त नहीं रखी गयी जिससे भगतसिंह के जीवन की रक्षा हो जाती—

इतो देशे समारब्धं गान्धिनान्दोलनं महत्।
लवणाख्यश्च विख्यातः सत्याग्रहो महानभूत्॥ (6/20)

× × ×

गान्धिन इर्वनस्यापि, सन्धौ न लिखितं कवचित्।
जीवनं भगतसिंहस्य, येन संरक्षितं भवेत्॥ (6/23)

भगतसिंह ने जवानों के लिए, अन्तिम संदेश दिया जो इतिहास की पंक्तियों में सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है (ग्रन्थ के श्लोक संख्या 25 से 42 तक अन्तिम सन्देश उल्लिखित है)। यह आपको मालूम ही होगा, कि हमें फाँसी की सजा मिल चुकी है—आज दुष्ट अंग्रेजों की मनोकामना पूरी हो गयी है। इसलिए, मैं आपसे अन्तिम पत्र के द्वारा, बात कहना चाहता हूँ। आप सावधान होकर सुनें, ... जो आपको करना है। सौभाग्य की बात है कि हमारा आन्दोलन महत्त्व को प्राप्त हुआ है, क्योंकि हमारे नेतागण, कूट शासकों द्वारा बातचीत के लिए बुलाए गए हैं। इन नेताओं की सहायता, संविधान बनाने के लिए माँगी गयी है, यही हमारी विजय का लक्षण है और सबके लिए गौरव की बात है। देर हो या शीघ्र, समझौता तो निश्चित होगा ही, यही हमारी विजय की पहचान है तथा हमारी शक्ति का परिचायक है। हमने जो शत्रुओं से संघर्ष प्रारम्भ कर रखा है—उसमें मुख्य सहायक धनी लोग हैं, परंतु जब तक देश के किसान और मजदूर इस संघर्ष में सहायता नहीं करते—तब तक विजय नहीं होगी। इसलिए विजय प्राप्ति के लिए जनसाधारण का सहयोग आवश्यक है। मैं हिंसा या क्रान्ति फैलाने में विश्वास नहीं रखता, अच्छे विचारों पर आश्रित क्रान्ति ही मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। मजदूर और किसान समृद्धि को प्राप्त करें—उन्हीं के सुख में सारे देश का हित और सुख छिपा है। इस प्रकार बहुत बड़े यत्न तथा बलिदान करने से अथवा नौजवानों की निःस्वार्थ सेवा से कहीं जाकर स्वतन्त्रता मिलेगी—

एवं कृतैः बृहद्यत्नैः बलिदानादिकर्मभिः।
यूनां निःस्वार्थकार्यैश्च स्वातन्त्र्यमुपलप्स्यते।। (6/42)—इन्कलाब जिन्दाबाद

भगतसिंह की अन्तिम यात्रा

3 मार्च, 1931 ई. को भगतसिंह से मिलने तथा अन्तिम दर्शन के लिए उनके

दादा, माता, पिता तथा अन्य बन्धुगण एवं मित्रगण जेल में गए। शोकाकुल परिवारीजनों को समझाते हुए भगतसिंह ने कहा–

मृतेऽपि देहे क्षणभङ्गुरे मे, कार्यो न शोको भवता कदापि।
सौभाग्यमेतद्धि भवादृशानां, देशस्य मुक्त्यै यदहं प्रदत्तः।। (7/4)

मेरे इस क्षणभंगुर शरीर के मरने पर, आप कभी भी शोक नहीं करना। आप लोगों का यह सौभाग्य है कि आपने मुझे देश की आजादी के लिए सौंप दिया।

जो अपने देश की आजादी के लिए अपना शरीर त्यागता है, उस धन्य जीव की देवता भी स्तुति करते हैं। ऐसी दुर्लभ वीरगति को पाकर कौन मूर्ख है जो लौकिक नाशवान भोग की इच्छा करे–

देशस्य सेवार्थविसृष्टदेहं, स्तुवन्ति देवा अपि धन्यजीवम्।
प्राप्यामृतां वीरगतिं ह्यलभ्यां विनश्वरं को भुवि भोगमिच्छेत्।। (7/9)

किसी प्रकार समझा-बुझाकर परिवारीजनों को भगतसिंह ने सान्त्वना दी। कुछ मित्रों ने सलाह दी कि यदि भगतसिंह राष्ट्रपति से क्षमा-याचना कर लें तो वायसराय उन सभी अभियुक्तों को क्षमा कर देंगे। इस पर क्रोधित होकर भगतसिंह ने कहा–जो हमें मृत्युदण्ड दिया गया है, उसके लिए हम कोई प्रार्थना नहीं करेंगे शासक लोग अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें तथा यथेष्ठ कड़ा दण्ड देवें। आज मैं एक ही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे साथ युद्धबन्दियों जैसा व्यवहार होना न चाहिए। हमें न तो फाँसी से न ही शूली चढ़ाने से मारें परञ्च हम गोली से उड़ाये जायें। हम मृत्यु माँगते हैं जीवन नहीं क्योंकि मृत्यु को पार करके ही अमरत्व मिलता है–

न मृत्युपाशैर्न च शूलघातै, गोलीप्रपातैस्त्वभिमारणीयाः।
याच्यो हि मृत्युर्न च जीवनं वै, तीत्वां हि मृत्युं लभते मृतत्वम्।। (7/36)

फाँसी के तख्ते पर जाते समय अन्तिम संदेश देने की इच्छा से भगतसिंह यह बोला–मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ तथा अपने देशवासियों को भी स्वस्थ तथा सुखी देखना चाहता हूँ। यदि भगवान मुझे फिर जन्म दे तो यहीं भारत में दे, जिससे मैं अपनी मातृभूमि की सेवा, श्रद्धायुक्त अपना शीश चढ़ाकर भी करूँ। ''इन्कलाब जिन्दाबाद'' तथा ''साम्राज्यवाद का नाश हो।'' यही मेरी इच्छा है, मेरी शुभकामनाएँ सभी को देना–जिन्होंने मेरे लिए सब कुछ किया है–

चेज्जन्म दद्यात्पुनरेव देव–स्तदत्र भूयाद् भुवि भारतेऽस्मिन्।
सेवा च कुर्या निजमातृभूमे, र्दत्वापि मस्तं बहुभक्तियोगात्॥ (7/47)
क्रान्तिस्तुजीवेदिति मेऽस्ति कांक्षा, साम्राज्यवादश्च विनाशमीयात्।
सर्वे च वाच्याः शुभकामनाभिः, सर्व कृतं यैर्मम जीवनार्थम्॥ (7/48)

इसके पश्चात् भगतसिंह ने अन्तिम भोजन के रूप में रसगुल्ला खाया—

अलौकिकास्वादभरेण पूर्णं, चखाद भोज्यं रसमोदकाख्यम् ॥ (7/56)

विधिवेत्ताओं ने जो विधान बनाया था उसका तथा लम्बी परम्परा का उल्लंघन करके, उनकी फाँसी का समय, दुष्ट अंग्रेजों ने सायंकाल निश्चित किया। जबकि फाँसी का समय सदा प्रातःकाल ही होता है। इसके बाद जेल का अधिकारी सहसा आकर भगतसिंह से बोला, फांसी का समय हो गया है.....शीघ्र ही अपनी तैयारी कर लो। भगतसिंह ने अपनी काल-कोठरी को श्रद्धा से प्रणाम किया। तीनों वीर अपनी कोठरियों से बाहर निकलकर प्रेम से आपस में मिले, एक-दूसरे को गाढ़ालिङ्गन किया—तब फाँसी घर में खुशी से प्रवेश किया। मेरे शरीर के नष्ट हो जाने पर भी मेरे हृदय से देशभक्ति कदापि नष्ट न होवे। हमारे शरीर रूपी वृक्ष के नष्ट हो जाने पर उस पर जो फूल उगेंगे उनकी सुगन्धि सदा आती रहेगी—

नष्टेऽपि देहे मम देशभक्तिः, नष्टा न भूयाद् हृदयात्कदापि।

अस्मिन्मृते देहतरौ हि लोके—पुष्पाणि वक्ष्यन्ति सदा सुगन्धिम् ॥ (7/67)

पुनः तीनों ने यह गाना गया था—

दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत

मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ऐ-वतन आएगी।

तीनों वीर इस प्रकार, उच्च स्वर से गाते-गाते खुशी से नाच उठे। उनके हाथों में हथकड़ी उतार दी गयी थी तथा कनटोप भी नहीं लगाया गया था (यह भगतसिंह के कहने पर ही किया गया था। इनको बन्धन रहित देखकर तथा इनके देशभक्ति के गाने सुनकर अंग्रेज कमिश्नर बहुत घबरा गया कि कहीं ये भाग न जायें। किसी प्रकार उसके आश्वस्त होने पर भगतसिंह बोला—अपने देश की आजादी रूपी यज्ञाग्नि में जो लोग अपने शरीर रूपी आज्य को होम कर देते हैं—ऐसे वीरों को यम के फन्दे में फँसे होने पर भी प्रसन्नता से झूमते हुए देखो—

स्वदेशमुक्त्यर्थमखानले ये, कुर्वन्ति होमं स्वशरीरमाज्यम्।

तानेव वीरान् यमपाशबद्धान्—तथापि हृष्टान् पुरतः प्रपश्य।। (7/71)

ऐसा कहकर भगतसिंह ने मध्य में पड़ी फाँसी के फन्दे को पकड़ा तथा दाएँ राजगुरु, बाएँ सुखदेव ने अपना-अपना फन्दा पकड़ा। "इन्कलाब जिन्दाबाद" ऐसा कहकर फिर "साम्राज्यवाद मुर्दाबाद" इस नारे से तीनों वीर गरज उठे तथा उस नारे को सुनकर बाहर खड़े लोग पुलकित हो उठे। फिर तीनों वीरों ने अपने-अपने फन्दे को चूमकर अपने ही हाथों से अपने-अपने गले में डाला। तख्ता नीचे गिरा और तीनों वीर वीरगति को प्राप्त हो गए (तारीख थी 23 मार्च, 1931 समय सायं 7 बजकर तेतीस मिनट)।

"क्रान्तिस्तुजीवेदितिपूर्वमुक्त्वा साम्राज्यवादश्च विनाशमेतु।"
एवं त्रयः सिंहसमं जगर्जुः श्रुत्वा च सर्वे पुलकं प्रयाताः ॥ (7/73)
त्रयोऽपि वीराः परिचुम्ब्य पाशान्—निजैः करैरेव गलेषु निन्युः।
पट्टस्य चाधः परिपातनेन—वीरास्त्रयो वीरगतिं प्रपन्नाः ॥ (7/74)

इस प्रकार तीनों वीरों ने मानो अपने ही रक्त से लाल तीन फूल, अपनी मातृभूमि के चरणों में बड़ी श्रद्धा से अर्पित किये, जिनकी सुगन्ध आज भी यह वायु धारण करती है—

एवं स्वरक्तैरिव रञ्जितानि, त्रीण्येव पुष्पाणि, धृतानि भक्त्या।
स्वमातृभूमेश्चरणेषु वीरैः—येषां सुगन्धं वहतेऽनिलो यम् ॥ (7/75)

5. झाँसीश्वरीचरितम्

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई पर आश्रित यह एक महाकाव्य है। इसमें 22 सर्ग और 1477 पद्य हैं। इसके रचयिता महाकवि सुबोधचन्द पन्त जी हैं जो गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद (उ.प्र.) में महाकाव्य के रचना काल में कार्यरत थे। सम्प्रति मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, नई दिल्ली में किसी आधिकारिक पद को समलङ्कृत कर रहे हैं। कवि ने कथनानुसार प्रस्तुत महाकाव्य की रचना ई. 1959 में ही हो चुकी थी किन्तु इसका प्रकाशन बीस वर्ष बाद 1979 ई. में गंगानाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ, इलाहाबाद से ही सम्भव हो सका।

प्रस्तुत महाकाव्य में विश्वविख्यात अमर स्वतन्त्रता सेनानी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के शौर्यसम्पन्न जीवन-चरित एवं वीरता की कथा का अतीव मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। नारी शौर्य के इतिहास में, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में, किंवा भारतवर्ष के कोने-कोने में झाँसी की रानी का नाम युग-युगान्तर तक बड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता रहेगा। अंग्रेजों की दासता से भारतवर्ष को मुक्त कराने के लिए रानी द्वारा प्राणों की बाजी लगाकर अथक प्रयत्नपूर्वक किए गए भीषण युद्धों की जिस कथा को साधारण रूप में भी सुनकर भारतीय युवा-युवतियों में देशभक्ति की भावना बलवती हो उठती है, उसे ही इस महाकाव्य में बड़ी ही भाव-प्रवणता तथा कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। महाकवि ने भारतीय नर-नारियों के मनोमस्तिष्क पर भारतीय स्वाधीनता संग्राम का एक उत्कृष्ट, उत्प्रेरक चित्र तथा अति सुदृढ़ राट्रीय भावना का गतिशील विकास किया है। फलस्वरूप भारतीयों की धमनियों में प्रवाहमान रुधिर में राष्ट्राभिमान की सुरभित ऊष्मा अभिव्यक्त हो उठती है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही महाकवि ने बड़ी भावुकता के साथ चरितनायिका झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को भगवती दुर्गा का अवतार कहा है तथा उनके पावन राष्ट्रीय चरित के अनुचिन्तन को अमरतादायक माना है। (1/1-30)—

तान्येव लक्ष्मीरिति जन्म लेभे, लक्ष्म्याश्च चण्ड्याश्च विमिश्रितं या।
युद्धे मुनिप्राणावसूडुपाख्य, ईशाब्द एते प्रसिता बभूव ॥ (1/26)
दुर्गेव नारीजन इत्यवोचल्लोकस्य, नेत्रे उदमीमिलच्च।
यद्धिस्मितोभूद्बत विस्मयोपि, चक्रे समस्तं तददृष्टपूर्वम् ॥ (1/27)
मृत्युं गताप्यस्ति सजीविता, सा देशस्तदीयोस्त्यमरो जगत्सु।
तस्याः कथाया अनुचिन्तनेन, काव्येत्र लग्नोप्यमरो भवेद्धै ॥ (1/28)

किसी एक ब्राह्मण (सम्भवतः यह रानी लक्ष्मीबाई के पिता ही रहे होंगे) की चिन्ता के माध्यम से तत्कालीन भारतभूमि की दुर्दशा का मर्मान्तक चित्रण है। यहाँ के पारस्परिक कलह और विनाश पर खेद प्रकट किया है। यहाँ के स्वराष्ट्राभिमान को पतन के गर्त में जाता हुआ देखकर दुःख प्रकट किया है। पंजाब का करुण, दहकते हुए बंगाल के निवासियों का आन्तर्नाद तथा यहाँ की प्रजा के दुःख को देखकर खिन्नता का अनुभव किया है (2/35-53)—

द्विज उवाच शुभे भरतावनेर—भवदेवमसह्यकृशा दशा।
प्रहसति क्षय एत्य सुदुर्दमो, लयमहो गरिमा सकलो गतः ॥ (2/35)

× × ×

सिततनुः स सदाद्य निरङ्कुशो, दलति भारतमेतदहर्निशम्।
सततमेव भवन्गरलाकरः—फणधृताग्निरहिः शितिविग्रहः ॥ (2/38)

× × ×

अविषयो जनपीड़नशोषणा—वधिरहो नयनस्य निरन्तरम्।
अहह सीदति साद्य मनस्विता, वहति जीवितसंशयमुत्कटम् ॥ (2/40)
ददाति पाञ्चनदा रुदनं सदा, विवृतनूलनिजव्रणसञ्चयाः।
दधति षङ्गनिवासिन-आर्त्तितामहरवैरनुनादितपुष्कराः ॥ (2/41)

× × ×

स्थितिमिमावलोक्य सदैव सा, भारतभूर्विलपत्यमितं कृशा।
ज्वलति चिन्तिताज्वनोदरे-करतले धृतगण्डभरा सती ॥ (2/45)

उपर्युक्त प्रकार से भारत दुर्दशा, भारतीयों की दैन्यावस्था एवं विदेशियों के अत्याचार का मार्मिक चित्रण करता हुआ द्विज पुनः कहता है—महिषासुरमर्दिनी माँ चण्डिका भारत देश के बच्चों (प्रजा) को अपनी गोद में लेकर इनकी रक्षा करो। जिस प्रकार तुमने राक्षसों का वध करके देवताओं का कष्ट दूर किया था, ठीक उसी प्रकार गदा आदि शस्त्रों को धारण करने वाली, वैष्णवी, भवानी विदेशी असुरों के संहार हेतु अवतार लेकर भारतीयों की रक्षा कीजिये (2/54-60)—

भरतदेशशिशुं महिषार्दिनि त्वरित–मङ्कगत। कुरु चण्डिके।
तडिदिवेत्य सशूलहतीश्वरे, यमगृहानहिताहिततिं नय ॥ (2/54)
कलितकाय शुभे निगमागम, प्रसविनीश्वरि पूर्णपुरातने।
असुरदानवसङ्घविनाशकर्य–मरमानदसंहतिपालिके ॥ (2/55)
जय गदाधिरे जनि वैष्णवि, जय भवानि सशूलकरीश्वरे।
अखिलसंसृतिचेतनताचये, वितरतीश्वरि चेतनताचयम् ॥ (2/56)

पुनः तृतीय सर्ग के अन्त में कवि की भावाभिव्यक्ति दर्शनीय है कि–मोरोपत्न की वंशभूषण, नानाजी की बहन तथा पेशवा की शिक्षा सन्तान के रूप में जन्म लेकर इस भारत देश का कष्ट दूर करो–हे माँ! अब विलम्ब न करो–

पन्तवंशावतंसेन नानाजिना, पेशवासूनुनोक्त्वेति निर्बन्धतः।
स्वाडिणा ताडयित्वा मुहुर्मेदिनीं, प्रोक्तमेह येहि मातर्विलम्बेन किम ॥ (3/45)

भारतदेश की दुर्दशा देखकर, द्विज मोरोपन्त का आतर्नाद सुनकर वीरांगना लक्ष्मीबाई रूपी दुर्गा का अवतार हुआ। कार्तिक कृष्ण 14 संवत् 1811 को मोरोपन्त ताम्बे और सौभाग्यवती भागीरथी बाई की लाडली सन्तान ने जन्म लिया, जिसने भारतीय स्वाधीनता रण में अडिग चरण रखकर अपने आपको अमर कर लिया। उसके पैदा होते ही जैसे भारत का भाग्य सूर्य उदय हो गया, लोगों का कष्ट दूर हो गया। उस शुभ घड़ी ने जैसे सभी के मन में नवीन भाव प्रसन्नता के पैदा कर दिए (4/1-9)–

भारतं पुनरभूत्सफलार्थं, भारतं गलितशोषणदैन्यम्।
वासरेण सह तेन शुभेन, नव्यभावमदधीत समस्तम् ॥ (4/9)

सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग में लक्ष्मीबाई के शैशवावस्था का सजीव एवं वीरोचित वर्णन प्राप्त होता है। लक्ष्मीबाई के भविष्य की वीरोत्साह एवं युद्धतत्परता की भावना का परिचय बाल्यकाल में ही दर्शनीय है। खेल के उपकरणों में भी वह तलवार के साथ ही खेलती है (4/48)–

क्रीड़नोपकरणानि च लब्ध्वा, खड्गकं च वरमग्रजहस्तात् ॥ (4/48)

बालिका लक्ष्मीबाई ज्यों ही कुछ समझने-सोचने योग्य होती हैं, त्यों ही समाज एवं देश की दुर्दशा तथा विदेशी अंग्रेजी शासकों के अत्याचार की मर्माहत पीड़ा से दुःखी हो जाती हैं। इसी सन्दर्भ में रचितनायिका झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा भी प्राचीन भारतीय गरिमा की रक्षा-सुरक्षा हेतु बहुविध चिन्ताएँ प्रकट की गई हैं। महाभारत की प्रधान कथा से प्रभावित होकर मातृभूमि में द्रौपदी की कल्पना करके अंग्रेज शासक को दुःशासन के रूप में देखा गया है (5/2-13)–

व्यचिन्तयत् साथ च भारती भूः, पाञ्चाल्यहो नान्तरमत्र किञ्चियत्।
दुःशासन क्लेशतती तदीयेप्य–स्त्येव शीर्षे सततं महोग्रा ॥ (5/13)

रानी द्वारा भारतोद्धार की आरम्भ से ही चिन्ता प्रकट की गयी है। छत्रपति शिवाजी उनकी माता जीजाबाई तथा अन्य देशभक्त वीर महिलाओं के राष्ट्र भक्तिपरक कार्यकलापों से प्रेरणा पाकर भारत देश के अवशिष्ट उद्धार कार्य को स्वयं ही पूरा करने का संकल्प लिया गया है। (5/14-16)–

जीजाकृतिः सा चरितं च तारा–प्रदर्शितं तन्महिलान्तरणाम्।
निपीय सा चिन्तिततत्यजस्रं शिष्टं पतत्यद्य ममैव भागे ॥ (5/16)

इसी सन्दर्भ में राणा साँगा, जयमल, चूड़ावत, हम्मीरदेव, गुरुगोविंद सिंह आदि देशभक्तो वीरों के चरितों को प्रेरणा-स्रोत बनाया गया है (5/17-20)–

सॉगाश्च कल्ला जयमल्लफत्तौ, चूड़ावदादिर्भटराजराजिः।
आदर्शतुल्या हृदयं तदीयं, प्रकाशयामासुरुदात्तभाभिः ॥ (5/17)
श्रीरत्नसिंहस्य हमीरकुम्भौ, सर्वस्वमोक्षोविदितो न तस्याः।
गोविन्दमानीय गुरुं स्मृति सा, बन्दां च शक्ति नवलां बभार ॥ (5/18)
झाला इवासौ शलीभायते स्म, हासेन वैदेशिकमुक्तिदीपे।
आमूलचूड़ं धनदेशभक्तिरसेन, ताना इव मग्नतामैत् ॥ (5/19)

कदाचित् घुडदौड़ की प्रतियोगिता में घोड़े से गिर जाने से पीड़ाहत नाना पेशवा को सान्त्वना देने के प्रसंग में भी रानी के इस कथन द्वारा कि–भारत भूमि की मान-मर्यादा की रक्षा-सुरक्षा हेतु भविष्य में अंग्रेजों के साथ होने वाले युद्धों में तो इसे भी कहीं अधिक चोटें लग सकती हैं, तो क्या उस समय तुम वीरभाव त्यागकर इसी तरह कातर बनोगे।

कृत्वार्त्तनादं नुपजेत्थमेव किं, युद्धयसे म्लेच्छसमूहनेन।
आहन्यमानश्च किमित्थमेव–व्यावर्त्तसे साहसतो मुखं स्वम् ॥ (5/79)

× × ×

किं त्वादृशं किं तु रुरोद सार्धं, दीनं वचः किं वदने चकार।
स्त्रैणत्वमाप्ता सत्र्यपि किं, मनागप्यूरीचकाराग्रज कातरत्वम् ॥ (5/82)

इसलिए इस जरा-सी चोट से कातर मत बनो। उठो! तुम भारतभूमि के भावी कर्णधार हो–तुम्हें इस देश की दासता दूर करनी है, तुम्हारे ही हाथों द्वारा नवीन भारतवर्ष का निर्माण होगा। हे वीर शिरोमणि! तुम्हारे ही द्वारा नवजागरण होगा। रानी लक्ष्मीबाई के इन ओजस्वी वचनों को सुनकर नाना पेशवा में शक्ति का संचार जैसा हो गया तथा उत्साह सम्पन्न होकर वे तुरन्त वायु वेग से उठ खड़े हुए (5/83-88)।

उत्तिष्ठ भाविन् भरतक्षितेर्हे, नेतर्विनेतः कृपणत्वमुक्तः।
उत्तिष्ठ तन्द्रां परिहृत्य वीर–पन्तान्वयाम्भोजसहस्ररश्मे ॥ (5/85)
उत्तिष्ठ दासत्वमषी मनीषित्, घृणाप्रसूर्लोपमुपैतु देशात्।

उत्तिष्ठ सम्प्रत्ययि पारवश्यबन्धोस्तु—भग्नः सतडत्कृति द्राक् ॥ (5/86)
उत्तिष्ठ हस्तेन तवैव देशो, नवं भवेन्निर्मित एष नूनम् ।
उत्तिष्ठ हे वीरमणे तवैवैदा—कारणैर्जागरणं नवीनतम् ॥ (5/87)

पुनः युवावस्था प्राप्त होने पर लक्ष्मीबाई का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव के साथ सम्पन्न हुआ। लक्ष्मीबाई के रानी बनते ही झाँसी राज्य की प्रजा में जैसे उत्साह का संचार हो गया। विदेशी शासकों द्वारा पददलित की जाती हुई भारत-भूमि तथा यहाँ की प्रजा के प्रति कवि ने इसी सन्दर्भ में हार्दिक संवेदना प्रकट की है (9/23-24)

प्रशिष्यमाणा परदेशवासिभिः, क्षितिर्विदीर्णा भरतस्य सम्प्रति ।
प्रजाश्च हाहेति वदन्ति सन्ततं—वहन्ति चान्तःकरणेन यातनाः ॥ (9/23)
यदीयमेतद् धरणीतलं शृणोत्यहो, स एवाद्य दुरुक्तिसन्ततिम् ।
विरोदधुकामा सकला दशामिमां—न साहसं किं तु सहायताकरम् ॥ (9/24)

अंग्रेजों के अत्याचार, भारतवर्ष की दुर्दशा एवं प्रजा का करुण क्रन्दन, नव विवाहिता महारानी लक्ष्मीबाई को प्रतिपल व्यथित किए रहा। यही कारण था कि रानी ने अपनी राजधानी झाँसी की नारियों में भी देशभक्तिपरक अदम्य वीरभाव को जागृत किया तथा उन्हें अबला की भावना से ऊपर उठाने का प्रयास किया—

वदन्ति नारीमबलां नरास्तु यां, न सा तथेत्यस्ति दृढ़ मतं मम ।
भवस्य शक्तिः पुरुषार्थमुन्नतं— कदापि मा गादबलत्वहीनताम् ॥ (9/18)

समय-समय पर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अंग्रेज शासकों के विरुद्ध नवचेतना का संचार किया। फलस्वरूप आबाल वृद्ध सभी में एक नवीन चेतना, जागृति, नया स्पन्दन, नया जागरण और नवीन राष्ट्रीयता का प्रवाह हो गया (9/10-38)।

उत्सवव्याजतः प्रायो झाँसीश्वर्यपि सन्मतिः ।
उपायं मिलितुंताभिन्वियेषोपयोगिनम् ॥ (9/31)
समागमेषु तेष्वेव क्रान्तिबीजमवप्त सा ।
समग्रमेव बुन्देलखण्डं चक्रे यशश्चयम् ॥ (9/32)

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के कारण राज्य में सैनिकों की संख्या में दोगुनी वृद्धि के साथ, उत्साह एवं साहस का भी दोगुना संचार हुआ (9/33-34)।

अपने पति गंगाधर राव की आकस्मिक मृत्यु पर विलाप करती हुई (10/1-10) रानी के मन में इस बात की भी चिन्ता है कि भारतवर्ष में नव जागृति लाने हेतु अब उनका सहायक कौन होगा—

देशस्य भारतस्याद्य जागर्त्तेः कल्पनां नवाम् ।
कः करिष्यति च श्रोष्यत्याजिमार्गचोवचाः ॥ (10/10)

पति मृत्यु शोकजतिन मूर्च्छा से मुक्त होते ही वह प्रतिज्ञा करती है कि वह क्रान्ति द्वारा भारत से अंग्रेजी शासन को समाप्त करके राष्ट्र में समृद्धि लाएगी। इसके लिए अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं करेगी, तोपों के गोलों को भी सह लेगी और अपने कर्मयोग को भली-भाँति पूरा करेगी (10/63-72)।

पति की मृत्यु के बाद रानी के ही कन्धों पर सम्पूर्ण राज्य एवं राष्ट्र की चिन्ता का भार आ पड़ा। रानी को अपने राष्ट्र कल्याण की इतनी चिन्ता रहती थी कि रात में सोते समय भी सहसा जाग पड़ती थी और राष्ट्र-दशा के विषय में सोचती रहती थी (11/2)–

सुप्ता स्वराष्ट्रार्थमजागरीत्तथा, क्षणे क्षणे राष्ट्रदशामचिन्तयत् ॥ (11/2)

सोते समय भी उनके मुँह से प्रायः वाक्य बड़ी कठोरता के साथ निकल पड़ता था कि–अरे, नीच गोरे ठहर! तू कहाँ है? तथा ऐसा कहते समय उनके हाथ की मुट्ठी दृढ़तापूर्वक बँध जाती थी (11/3)–

प्रायेण निद्राङ्कमुपेयुषी शुभा मुष्टिं, स्वकीयां सुदृढ़ीचकार सा।
गुरुण्ड कुण्डाधाम रे क्व पामरेत्युवाह, व क्त्रेण वचः प्रचण्डताम् ॥ (11/3)

पूजा करते समय भी रानी को अपने भारत देश की चिन्ता बनी रहती थी। वे दुर्गा की उपासिका थीं। अतः जब भी वे अपने मन में दुर्गा की मूर्ति का ध्यान करती थी, तथी कुछ ही क्षणों में दुर्गा की मूर्ति के स्थान पर भारतमाता की दयनीय मूर्ति प्रकट हो जाती थी, जिसे देखकर वे अतीव दुःखी और चिन्तित हो उठती थीं। अपने भारत देश की विदेशी शासकों द्वारा की जाती हुई दुर्दशा देखकर वे खिन्न होकर सोचने लगती थी कि इन विदेशियों द्वारा हमारे देश की गोमाताओं का वध किया जा रहा है, उनके रुधिर की धाराएँ बह रही हैं, देश की संस्कृति के संरक्षक ब्राह्मण में सन्त्रास फैल रहा है, बहू-बेटियों की लाज लूटी जा रही है, किसानों की भूमि छीनी जा रही है। (11/4-17)–

प्रातश्च सायं च यदैव साभवत्, कदापि पूजावसरेपि सक्षणा।
तदैव लब्धावसरा विभीषणा–बभूव चिन्ताभुजगी मनोगता ॥ (11/5)
मूर्त्तिं भवान्या अबला यदाकरोत्, पूजारता मानसपीठिकोपरि।
तदा विचारप्रसरो नवो गतः–सत्तां तदीयां सहसा न्यवारयत् ॥ (11/6)
ततश्च तस्या उपरि प्रभाच्युतं, व्यरीरचद् भारतभूप्रसुमुखम्।
स्विन्नं च चिन्ताविवहेन पीतभं–वज्रा हतं चाकुलभावसूचकम् ॥ (11/7)
विशस्यते गोव्रज उत्तरोत्तरं, तल्लोहिं स्यन्दत एकवेगतः।
तस्यैव पुष्टि रूधिरं दृशोरिदं–करोति हा हाविरतं वहत्परम् ॥ (11/13)

× × ×

लज्जापि सा सम्प्रति लुण्ठयते न। नः सुतावधूनामरिणातितायिना ॥ (11/16)

× × ×

कृषीवलानां वसुधा कियच्चिरं, भवत्यखण्डेत न वेद्यते मनाक्।
आशङ्कया जर्जरमानसा अहो—राष्ट्रेत्र लोका इति दृश्यतेधुना ॥ (11/17)

दुष्ट अंग्रेज शासकों ने इस प्रकार के दुर्नियम बना दिए हैं कि हमारे देश के किसान दिन-रात अपने खेतों में पूर्ण परिश्रम करके फसलें उगाते हैं तो भी भरपेट भोजन नहीं कर पाते हैं। ये अंग्रेज अपनी कूटनीति से लोगों में फूट पैदा कर दिये हैं; फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतीय जनसमुदाय आपस में लड़ाई-झगड़ा कर रहा है। यहाँ के लोग अपनी सरलता के कारण अंग्रेजों की कुटिलता के शिकार बने हुए हैं और कृष्ण, अर्जुन, भीम, महाराणा प्रताप आदि पूर्वजों की वीरगाथाओं को भूलते जा रहे हैं। इन सारी स्थितियों-परिस्थितियों को भली-भाँति सोच-समझकर रानी ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि अपने देश के उद्धार के लिए दुष्ट अंग्रेज शासकों से युद्ध करना परमावश्यक है (11/18-36)—

योहः समग्रं कुरुते श्रमं परं, क्षेत्रेषु वाटेषु हुतस्वजीवनम्।
भुञ्जीत हा नोदरपूरमात्मनोप्यहो—स शस्यानि रिपोर्विधानतः ॥ (11/18)

× × ×

खलस्य भङ्ग्ध्याशु खलत्वमुद्धुरं, दुःसाहसं नाशय तस्य पूर्णतः
दुःखानि स चूर्णय भारतस्य—भोर्व्यावर्त्तयाकर्मण इद्धमुन्नतम् ॥ (11/33)

अपने देश की रक्षा हेतु विदेशी अंग्रेज शासकों की सेना के साथ चल रहे युद्ध के दिनों में रानी के ही प्रयत्नों से झाँसी की सेना तथा प्रजा में अपने राष्ट्राभिमान की स्पृहणीय एवं वन्दनीय भावना जाग उठी थी। वे हार मानकर अपनी माता के दूध को लज्जित नहीं होने देना चाहते थे, उन्हें अपने प्राणों की जरा भी चिन्ता नहीं थी, उन्हें चिन्ता थी तो अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति की। अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए वहाँ का बच्चा-बच्चा युद्ध करने को तैयार था (13/1-5)—

या जन्मदात्री जननी स्वकीया, दुग्धं न तस्या भविता सलज्जम्
प्राणा अमी संशयगा भवेयुश्चिन्ता—न मुक्त्यै भवितास्मि सज्जः ॥ (13/3)
शिशुः शिशुः पुर्यद एव वाक्यं, स्वरेण तारेण सदा बभाण।
बद्बन्धयात् किं मरणात्तथैव—लभ्येते प्रपच्छ जनः समस्तः ॥ (13/4)

झाँसी के लोग अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने हेतु समरभूमि में जा रहे थे, उनके हृदय में उत्साह का सागर उमड़ रहा था, निराशा नाममात्र भी नहीं थी। उनका विश्वास था कि भगवान श्रीकृष्ण तथा उनकी रानी लक्ष्मीबाई इन सभी आततायी अंग्रेज शासकों को अवश्य ही नष्ट कर देंगे (13/7-9)—

राजेश्वरी सा सकलस्य रक्षित्र्यपेक्षते नैव सहायतां नः।
एकापि योद्धुं प्रभवत्यरीणां—समूहनेनेति जना अवोचन् ॥ (13/8)
क्षणप्रभा सासुषु शात्रवाणां, बभूव धारा विकटा निहन्त्री।
दीप्तिः स्वकानां सुखदा कृतेलं—सञ्चारयन्ती नवजीवनत्वम् ॥ (13/9)

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अमर सेनानी श्री तात्याटोपे को अपनी सहायता हेतु सेना सहित आता हुआ जानकारी रानी के हृदय में और वाणी में रणविषयक उत्साह और विजयविषयक विश्वास का अमन्द सागर लहराने लगा था। एक ओर से अपनी सेना तथा दूसरी ओर से तात्याटोपे की सेना के बीच में अंग्रेजों की सेना के समग्र विनाश की कल्पना से रानी का हृदय कमल खिल उठा। पुनः अंग्रेजी सेना के साथ रानी तथा तात्या की सेना का घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें काफी सैनिक दोनों पक्षों के मारे गये। इस युद्ध को देखने पर प्रलय के दृश्य जैसी स्थिति प्रतीत होती थी (13/11-40)—

पश्यारिसेनामनु हन्त लग्नश्चकार, खण्डप्रलयस्य दृश्यम्।
विमुञ्चत द्राक् सुभटाः शतघ्न्याः—सर्वङ्कषा गोलततीं सवेगम ॥ (13/27)
कोलाहलं स्याद् घननादघोरं, शत्रुव्रजेसव्यसनं भवेद् द्राक्।
पश्याथ तात्याः सुसमीप एव—पश्याथ कन्तान् स्फुरंतश्च खड्गान् ॥ (13/28)

तात्या टोपे एवं रानी की सेना युद्ध कर रही रहे थे कि इसी बीच अंग्रेज सेनापति के रूप में ह्यूरोज भेजा गया जिसे देखते ही वीर सैनिक तुरन्त वीरतापूर्वक चिल्लाते हुए कहने लगे यही आगे ह्यूरोज है जो हमारी स्वतन्त्रतारूपी कमल को नष्ट करने वाला कीड़ा है, इसे मारो (13/41-50)—

द्राग् ह्यूगरोजं नय कालगेहमिह्य—ग्रमिह्यग्रमुदीर्णशौर्यम्।
स्वातन्त्र्यपद्मं बत भक्षकोऽयं कीटः खलो मर्दय मर्दयैनम् ॥ (13/45)

तात्या की सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक युद्ध करती रही, किन्तु अन्त में उसे पराजित होना पड़ा तथा तात्या को समर-भूमि छोड़नी पड़ी—

तात्या यमं यान्तु पलायितास्ते, रक्ष्यस्त्वयात्मा विवशो ह्यहो त्वम्।
भाग्यावलम्बां रहयस्व झाँसी—पराभवं सापि मलं चिनोतु ॥ (13/52)

तात्या की सम्पूर्ण सेना शोक और लज्जा के सागर में डूब गयी। तात्या भी भारत के दुर्भाग्य पर चिन्तामग्न हो गए कि अब कैसे इस देश को स्वतन्त्रता मिलेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अब इस देश के उद्धार की कोई आशा नहीं है (13/53-70)—

तदान्तरं प्राप्य शिलोपविष्टस्तात्या—असीमं मथितो बभूव।
विचिन्तयन् भारतभाग्यभानुर्न्यमज्जदापन्मकरालये हा ॥ (13/61)

× × ×

निमज्जयत्यन्धपरम्परा स्वान्, सार्धं सहस्रं यमगेहमापुः।
रसातलं भारतभूमिमानो—गतः समो नोद्धरणस्य चाशा ॥ (13/69)

किन्तु रानी लक्ष्मीबाई जरा भी हताश नहीं हुई। उन्होंने अनुपम, बल, बुद्धि, पराक्रम, साहस तथा उत्साह के साथ अपना स्वातंत्र्य समर जारी रखा, जिसे देखकर अंग्रेज किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। झाँसी पर आक्रमण निष्फल हो गया, उस पर अधिकार न हो सका। अंग्रेज यह कहते हुए पछताए भी कि झाँसी पर आक्रमण करके उन्होंने भारी भूल की (13/70-94)—

आदेशमुल्लङ्घ्य न कैर्निगस्य, झाँस्याक्रमं चेद् विसृजेम तर्हि।
कथं विषीदेम कुशाग्रबुद्धेरु—पायतो लब्धगुण निकामम् ॥ (13/93)
इत्युवाच रिपुसंहतिः समा, साहसं नवमवेक्ष्य पुरस्य।
स्वस्य ताडितवती बहु शीर्ष—गण्डमाशु विनिधाय करेस्थात् ॥ (13/94)

झाँसी पर आक्रमण तथा यह असफलता अंग्रेजों को कभी नहीं भूल सकती साथ ही उन्हें अपनी मूर्खता का ही अहसास होता रहेगा। इसीलिए अप्रैल की पहली तारीख को इन्होंने मूर्ख दिवस के रूप में मनाया (13/89-90)—

पतन्तु घोरे व्यसने सपत्ना, भवन्तु मूर्खा अधुना वराकाः।
नयन्तु नो विस्मरणं कदापि—स्थौजस्विमौल्याभरणेषु हीराः ॥ (13/89)
आद्यं दिनं मूर्खदिनं रिपूणामप्रैलमासस्य भवेदिदं वै।
तथा घ्नतारीन् निमिषेण, सर्वान् यथा लभेरन् परलोकमेव ॥ (13/90)

महारानी लक्ष्मीबाई की तलवार की तेज से अपमानित एवं असफल अंग्रेज भीतर ही भीतर सुलग रहे थे कि फलस्वरूप 3 अप्रैल को एक भयङ्कर सेना के साथ झाँसी पर आक्रमण कर दिया। सहसा गिद्ध की तरह शत्रु-सेना ने सम्पूर्ण झाँसी को घेर लिया। सर्वत्र कोलाहल एवं हाहाकार होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था जैसे भूकम्प जैसी महाविपदा ने झाँसी को कम्पित कर दिया हो। फिर क्या था? महारानी की सेना ने भी शत्रु सैनिकों का मुँहतोड़ जवाब देना शुरू कर दिया। रानी के सैनिकों के रथ में लगी पताकाएँ जैसे अम्बर से गिरी उल्काओं जैसे प्रतीत होती थीं। इसके वेग में सहसा शान्त पवन भी प्रकम्पित हो गया, सभी दिशाओं में शस्त्रों की झंकार का भय व्याप्त हो गया। युद्ध के वाद्य-यन्त्रों से सम्पूर्ण वातावरण निनादित हो उठा। गोलियों की धाँय-धाँय आवाज करती हुई अंग्रेजी सेना दुर्ग के चारों ओर पतंगा जैसे मँडरा रही थी। युद्धरत सैनिकों ने तलवार की भयंकर झंकार ने समर-भूमि को आन्दोलित कर दिया। महारानी की बहादुरी एवं सैन्यबल को देखकर अंग्रेज सैनिक जब भयभीत और हतोत्साहित होने लगे तो कपट-युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने कुख्यातनामा

दुल्हाजू को मिला लिया। उसने दुर्ग के प्रवेश-द्वार को भेद देकर अंग्रेजों को जहाँ झाँसी के दुर्ग में प्रवेश का मार्ग खोल दिया, वहीं उसने भारतमाता की पराधीनता में नब्बे वर्षों की वृद्धि कर दी। (14/1-50)—

दूल्हाज्च उद्दण्डवरस्य तां पुरं, विश्वासघातोगमयद् रसातलम्।
विश्वेखिले नीचतयाबुधः श्रुतः—स्वस्यैव ध्वंसं यशसश्चकारः सः ॥ (14/50)

इस अवसर का लाभ उठाकर अंग्रेज सैनिकों ने अत्याचार की सीमा लांघते हुए झाँसी में जिस प्रकार से लूट-पाट की, जो नरसंहार, जो तोड़-फोड़ तथा अगाजनी की; उससे झाँसी में महाप्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया था। अत्याचार, पाप एवं नृशंसता के सामने रावण और कंस के पुनर्जन्म की याद आ जाती है जो झाँसी कभी समृद्धशालिनी थी, वही आज अट्टहास करती हुई श्मशान-सी प्रतीत हो रही थी। (14/50)—

गोघ्नाश्च दैत्या अविशन् मदोत्कटाः, पापं विवेश प्रतिपद्य विग्रहम्।
जातः कदाचार उदक्तबन्धनो—लङ्केशकंसदय आपुरुद्भवम् ॥ (14/60)
आगच्छदुग्रः प्रलयश्च मूर्तिमांस्ता—पाश्च पापान्यभिपेतुरुद्धराः।
ऋज्व्यः प्रजास्ता विधुरास्ततो—भवन्नापेदिरं शापसमा यदारयः ॥ (14/61)
स्वर्याहि हा मारय रे महारवो, व्याप्तो विहाश्चरमो जने-जने।
हिंसा बभूवोग्रतमा रणावनीचण्ड—यट्टहासं विततान चण्डमम् ॥ (14/63)
वालारसाड्कां वदनाद् दधद्, बहिर्जज्वाल भूभाग्यमभक्षयच्छिखी।
पूर्लुण्ठिता नीवृदथापि लुण्ठितो—नारीजनानां सकलं च लुण्ठितम् ॥ (14/64)
धर्मश्च कर्माभवतां विलुण्ठिते, देशश्च वेशोभवतां विलुण्ठितौ।
लज्जा च सज्जाभवतां विलुण्ठिते, रङ्गश्च सङ्गोभवतां विलुण्ठितौ ॥ (14/65)
सौधं च रत्नं च जगाम दग्धतां हर्म्यं च कीर्तिश्च जगाम दग्धताम्।
गेहं च मानश्च जगाम दग्धतां तत्राशु सर्वं हि जगाम दग्धताम् ॥ (14/66)
व्याप्तं महपापमदो विलोकयत्, पापं समाश्वासमितं तदामितम्।
व्याप्तं महातापममुं विलोक्यं—स्तापः समाश्वासमितस्तदामितम् ॥ (14/67)
तत्र श्मशानं विजहास भीतिदं, झाँसी बभौ यत्र समृद्धशालिनी।
व्याप्नोत्कुमारांस्तरुणान् भयं हतिः। प्रौढ़ांश्च वृद्धान् मरणं प्रमत्तता ॥ (14/68)

झाँसी में अंग्रेजों के अत्याचार के ताण्डव का जो वर्णन उपर्युक्त स्थलों पर वर्णित है उसे पढ़कर किस देशवासी (भारतीय) का मन करुणा और आक्रोश से उद्वेलित नहीं हो जाएगा। एक महाछल के द्वारा महारानी लक्ष्मीबाई की सम्पूर्ण कल्पना चूर-चूर हो गयी। एक विश्वासघात ने झाँसी में अन्तर्नाद व्याप्त कर दिया। ऐसा कहते हुए महारानी के क्रोध से लाल नेत्र आंसुओं से भर आए, बांहें फड़कने लगीं। इसी प्रकार के बहुत सारे आक्रोशयुक्त वचनों से झाँसी की दुर्दशा तथा

चिन्तनीय स्थिति पर विचार करती हुई मनस्विनी महारानी अश्रुपूर्ण रक्तिम नेत्रों से अपने स्वयं तथा सैनिकों को ढांढ़स बँधाती रही जिसे पढ़कर रोम-रोम पुलकित हो उठता है (14/69-95)। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का ऐसा अनुपम उदाहरण एवं स्थल अन्यत्र दुर्लभ है।

अपने देश की दुर्दशा से रानी के मनोमस्तिष्क में देशद्रोहियों और देश के शत्रुओं के प्रति क्रोधाग्नि व्याप्त हो जाती है। झाँसी में अंग्रेजों द्वारा किया जा रहा हैं अत्याचार रानी की सहन शक्ति से बाहर हो गया–

कमलनयना दृष्टवा् झाँस्यां धगद्धगदुज्जवलद्,
हुतवहशिखां सव्यामोहापतद् मथितान्तरा।
अव दधिकोन्मत्ता घातं निपातय मयूपरे
सरलसरलान् निर्दोषान् हंस्यहो अधिता रिपो ॥ (15/11)

झाँसी के ऊपर शत्रु के झण्डे को लहराते देखकर नागिन की तरह रानी फुंकार उठी किन्तु उसकी नारी उत्सुकता जैसे नष्ट-सी हो गयी थी, क्योंकि सम्पूर्ण नगरी महाकपटी लोगों से भर गयी थी। वह स्वयम् अथक युद्ध करके भी जब यह देखती है कि उनके सभी देशभक्त सैनिक और सेनापति एक-एक करके वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं और झाँसी में अंग्रेजी सेना भर चुकी है। अतः अब न तो विधिवत् यद्ध ही किया जा सकता है और न ही अब विजय की आशा ही शेष रही है। इसलिए वह बड़ी भावुकता के साथ झाँसी छोड़ देती है और कालपी में पहुँचकर तथा राव आदि के साथ मिलकर अपने स्वातंत्र्य संग्राम को चलाने की अदम्य भावना के साथ अपने सीमित सैनिकों को लेकर कालपी चली जाती हैं (15/17-62)–

उपरि ददृशे झाँस्याः शत्रोरुदग्रगतिर्ध्वजो
भुजगवनितातुल्यं रेखा दधाव सफूत्कृति ॥
अथवदथना जालाभा सा महोत्सुकतां गता
सकलनगरीं बन्धं शीघ्रं महाकपटान्विता ॥ (15/17)

रानी के पिता मोरोपन्त, जिन्हें भारत के ही गद्दारों ने धोखे से अंग्रेजों के अधीन करा दिया तथा अंग्रेजों द्वारा नृशंसतापूर्वक फाँसी दिए जाने की घटना का भी महकाव्य में बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। इसी सन्दर्भ में शोकविह्वल तथा करुण क्रन्दन करती हुई रानी लक्ष्मीबाई एवं देशभक्त भारतीयों की मार्मिक स्थिति का भी चित्रण किया गया है (सर्ग 16-18)।

अंग्रेजी शासन को भारत से समाप्त करने के उद्देश्य से रानी अनवरत स्वातन्त्रय समर यज्ञ किया गया। इसी सन्दर्भ में कालपी, कोंच और ग्वालियर में रानी ने अंग्रेजों से जो भीषण युद्ध किये थे, उन सबका भी इस महाकाव्य में वीरतापरक, देशभक्तिपरक तथा अतीव प्ररेणापद वर्णन मिलता है। इन प्रसंगों में रानी के हृदय

में भारतमाता को स्वाधीन कराने की सदैव कामना एवं चिन्ता बनी रहती है, इसीलिए तो युद्ध के दौरान उत्साही भारतीय सैनिक उसकी जय-जयकार करते हुए उसे दुर्गा एवं राष्ट्र की माँ के रूप में देखते हैं (19/391)–

जयतु जयतु रुद्रश्चक्रधारी विधाता जयतु जयतु चण्डी भानुजा राष्ट्रमम्बा।
जयतु जयतु नाना राव उर्वशिपत्नीत्यदित कलकलो द्राक् शत्रवेध्वंसमुग्रम्।।
(19/39)

ग्वालियर को पाकर राव आदि अन्य लोग वीतचिन्त हो गए थे, वहाँ एकमात्र रानी ही अपने देश की रक्षा की चिन्ता में डूबी रहती थी। ग्वालियर का पराजित राजा सिन्धिया अंग्रेजों से मिलकर भारतीय स्वतन्त्रता के इन सभी उपासकों, विशेषकर रानी को समाप्त करना चाहता था। फलस्वरूप अंग्रेजों ने अपनी समग्र शक्ति का संचय करके आक्रमण कर दिया। रानी ने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा तथा अदम्य वीरता से अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया किन्तु एक दिन सिन्धिया ने उन्हें छलपूर्वक सवारी के लिए एक अड़ियल घोड़ा दिला दिया। फलस्वरूप समर-भूमि में वह घोड़ा तेज भागने के क्षणों में अड़कर खड़ा हो गया। रानी ने फिर भी साहस नहीं छोड़ा। वे अपने शत्रुओं का संहार करती रहीं, किन्तु हा दुर्दैव, उसी समय किसी शत्रु ने पीछे से छिपकर उनकी ग्रीवा पर प्रहार कर दिया, जिससे वे बुरी तरह आहत हो गईं, लेकिन उस दशा में भी उन्होंने अपने मारने वाले को मार गिराया (सर्ग 20)।

किमस्ति राष्ट्रं प्रति घात एतद्–प्यमुं ददौ ग्वालियरं हयं मयि।
अहो न विश्वासविघातने पटो मृतोपि लब्धासि शमं कदाचन॥ (20/112)

× × ×

तदेक आयादरिराशु पृष्ठास्तुरङ्ग–पश्चार्द्धसुगूढविग्रहः।
प्रदाय धर्मे सुकृते तिलाञ्जलिं शिरस्यमूं हा प्रजहार दुर्दमः॥ (20/117)
असौ पल्त्येव कपोललम्बन–मवामकं तच्छिरसोर्द्धमाश्रयत्।
उवाच च प्राप्नुहि पारितोषिकं प्रसन्नचित्तोलमलं भयेन ते॥ (20/118)
ततश्च सा मन्युमरीचिसञ्चयं, चकार सम्पिण्डितमाश यत्र तम्।
न्यपातयत् खड्गमरौ तडिद्रयं यमं मुषल्यक्ष इवैत् स घातकः॥ (20/119)

× × ×

क्षतत्वमेषा प्रतिरोमकूपमैद् दधार रक्त। विगलन्निरर्गलम्।
यतश्चकाशे परमुत्तरोत्तरं लता पतद्रक्तसुमेव सुन्दरी।। (20/121)

मातृभूमि की गोद में घायल सिंहनी की तरह गिरी हुई तथा मृत्यु के पल गिन रही, रक्तरंजित महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने देश, अपनी देशभूमि, अपने देशवासियों, अपने देशभक्तों और अपने देशरक्षकों को बड़ी ही भावुकता के साथ याद किया है। उन्होंने भारतराष्ट्र के कण-कण की वन्दना की

है, उसे श्रद्धा सुमन सौंपे हैं और उसके मान-सम्मान और सर्वतन्त्रस्वातंत्र्य की कामना की है जिसे पढ़कर मन में राष्ट्रीयता तथा स्वदेश-प्रेम की भगीरथी बहने लगती है (21/20-50)–

लप्स्ये कदाचिद् यदि जन्म भूयो गन्तुं यतिष्ये तदवेक्षणाय
निर्वणेयिष्ये जननीं सभावं कंठोस्ति शुष्कः सलिलं प्रदेहि।। (21/20)

× × ×

तुभ्यं प्रणामाञ्जलयोयि दिल्लि साकेत ते मे प्रणिपालतक्षम्।
राष्ट्रस्य वन्देणुमणं सभावा कण्ठोस्ति शुष्कः सलिलं प्रेदहि।। (21/45)

महाकाव्य के अन्तिम सर्ग (बाइसवें सर्ग) में रानी को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की सफलता प्राप्ति में उनके श्रेय को स्वीकार किया गया है। उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की गयी है तथा उनके राष्ट्रभक्त जीवन से राष्ट्रवासियों को सदैव प्रेरणा मिलने की कामना प्रकट की गई है–

एतर्त्सस्मरणकरणं केवलं वीरताया
मामा भूत्स्वं भ्रमपरिगता स्मारकं मन्यमाना।
दिव्यं भव्य तब जननि हे स्मारकं शौर्यमेव
किं स्यात्कर्त्रद्वयगुणनिधेः स्मारकत्वस्य तस्य ॥ (22/27)
भक्त्याः पूर्णश्चरणकमले तावकीने नमामि
गाथां कृत्वाधिगतशमनस्तत्तयोरेव चिह्नम्।
तत्कीर्तिर्वायविदितमृतिः सृष्टमेतत्ततो में
नेतुः सर्व गुणमविकलं नानुगन्ताप्नुयान्नो ॥ (22/28)

संदर्भ सूची

1. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 'पूर्वपीठिका' 1/3-4
2. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 1/9-14
3. वही, 3/10
4. वही, 3/11-15
5. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 4/7-21
6. वही, 5/1-3
7. वही, 5/8-9
8. वही, 5/10
9. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 5/11
10. वही, 5/16-22
11. वही, 6/5,12-16
12. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 8/10-25, 9/1-20

13. वही, 13/27-29
14. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 14/7-10
15. वही, 14/6, 14-15
16. वही, 14/20-24
17. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 17/11-21
18. वही, 18/12
19. वही, 18/14-15
20. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 18/16-21
21. वही, 18/25-26
22. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 19/9-14
23. वही, 20/1-10
24. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 1/1
25. वही, 2/16-17
26. वही, 2/16-17
27. वही, 3/8
28. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 4/52
29. वही, 4/53
30. वही, 5/4-7
31. वही, 5/27-30
32. वही, 6/9-11
33. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 6/12
34. वही, 6/16
35. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 8/22-23
36. वही, 9/1
37. वही, 9/2
38. वही, 14/38-39
39. वही, 14/41-42
40. वही, 14/44
41. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 19/1-14
42. वही, 19/4-6
43. वही, 20/2-3
44. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्', 20/2-3
45. वही, 20/26
46. वही, 21/12-13
47. वही, 21/16-17

उपसंहार

भारत के एक राष्ट्र के रूप में निर्माण की प्रक्रिया विश्व के राष्ट्रीय इतिहास में सर्वाधिक प्राचीनतम् है। वैदिक वाङ्मय में जिस प्रकार राजपद के प्रादुर्भाव का उल्लेख है, उससे स्पष्ट है कि भारत में जातीय सम्बद्धता की चेतना अत्यन्त प्राचीन और कुछ-कुछ आज की लोकतान्त्रिक चेतना से युक्त रही है। पहले छोटे-छोटे 'जनों' के किसी भू-भाग पर बसे स्वायत्त संगठनों को तो राष्ट्र कहते ही थे, कालान्तर में विशेष रूप से महाभारतकाल में हम उन अनेक 'जनों' (कबीलों) के संघ शासन का उल्लेख पाते हें। इस प्रकार जनपदों का महाजनपद में विकास हुआ। जैसे—छोटे-छोटे जनपदों को राष्ट्र कहा जाने लगा। संस्कृत में 'वर्ष' शब्द का प्रयोग इसी के अर्थ में होता था।[1] विभिन्न प्राचीन जनों या गणों को आज की भाषा में विभिन्न 'राष्ट्रिकताएं' या 'जातियाँ' कह सकते हैं। इन्हीं 'राष्ट्रिकताओं' के इतिहास की एक सुदीर्घ अवधि में भारत राष्ट्र के रूप में नवावतार हुआ।

प्राचीन सामन्तकाल में जब भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों का एक महादेश था, उस यातायात तथा उत्पादन और वितरण की सीमितता के युग में भी एक वृहत्तर भारतीय राष्ट्र एक सांस्कृतिक चेतना था। उस समय 'राज्यों' की सीमाओं से आर्थिक सम्बन्धों की परिधि बड़ी थी। इन आर्थिक सम्बन्धों से सांस्कृतिक की परिधि और बड़ी थी।[2] पूरे भारत में अनेक राष्ट्र, राज्यों के होने के बावजूद सारी स्मृतियों और पुराणों में सामान्य शासनाचारों की चर्चा विभिन्न देशों के विशिष्ट आचारों की स्वीकृति के साथ हुई है। इसके अतिरिक्त भारतीय राजशास्त्रों में जो सारे राष्ट्र को एक क्षेत्र के अन्तर्गत लाने की आदर्श भावना-चक्रवर्तित्व प्राप्ति का उल्लेख है, वह भी एक भारतीय राष्ट्र की संकल्पना का प्रारूप है।

उपर्युक्त स्थलों पर राष्ट्र एवं भारतीय राष्ट्र की संकल्पना से तात्पर्य प्राचीनकाल से चली आ रही भारत की राष्ट्रीयता एकता, अखण्डता एवं विशालता से है, जिसे कालान्तर में विभिन्न आक्रान्ताओं द्वारा छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। मौर्यकाल के पूर्व से शुंगों, सातवाहनों, शकों, कुषाणों, गुप्तों, गुप्तोत्तर राजवंशों और मुगलों तक का इतिहास सामन्ती राष्ट्रीय व्यवस्था का उच्चावच काल रहा है।

इन सबमें क्रमशः राष्ट्रीय परिसीमा के संकोच-विस्तार के बावजूद एक अखण्ड भारत का आदर्श विद्यमान रहा। राष्ट्रीय अस्मिता का भाषिक, धार्मिक, दार्शनिक, स्थापत्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्कार नव से नवतर होता गया और अंग्रेजी शासन के युग तक आते-आते हमारी राष्ट्रीय पहचान विश्व पटल पर उत्तरोत्तर निखरने लगी।

भारत में बाहर से आने वाली प्रत्येक जाति के विरोध में पूर्व बसी हुई जातियों के टकराव और घुलने-मिलने की ऐच्छिक-अनैच्छिक प्रक्रिया के बीच इस लोकतान्त्रिक राष्ट्रीयता का विकास होता रहा। सम्प्रेषण और यातायात के संसाधनों के विस्तार आदि के साथ सारे देश को एक समझने की भावना का विकास हुआ तथा क्षेत्रीयता से राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। 'जन्म-भूमि' का सम्प्रत्यय अखिल भारतीय हो गया। एक मुद्दत तक जो मुसलमान आक्रान्ता थे, अब परिजनों में सम्मिलित हो गए और म्लेच्छ स्थानीय हो गए साम्राज्यवादी अंग्रेज।

अंग्रेजों से पहले भारत में अन्य विदेशी जातियाँ आईं, परन्तु समय के बीतने के साथ यहाँ की जातियाँ आपस में घुल-मिल गईं किन्तु अंग्रेजों के इस भूमि पर कदम रखने के साथ जो असन्तुलन पैदा हुआ वह भयंकर भूकम्प का रूप धारण करके तभी थमा जब वे यहाँ से चले गए। कारण, अंग्रेजों का आक्रमण केवल देश की भूमि पर नहीं था प्रत्युत वह यहाँ की अर्थव्यवस्था, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक एकता पर भी था। इसलिए एक ओर जहाँ छोटी-छोटी राजसत्ताएं अलग-अलग जागकर अखण्ड भारतीय जागरण का पोषण करने लगीं, वहीं साधारण किसान-मजदूर व्यापारी वर्ग और बुद्धिजीवियों सबमें अलग-अलग नवजागरण का संचार होने लगा। आरम्भ में राजनीतिक नवजागरण का स्वरूप धार्मिक-सांस्कृतिक नवजागरण के रूप में ही सीमित था। अन्य अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यों की भाँति संस्कृत साहित्य में भी आरम्भ से ही नवजागरण का भाव उभरने लगा जो उत्तरोत्तर घनतर होता गया।

एक लम्बे समय में संस्कृत न राजभाषा रही है और न साधारण जनता के प्रयोग की भाषा, किन्तु जिस संस्कृति में यहाँ के मानव मन की रचना हुई है, उसमें नित्यप्रति संस्कृति की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसलिए आज तक इस भाषा की स्रोतास्विनी निरन्तर प्रवाहित है।

इस शताब्दी के पूर्व की दो-तीन शताब्दियों के संस्कृत साहित्य के किसी भी क्षण को शून्यकाल नहीं कहा जा सकता। हाँ, इस अवधि की रचनाओं के विषय में लोगों की अनभिज्ञता अवश्य है। इस बीसवीं शताब्दी में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के समय के नियतावधिक संस्कृत के पत्रों ने वही भूमिका निभायी जो देश की किसी भी जीवित भाषा के साहित्य ने।

बीसवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य में विविध विषयों पर दो-तीन सौ महाकाव्य लिखे गए हैं। राष्ट्रीयता की जनवादी चेतना के प्रभाव में संस्कृत महाकाव्यों के पारम्परीण आभिजात्य का तेवर बहुत बदला है। वस्तु, नेता और रस विषयक रूढ़ियाँ टूटी हैं। काव्यशास्त्र के विधान के विपरीत महाकाव्यों में ब्राह्मण और क्षत्रिय से भिन्न पुरुषों और स्त्री नायकों वाले अनेक महाकाव्य प्रणीत हुए। यही नहीं, ऐसे महाकाव्य लिखे गए हैं जिनमें न केवल अप्रसिद्ध चरितों को नायक रूप में गृहीत किया गया है, प्रत्युत जीवित नायकों वाले महाकाव्यों का भी प्रणयन हुआ है जैसे—'इन्दिरागान्धीचरितम्' इस शास्त्र के विपरीत काव्य की अन्य विधाओं की भाँति महाकाव्य की प्रश्नाकुल वर्तमान से अप्रभावित नहीं है; यथा—'विशालभारतम् तथा स्वराज्यविजयः' आदि में विभिन्न समसामयिक समस्याओं एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम आदि का उल्लेख है।

किसी भी राष्ट्र की अस्मिता के भाव में उसके प्राचीन आदर्शों, चिन्तनों और सम्पूर्ण परम्परा का रसायन घुला होता है। भारत जैसे अति प्राचीन राष्ट्र के विषय में यह और भी अधिक सत्य है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उसके कर्णधारों ने राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद और जरथुस्त आदि सबसे ऊर्जा ग्रहण की थी। जितने भी मुस्लिम धर्म सुधारक और क्रान्तिकारी हुए सबने अपने धार्मिक आदर्शों के नाम पर एकत्र होकर देश की रक्षा के लिए अंग्रेजों से लोहा लिया। तिलक जैसे राष्ट्र नेताओं ने गणेश और शिवाजी के माध्यम से उस समय के सामाजिक बिखराव को समेटने का प्रयास किया। यद्यपि इन प्राचीन आदर्शों का दुरुपयोग भी हुआ, किन्तु इसका मूल्य तनिक भी कम नहीं हुआ। इनसे प्रतिबद्ध हमारे भारतीय स्वाधीनता संग्राम में और भी दृढ़ता एवं गम्भीरता आई है। इस शतक के संस्कृत कवियों ने इस तथ्य को बड़ी गहराई से लिया है। उन्होंने आधुनिक चरितों—गान्धिचरितम्, नेहरूचरितम्, सुभाषचरितम्, झांसीश्वरीचरितम्, भगतसिंहचरितम् के साथ उनके प्राचीन विषयों एवं चरितों पर भी उतने ही मनोयोग से रचनएं की हैं। पुराकालिक वस्तु पर लिखे गए महाकाव्यों में से कुछ प्राचीन मान्यताओं का यथावत उपन्यास किया गया है जिससे हमारी आधुनिक रुचि को सनतोष नहीं मिलता, किन्तु इनसे भी आज जो युग चेतना मिलती है, वह यह कि किस प्रकार हम अपने गुण-दोषमय अतीत की इस प्रकार की स्थापनाओं को युगानुरूप परिष्कार देकर राष्ट्रीय बना सकते हैं। ऐसे महाकाव्यों में जिनमें प्राचीन वस्तु को युगीन दृष्टि से देखा गया है, अतीत को वर्तमान से जोड़कर उसे सार्थकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इनमें सीताचरितम्, जानकीजीवनम् एवं पूर्वभारतम् मूर्धन्य हैं।

भारतीयों ने स्वतन्त्रता का युद्ध विविध स्तरों पर और विविध ढंग से लड़ा।

कुछ लोगों ने धर्म-सुधार आन्दोलनों, कुछ लोग सशस्त्र क्रान्ति और कुछ लोगों ने तो कांग्रेस जैसी संस्थाओं के माध्यम से सत्याग्रह सविनय अवज्ञा और अनशनों से स्वाधीनता के एक लक्ष्य का अनुसंधान किया। इनमें से सभी आन्दोलनों को बीसवीं शती के संस्कृत कवियों ने अपनी रचना का विषय बनाया। धर्म सुधार एवं समाज सुधार आन्दोलनों के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अंशदान करने वाले महापुरुषों पर जहाँ एक ओर आर्योदयम् विश्वभानुः एवं स्वामीविवेकानन्दचरितम् आदि दयानन्द एवं विवेकानन्दप्रभृति अनयान्य आन्दोलनकर्ताओं पर स्वतन्त्र काव्य एवं महाकाव्य लिखे गए, वहीं दूसरी ओर 'स्वराज्यविजयम्' आदि महाकाव्यों में राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, रानाडे, रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविन्द आदि के स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान का भी सविस्तार उल्लेख करते हुए कई स्वतन्त्र अध्याय लिखे गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक राष्ट्रीय नवजागरण से किसी प्रकार राजनीतिक राष्ट्रीयता का विकास हुआ। दासता से विसंज्ञ भारतीयों में किसी प्रकार स्वाभिमान जगा और अंग्रेजों के अन्याय का प्रतिकार करने को वे उद्यत हो सके। इसी प्रकार सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा एवं भारत छोड़ो आदि आन्दोलनों के माध्यम से गाँधी प्रभृति अन्यान्य नेताओं ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में किस प्रकार से अंग्रेजों को पराजित किया इन सबका उल्लेख बीसवीं शती के संस्कृत महाकाव्यों—सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता, स्वराज्यविजयः, भारतपारिजातम्, पारिजातापहारः, पारिजातसौरभम्, गान्धीगाथा, गान्धिगौरवम्, भारतीय स्वातन्त्र्योदयः आदि में सविस्तार वर्णित है, जिसका कि प्रकृत प्रबन्ध में भी अनुसन्धान किया गया है।

भारतपारिजातम्, परिजातापहारः, पारिजातसौरभम्, श्रीसुभासचरितम्, विशालभारतम्, श्रीनेहरूचरितम्, नेहरूयशः सौरभम्, भगतसिंहचरितम्, जवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्, इन्दिरागान्धीचरितम्, भगतसिंहचरितम् एवं झाँसीश्वरीचरितम् आदि जिन महाकाव्यों में स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं का अनुसन्धान प्रकृत प्रबन्ध में किया गया है। इन महाकाव्यों के नायक तो सीधे स्वातन्त्र्य संघर्ष में सम्मिलित हुए। फलस्वरूप स्वाधीनता संग्राम की प्रत्येक घटना एवं परिस्थिति का यथासम्भव उल्लेख इन महाकाव्यों में मिलता है। भारतीयस्वातन्त्र्योदयः, स्वराज्यविजयम् एवं स्वराज्यविजयः आदि महाकाव्यों में स्वतन्त्रता संग्राम के लगभग निःशेष विस्तार को विषयीकृत करने का यत्न किया गया है। वास्तव में सौ वर्षों से भी अधिक की कालावधि में सम्पन्न भारतीय स्वाधीनता संग्राम की सर्वांगीण वाचिक प्रस्तुति के लिए महाभारत से भी अधिक दीर्घाकार ग्रन्थ का विस्तार चाहिए। स्पष्ट है कि इन एक-दो हजार श्लोकों

में निबद्ध महाकाव्यों में उस दीर्घायामी घटनाचक्र का संकेतमात्र सम्भव था और यही हो भी पाया है, किन्तु कविता की पारदर्शिता, विचारों की सम्प्रेषक भाषा और आवर्जक शिल्प में बीसवीं शती के उपर्युक्त प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में ये संकेत ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सिद्ध हो गए हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रामविलास शर्मा—भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं, पृ. 28
2. वही, पृष्ठ 29

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.सं. ग्रन्थ	लेखक और प्रकाशक	संस्करण
1. अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशीलनम्	डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी सामारिका समिति, गौरनगर, सागर।	1981
2. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य	प्रो. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, माडर्न बुक स्टोर्स, अकोला, नागपुर।	1963
3. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य परिचयः	डॉ. रमाकान्त शुक्ल, देववाणी परिषद् नई दिल्ली।	1982
4. अरस्तू का काव्यशास्त्र	अनु.डॉ. नगेन्द्र एवं महेन्द्र चतुर्वेदी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।	1966
5. आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन	डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, लोकभारती इलाहाबाद।	1968
6. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन खुल्दाबाद, इलाहाबाद।	1971
7. इन्दिरागान्धीचरितम्	डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी।	1976
8. उपन्यास का सिद्धान्त	जार्ज लुकाच, सम्पा. तथा अनु. आनन्द प्रकाश, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली।	1981
9. उत्तरतत्याग्रहगीता	पण्डिता क्षमाराव, प्रिंसेसं स्ट्रीट, बम्बई।	1931
10. एशिया की विकासोन्मुख एकता	श्रीकृष्ण पुणताम्बेकर (मूल-डेवलपिंग यूनिटी ऑव एशिया), अनु. चन्द्रशेखर शुक्ल और बलभ्रद प्रसाद मिश्र हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ. प्र., लखनऊ	1967
11. काव्यालंकार	आचार्य भामह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।	1962
12. काव्यादर्श	आचार्य दण्डी, मेहरचन्द लक्ष्मणदास दिल्ली	1973

13. क्रान्तिकारी आन्दोलन का मनोवैज्ञानिक इतिहास	प्रो. मन्मथ नाथ गुप्त।	
14. गान्धिगाथा	आचार्य मधुकर शास्त्री, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर।	1973
15. गान्धिगौरवम्	श्री शिवसागर त्रिपाठी, मातृशमरणम्, जनता कालोनी जयपुर।	1977
16. जवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्	पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 2, दशभुजी गणेश, मथुरा।	1967
17. झाँसीश्वरीचरितम्	श्री सुबोधचन्द्र पन्त, श्री गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग।	1979
18. ध्वन्यालोकः	आचार्य आनन्दवर्धन, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।	1971
19. नेहरूयशःसौरभम्	श्री बलभद्र शास्त्री, संकाहा, हरदोई (उ.प्र.)	1975
20. नेहरूचरितम्	पं. ब्रह्मानन्द शुक्ल, शारदा सदन, 264 उत्तरी गाँधी कालोनी, मुजफ्फरगनर (उ.प्र.)।	1969
21. पारिजातापहारः	स्वामि श्री भगवदाचार्य, मोम्बासा केन्या ईस्ट अफ्रीका	1951
22. पारिजात सौरभम्	स्वामी श्रीभगवदाचार्य, मोम्बासा अफ्रीका।	1951
23. भगतसिंहचरितम्	स्वयं प्रकाश शर्मा, टी/26/5, रुड़की रोड, कैम्प, मेरठ कैण्ट	1978
24. भारतपारिजातम्	श्रीमद्भगवदाचार्य, रावजी भाई मेघजी भाई (मोम्बासा केन्या-ईस्ट अफ्रीका)।	1951
25. भारत की छवि	काएतान कोसीविच, रूसी के मूल लेखकगण बोगार्द-लेविन और अ. विगासिन।	
26. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन	प्रो. मुकुट बिहारी लाला, उ. प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ (भाग 1 एवं 2।)	1981
27. भारतीय प्रज्ञा	सर एम. मोनियर विलियम्स, मूल इण्डियन विज्डम-अनु. डॉ. रामकुमार राय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी	1965
28. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि	ए. आर. देसाई, अनुवादक-प्रयागदत्त त्रिपाठी, दि मैकमिलन कम्पनी ऑव इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली।	1977
29. भारतीय साहित्य के	रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई	

इतिहास की समस्याएँ दिल्ली। 1987
30. भारतीयस्वातन्त्र्योदयः श्री विश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, जोगलेकरवाडा, सिद्धेश्वर आली, कल्याण, ठाणे, महाराष्ट्र।
31. विशालभारतं महाकाव्यम् (प्रथमोभागः जवाहरदिग्विजयम्) पं. श्यामवर्ण द्विवेदी, श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर। 1967
32. संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास डॉ. रामगोपाल मिश्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली। 1976
33. सत्याग्रहगीता पण्डिता क्षमाराव, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई। 1931
34. सन् सत्तावन की राज्यक्रान्ति डॉ. रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। 1957
35. सभ्यता की कहानी (भारत और उसके पड़ोसी देश) विल ड्यूरेण्ट, अनु. श्रीकान्त व्यास, किताब महल, प्रा. लि. इलाहाबाद। 1965
36. साहित्य दर्पणः श्रीविश्वनाथ कविराज, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह चौखम्भा विद्याभावन वाराणसी। 1976
37. सुभाषचरितम् श्रीविश्वनाथ केशवछत्रे शास्त्री, जोगलेकर सदन, सिद्धेश्वर समीप, कल्याण, ठाणे। 1963
38. स्वराज्यविजयः पण्डिता क्षमाराव, न. मा. त्रिपाठी, प्रा. लि. प्रिंसेसे स्ट्रीट, बम्बई। 1962
39. स्वराज्यविजयं महाकाव्यम् श्रीमद् द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्तण्ड, भारती प्रतिष्ठान मेरठ। 1971
40. हम भारत से क्या सीखें? अनु. श्री कमलाकर तिवारी और रमेश तिवारी, इतिहास प्रकाश संस्थान मालवीय नगर, इलाहाबाद 1964
41. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम—डॉ. रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली। 1978
42. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास डॉ. शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक, पुस्तकालय, वाराणसी। 1956
43. ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म एण्ड इण्डियन नेशलिज्म के. संस्थानम्, भारतीय विद्या भवन, बम्बई। 1972

• • • •

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

जन्म : 1 मार्च, 1960, जौनपुर (उ.प्र.) के ग्राम—मैनसिल के यशस्वी माता-पिता—श्रीमती सावित्री देवी—पं. श्री वंशराज दुबे के आँगन में पल-बढ़कर बड़ा हुआ।

शिक्षा : एम. ए., डी. फिल्., डिप् (लिंग्विस्टिक्स), डी. लिट्. (मानद)

प्रकाशित ग्रंथ : (1) रामायणमंजरी का साहित्यिक अनुशीलन, (2) सूक्ति सुधा, (3) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम, (4) ग्राम्य गीतांजलि—(गीत काव्य) (5) हनुमान धारा—(खण्ड काव्य), रामकथा मंदाकिनी (शोध-निबंध संग्रह)।

अध्यापन : सन् 1987 से संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अध्यापन यात्रा प्रारंभ कर महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.) में यशस्वी शिक्षक के रूप में विख्यात होकर जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ. प्र.) में सन् 1 अगस्त 2001 से संस्कृत आचार्य एवं विभागाध्यक्ष तथा कला संकाय के अधिष्ठाता के रूप में पदस्थ।

प्रशासनिक अनुभव : प्रति कुलपति, कुलसचिव, अधिष्ठाता, विभागाध्यक्ष, प्रभारी आचार्य पुस्तकालय, मुख्य कुलानुशासक, छात्र कल्याण अधिष्ठाता एवं शोध निदेशक आदि विभिन्न शैक्षणिक एवं प्रशासनिक पदों पर कार्यानुभव।

पुरस्कार : अलंकरण : साहित्य कला शिरोमणि, साहित्य महोपाध्याय, अवध भारती भूषण, तुलसी भारती समलंकरण, कवि रत्न, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक सम्मान, राष्ट्रीय शिक्षा रत्न।

सम्प्रति : आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

स्थायी निवास : 'सारस्वतम्' संत कबीर मार्ग, जानकीकुण्ड, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

मोबाइल : 09452032221

ई-मेल : profyogeshdubey@gmail.com.